मानव-सन्ततिशास्त्र

(इच्छानुसार उत्तम सन्तान उत्पन्न करना मनुष्य के अधीन है)

संस्कृत के आर्षग्रन्थों एवम् पश्चिम के विद्वानों के सिद्धान्तों के आधार पर निर्मित.

लेखक—कोटानिवासी

मुन्शी हीरालाल (जालोरी)

"खड्गविलास" प्रेस, बांकीपुर.

बाबू चण्डीप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित और प्रकाशित.

१८११.

प्रथमबार.] [दाम एक रुपया.

समर्पण

श्रीयुक्त मुन्शी हीरालाल साहब (अघोलिया)

बी॰ ए; एल॰ एल बी॰

प्रियवर !

आप की विद्याभिरुचि, मातृभाषाप्रेम और आदर्श गुणों का स्मरण करते हुए, मैं अपनी इस पुस्तक को—जिसे आप ने स्वीकार करने की कृपा की है—सस्नेह आप के करकमलों में अर्पण करता हूं।

आप का सच्चा हितैषी—

हीरालाल (जालोरी)।

श्री मुन्शी हीरालाल (जालोरी)—ग्रन्थकर्त्ता ।

K V Press Bankipur

विषयसूची।

—•—

चित्रसूची ।

निवेदन ।

१८१० के फेब्रुअरी मास से मेरा गार्हस्थ्य जीवन फिर से आरम्भ हुआ। इसी समय मेरे हृदय में एक प्रकार की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न हुई कि जिस ने मुझे गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के उपलक्ष में कोई गृहस्थोपयोगी कार्य्य करने का अनुराग दिलाया किन्तु कई मास तक मैं इस बात का निर्णय नहीं कर सका कि मुझे क्या करना उचित होगा।

एक दिन मैं अपने परम मित्र श्रीमान् कविरत्न ठाकुर केसरी सिंह जी साहब के यहां बैठा हुआ था कि इसी प्रकार की कुछ बातचीत शुरू हुई। मुझे भी अपना विचार स्मरण आया। मैं ने उसे श्रीमान् पर प्रकट किया। श्रीमान् मेरी सब प्रकार की स्थिति को जानते थे अतएव श्रीमान् ने मुझे एक "मरजी प्रमाणे ना बालको" नामक गुजराती पुस्तक दी और अनुरोध किया कि "हिन्दी साहित्य में इस विषय का कोई पूर्ण ग्रन्थ नहीं है, यह पुस्तक गृहस्थ मात्र को उपयोगी हो सकती है। अच्छा हो कि मैं इस का भाषान्तर कर अपनी इच्छा पूरी करूं।"

मुझे भी यह सम्मति उचित मालूम हुई क्योंकि कौटुम्बिक आपत्तियों के कारण मेरी आर्थिक स्थिति तो इस योग्य थी ही नहीं कि कोई अन्य कार्य्य कर सकूं। मैं ने उक्त पुस्तक को पढ़ा किन्तु इस बात को मैं ही जानता हूं कि मुझे उस समय भाषान्तर करना कितना कठिन कार्य्य प्रतीत होता था। पढ़ने को मैं ने कुछ पढ़ा तो अवश्य था, किन्तु लिखने का उतना अभ्यास नहीं था; क्या हुआ यदि कभी कोई टूटा फूटा लेख लिख लिया। खैर, श्रीमान् के उत्तेजन दिलाने से ज्यों त्यों साहस कर कार्य्यारम्भ कर दिया और गिरते पड़ते चार पांच मास में तीन चतुर्थांश भाषान्तर भी तैयार कर लिया।

अब कुछ २ लिखने की शैली समझ में आई। भाषान्तर की भाषा में बड़ी हुई भूलें दृष्टिगोचर होने लगीं। मूल पुस्तक का क्रम अथवा संगठन

भी अरुचिकर हुआ। साथ ही इस बात पर भी ध्यान गया कि ग्रन्थ के लिखने में, केवल पाश्चात्य साहित्य की से सहायता ली गई है, और प्राचीन आर्य्य ग्रन्थों से, इस विषय की अच्छी सामग्री मिलते हुए भी उन की "चाहे किसी कारण से हो" उपेक्षा की गई है। यह उपेक्षा हृदय को असह्य हुई।

विचारों ने पलटा खाया, और संकल्प हुआ कि पौरस्त्य और पाश्चात्य साहित्य से सहायता लेते हुए; स्वतंत्र रूप से ग्रन्थ की रचना की जाय और पक्षपात रहित हो जिस किसी भी साहित्य से उत्तम सिद्धान्त मिल सकें संग्रह किये जाय। पुन: इस विचार को उन्हीं गुरुवत् मित्र से निवेदन किया। उन्हों ने पुन: उत्साह दिलाया और अपनी सम्मति दी।

पुन: कार्य्य का आरम्भ किया गया। इस बार स्वतंत्र रूप से लिखने पर भी, पहिले के सदृश किसी प्रकार की कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। अब चित्त से वह निर्बलता भी जाती रही। हां लिखे हुए को दो एक बार पढ़कर यथाशक्ति भाषा सुधारने और अशुद्धियां निकालने की आवश्यकता अवश्य हुई।

प्रारम्भ करने के चार मास बाद तक, लिखने का काम प्राय: शान्ति पूर्वक होता रहा; और पुस्तक के सात प्रकरण और आठवें प्रकरण का कुछ भाग अपनी शक्ति भर अच्छा तैयार किया जा सका। यदि और कोई कार्य्य न होता तो सम्भव था कि इसी समय में ग्रन्थ प्राय: सम्पूर्ण हो गया होता; किन्तु आफ़िसटाइम "कचहरी के वक्त" के अतिरिक्त जो समय मिलता था; उसी में अवकाश निकाल कर, इस कार्य्य को करना पड़ता था। संयोग की बात देखिये, कि इन्हीं दिनों में कार्य्य भी कहीं अधिक रहा।

खैर, ज्यों त्यों अवकाश निकालते हुए, पुस्तक के सात प्रकरण तो तैयार कर लिये गये किन्तु, इस समय पूर्व जन्म के संचित किसी घोर पातक के फल स्वरूप, अकस्मात्, एक प्रकार की आपत्ति ऐसी सर पर आई, कि जिस ने विचारों में महान् विप्लव उपस्थित कर दिया। मुझे इस प्रकार आपत्ति आने की स्वप्न में भी आशंका नहीं थी। क्योंकि मेरे विचार और

कर्म किसी प्रकार भी अप्रामाणिकता आदि की ओर नहीं जाने पाये थे और न किसी अधम और नीच कृत्य द्वारा ही मेरी अन्तरात्मा कलुषित होने पाई थी।। मैं सर्वथा निरपराध था। अतएव मुझे किसी प्रकार का भय भी नहीं होना चाहिये था किन्तु एक कहावत है कि "करे तो डर नहीं तो खुदा के ग़ज़ब से डर" सो महाशय! मैंने कुछ किया तो था नहीं कि डरता; तथापि इस खुदा के ग़ज़ब से अवश्य डरता था।

हां! तो, मैं कहता यह था, कि विचारों में विप्लव होने से मस्तिष्क से कार्य्य लेना कठिन हुआ। चित्त से शान्ति की गन्ध तक जाती रही। मैं इस बात को मानता हूं कि यह मेरी मानसिक निर्बलता अवश्य थी; जिस से सर्वथा निरपराध होने पर भी भय को हृदय में स्थान दिया। किन्तु बे बुलाये जब कोई आपत्ति अकस्मात् सर पर आती है तो अच्छे २ विचारवानों और अनुभवियों का भी धैर्य्य छूट जाता है, और बुद्धि भ्रान्त हो जाती है; फिर ज़रा कहिये तो सही कि मुझ जैसे नातजरबेकार के, अल्प अनुभवी नव युवक के लिये इस प्रकार बे बुलाये आनेवाली आपत्ति का क्या प्रभाव हो सकता था?

इस झगड़े ने शान्त होने में प्रायः आठ नौ मास लेलिये। इसी अर्से में मेरा स्वास्थ्य कि जो कभी ख़राब नहीं रहता था; प्रायः ख़राब रहने लगा—जो अबतक भी किसी न किसी अंश में विद्यमान है। अगत्या इन्हीं कारणों से पुस्तक का कार्य्य बन्द रखना पड़ा। आठ नौ मास में जाकर विचारों को किंचित शान्ति मिली। चित्त भी कुछ २ एकाग्र होने लगा। अतएव फिर से कार्य्य का आरम्भ कर दिया गया, जो शनैः २ तीन चार मास में पूरा हो गया। किन्तु पहिली और अब की भाषा आदि में प्रयत्न करने पर भी कुछ भेद अवश्य रह गया, कि जो विज्ञ पाठकों से किसी प्रकार भी छिपा हुआ नहीं रह सकेगा। यदि उपर्युक्त कारणों से इस प्रकार विलम्ब न हुआ होता तो सम्भव था कि आज से प्रायः १॥ वर्ष पूर्व; मैं अपने इस अल्प उपहार को लेकर; पाठकों की सेवा में उपस्थित हुआ होता। प्रिय पाठकवृन्द! मैं आशा करता हूं कि इस विलम्ब के लिये मुझे क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं होगी।

मुझे इस जगह यह निवेदन कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है; कि, यह मेरा पहिला साहस है, अतएव इस का दोष रहित होना प्रायः असम्भव है। मैं बहुत डरते २ यह साहस करने को तैयार हुआ हूं। भय केवल इस बात का था कि कहीं मुझ जैसे अल्पज्ञ के द्वारा मातृभाषा और भाषासाहित्य को लाभ के बदले हानि न पहुंच जाय।

मैं ने विधि पूर्वक शिक्षा नहीं पाई है। कुछ पुस्तकों के पढ़ लेने से भाषा का अत्यल्पज्ञान अवश्य हो गया है; अतएव उचित तो नहीं था, कि मैं इस प्रकार अनधिकार चेष्टा करूं; किन्तु हृदय में मातृभाषाप्रेम, और उस के साहित्यवृद्धि की उत्कट अभिलाषा होने के कारण, इस आशा से प्रेरित हो कर इस कार्य्य को हाथ में लिया कि यदि मातृभाषा भाषियों प्रेमियों और विद्वानों ने अनुग्रह कर, इस में रही हुई भूलें, ज्ञनलाने को कृपा दिखलाई, और उत्साह वृद्धि की, तो सम्भव है कि आगे मैं मातृभाषा की सेवा करने योग्य बनजाऊं।

यदि विद्वान् लेखकों ने इस ओर ध्यान दिया और मुझे इस योग्य समझा, तो मेरा शक्ति भर मातृभाषा की सेवा करने का विचार है। और यदि मुझे भाषासम्बन्धी सन्तोष मिला, और जीवन ने साथ दिया, तो जिस प्रकार हो सकेगा नौकरी के अतिरिक्त, अपने सांसारिक कार्य्यों से बचाकर, अवकाश निकालते हुए समय २ पर कोई उपयोगी स्वतंत्र रूप से लिखा हुआ ग्रन्थ या भाषान्तर उपहार में लेकर अपने देश बान्धवों तथा मातृभाषा प्रेमियों की सेवा में उपस्थित होता रहूंगा। आशा है कि मेरे इस नम्र निवेदन पर विद्वान् लेखकों द्वारा अवश्यमेव ध्यान दिया जायगा।

ग्रन्थ सम्बन्धी मुझे जो कुछ निवेदन करना था वह यथा समय और विशेष कर ग्रन्थ के पहिले प्रकरण में निवेदन कर चुका हूं। अब कुछ निवेदन करने की आवश्यकता नहीं; तथापि इतना कह देना अत्यन्त आवश्यक है कि विद्वानों के बतलाये इन प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलने—इन की पाबन्दी करने से—आशातीत सफलता होती है। इस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। मेरा तो इन सिद्धान्तों की सत्यता के विषय में इतना दृढ़ विश्वास है कि जितना दिन के पीछे रात और रात के पीछे

हिन्‌ के भागे का दृढ़ निश्चय होता है अतएव मैं अपने इस क्षुद्र निवेदन को समाप्त करता हूं।

किन्तु मैं कैसा भूलता हूं? क्या मैं कृतघ्नता का दोषी बनना चाहता हूं? नहीं! नहीं!! मैं अपने इस निवेदन को उन महानुभावों का आभार माने बिना; कि जिन-से मुझे, इस पुस्तक के सम्बन्ध में, किसी प्रकार की भी सहायता मिली है; समाप्त नहीं कर सकता।

सब से पहिले मैं श्रीमान्‌ कविरत्न ठाकुर केसरी सिंह जी महोदय का आभारी हूं। श्रीमान्‌ मेरे मित्रों की श्रेणी में आने की अपेक्षा गुरु की श्रेणी में अधिक आते हैं। मुझ में जो कुछ भी ज्ञान है—विद्या सम्बन्धी जो कुछ भी दृष्टि गोचर होता है—वह श्रीमान्‌ ही की अतुल कृपा का फल है। अतएव मैं सर्वप्रथम अनन्य भाव से श्रीमान्‌ का जितना भी आभार मानूं थोड़ा है।

मैं उन सब ग्रन्थों के ग्रन्थकर्त्ता महाशयों का आभारी हूं कि जिन से मुझे इस पुस्तक के लिखने में सहायता मिली है। विशेष कर गुजराती के "मरणी प्रमाणि ना बालको" नामक ग्रन्थ के कर्त्ता मिस्टर "बगाजी" का कृतज्ञ हूं कि जिन के उक्त ग्रन्थ से मुझे इस पुस्तक के लिखने में अपूर्व सहायता मिली है। सहायता ही नहीं वरन्‌ कई जगह तो उन के विचारों ही का रूपान्तर है और उदाहरण तो प्रायः उन्हीं की पुस्तक से अवतारित किये गये हैं। इस विषय में यही पुस्तक मेरी मार्ग दर्शक भी कही जा सकती है।

मैं अपने परम मित्र डाक्टर शिवप्रसाद और मुन्शी हरगोविन्द प्रसाद निगम एम० ए० का आभारी हूं। इन दोनों महानुभावों ने क्रमानुसार जब २ डाक्टरी से तथा अंगरेजी से सम्बन्ध रखनेवाली बातों में सहायता लेने की आवश्यकता हुई, उदारता पूर्वक सहायता दी है। मित्रवर पंडित "महादेव झा" ने अपना दीर्घ काल का इस विषय का प्राप्त किया सारा अनुभव, मुझ पर प्रकट कर सहायता देने की कृपा की, जिस के लिये मैं उक्त महोदय का आभारी हूं।

चित्रों के एकत्र करने मुझे बड़ी कठिनाई का सामना करना

पड़ा। पहिला और दूसरा चित्र तो, मुझे अनायास ही मिल गया। तीसरा चौथा पांचवां और छठां चित्र में ने पहिले बाबू रूपराम स्टेट फ़ोटो ग्राफ़र और पेन्टर से बनवाया। उन्हों ने ध्यान पूर्वक बनाने की कृपा की, किन्तु वे मुझे सन्तोषदायक नहीं हुए; अतएव मैं ने अपने हाथ से बनाने का निश्चय किया; यद्यपि इस प्रकार का कार्य्य कभी किया तो नहीं था, तथापि सच्ची इच्छा के आगे, संसार में कोई कठिनाई नहीं होती। मैं ने उन्हें बनाना शुरू किया। दो एक बार कुछ विक्षेप रहा, अन्त में वे जिस अवस्था में पाठकों के समक्ष रखे गये हैं तैयार हो गये। नम्बर सात से बारह तक के चित्र हमें डाक्टर शिवप्रसाद साहब से प्राप्त हुए हैं जिस के लिये श्रीमान् को धन्यवाद है।

शेष चित्रों के लिये श्रीमान् राय बहादुर मुन्शी शिवप्रताप जी साहब प्राइवेट-सेक्रेटरी श्री जी हजूर कोटा दरबार और डायरेक्टर-विद्या-विभाग रियासत कोटा से प्रार्थना की। उन्हों ने सहर्ष सहायता देने का वचन दिया; केवल वचन ही नहीं दिया, वरन् श्रीमान् ने, जिन २ चित्रों को मैं ने उपयोगी समझा, उन २ चित्रों के अंकित किये जाने की आज्ञा भी देदी; किन्तु सरकारी काम की अधिकता के कारण चित्रकार उन्हें इतना जल्दी तैयार नहीं कर सकता था, कि जितना जल्दी मैं चाहता था; अतएव श्रीमान् से उक्त चित्रों को कुछ समय के लिये प्रदान करने की प्रार्थना की। श्रीमान् ने वे चित्र (नम्बर १३, १४, १५, १६,) प्रदान किये जिस से मैं उन के प्लेट लेने को समर्थ हुआ; अतएव मैं इस कृपा के लिये श्रीमान् का हृदय से कृतज्ञ हूं। परम माननीय मित्र वर मुन्शी हीरालाल साहब बी· ए·, एल· एल· बी·, जुडीशल सेक्रेटरी महकमा खास के अनुरोध से, बाबू अबदुलमजीद साहब ने उन के प्लेट ले देने की कृपा की जिस के लिये मैं दोनों महानुभावों का आभारी हूं।

शेष दो चित्रों के लिये मैंने, श्रीयुत मेनेजर साहब खड्गविलास प्रेस ने और मेरे अन्य मित्रों ने बहुत प्रयत्न किया किन्तु मैं उन्हें प्राप्त करने में असफल कार्य्य रहा—वे मुझे अपने इच्छानुसार नहीं मिले, अतएव ऐसा

भी उचित नहीं समझा और अपनी रुचि के अनुसार प्राप्त कर लेने का भार पाठकों पर छोड़ना ही उचित समझ कर—उन को यहां नहीं दिया। आशा है कि इस त्रुटि के लिये पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

कोष के बनाने में प्रिय बन्धु लक्ष्मीलालजी ने सांगो पांग पूर्णसहायता दी है—इस के लिये मैं उन को भी धन्यवाद देता हूं।

निवेदक

कोटा, राजपूताना।
माघ शुक्ला ५ सं० १९९८ वि०

हीरालाल (जालोरी)

प्रकरण पहिला।

प्रस्तुत विषय के जानने की आवश्यकता और महत्त्व।

जिधर को आंख उठाकर देखते हैं उधर ही ईश्वरीय लीला की विचित्रता नज़र आती है। सृष्टि की मनोहरता अपूर्व है। जब २ में ऐसे २ अपूर्व और चमत्कारिक दृश्य देखने में आते हैं, कि जिन का बयान करना बहुत ही कठिन है। प्रत्येक बात में कोई न कोई रहस्य अवश्य रहता ही है। प्रत्येक बात मनुष्य के लिये बोधदायक है—प्रत्येक बात मनुष्य के लिये आनन्ददायक है—प्रत्येक बात से मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है—प्रत्येक बात बुद्धि को विकसित करने में चमत्कारिक असर रखती है। जिस बात को मनुष्य सामान्य समझ कर टाल देता है, थोड़ा विचारने से, उस में भी कुछ न कुछ अपूर्वता अवश्य मालूम पड़ती है। इन सबों को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि "ईश्वरीय लीला बड़ी विचित्र है"। यह विचित्रता भी अपार है। परमात्मा ने इसी लीला वैचित्र्य में अर्थात् इसी लीला वैचित्र्य का विस्तार कर के, इसी की परिसीमा में सृष्टि की उत्पत्ति की, इसी लिये संसार स्वयम् विचित्र है और उस की एक बात भी विचित्रता से खाली नहीं है।

इसी संसार वैचित्र्य में—इसी विचित्रता के संसार रूपी अपार समुद्र में अगणित गुप्त शक्तियां और गुप्त रहस्य मौजूद हैं; अर्थात् संसार ईश्वरीय भेदों, अमोघ शक्तियों, गुप्त रहस्यों और अगणित विद्याओं का खज़ाना है। मनुष्य की बुद्धि का पता लगाया जा सकता है, किन्तु इन की थाह नहीं मालूम की जा सकती। ज्यों २ मनुष्य की बुद्धि विकसित होती और

बढ़ती जाती है, त्यों २ इन की गहनता भी बढ़ती जाती है; अर्थात् ज्यों २ मनुष्य इन भेदों को मालूम करता और ज्ञानवृद्धि करता जाता है, त्यों २ इन में कुछ न कुछ विशेषता भी अवश्य मालूम होती जाती है—और ज्यों २ ये रहस्य मनुष्य पर व्यक्त होते जाते हैं, त्योंही त्यों, मनुष्य संसार में बड़े महत्त्व के आश्चर्यजनक कार्य्य करने को समर्थ होता जाता है। यह प्रायः जगत-मान्य बात है कि जिस बात की असलियत (प्राकृतिक-नियम) मालूम कर ली जाती है, उस बात के कर लेने में कोई कठिनाई भी शेष नहीं रह जाती।

अतएव मान लेना पड़ता है, और मान लिया गया है कि मनुष्य-जाति की भलाई और श्रेय इन ही अमोघ शक्तियों के प्राप्त हो जाने और प्राकृतिक नियमों के मालूम कर लेने पर आधार रखता है। मनुष्य-जाति की उन्नति और लाभ के लिए इन का ज्ञान लेना—इन का मालूम कर लेना—बहुत ज़रूरी है। जिन जातियों में इन शक्तियों का अभाव है और जो जातियां इन प्राकृतिक-रहस्यों, शक्तियों और नियमों से अनभिज्ञ हैं, वे इस संसार में कदापि अपनी उन्नति नहीं कर सकतीं, वे अज्ञानान्धकार और अधोगति के दलदल ही में फंसी रहती हैं; और, जो जातियां इन प्राकृतिक-रहस्यों, शक्तियों और नियमों को जान लेती हैं—मालूम कर लेती हैं इन का ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं और इन को समझ लेती हैं, वे ही संसार में सब से अधिक उन्नति कर लेती हैं; वे ही संसार की मार्ग-दर्शक मानी जाती हैं; और वे ही सब जातियों की नेता भी बन जाती हैं

उस परम पिता जगदीश्वर ने संसार में असंख्य प्राणीवर्ग उत्पन्न किये हैं; किन्तु इन प्राकृतिक-रहस्यों, इन अमोघ शक्तियों और ईश्वरीय नियमों को समझनेवाली शक्ति (बुद्धि) एक मात्र मानव-जाति ही को प्रदान की है। संसार की अन्य जातियों में मानव-जाति ही इन के समझने का अधिकार रखती है और वही इन को समझ सकती है। इसी लिये संसार की सब जातियों में मानव-जाति ही मुख्य और श्रेष्ठ है; और इसी शक्ति के प्रताप से अन्यान्य जातियों पर उस (मानव-जाति) का आधिपत्य है।

यदि उस (मानव-जाति) में यह शक्ति न होती तो क्या वह सिंह जैसे भयानक और खूंख़ार बनैले पशु को अपने अधीन बना सकती थी ?

मनुष्य जाति में यह शक्ति है, बल्कि उस न्यायी परमात्मा ने मनुष्य-जाति में से प्रत्येक व्यक्ति को यह शक्ति समान रूप में (बराबर) प्रदान की है; किन्तु फिर भी यही देखने में आता है कि प्रत्येक मनुष्य इन (प्राकृतिक-नियमों) को समझ लेने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सकता; इस का कारण जहां तक समझ में आता है (जैसा कि पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायगा) यही है कि प्रत्येक मनुष्य में इस शक्ति के बराबर होने पर भी, माता पिता की अज्ञानता और ईश्वरीय नियमों से अजान रहने के दण्ड-स्वरूप, उन की सन्तान में यह शक्ति पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने पाती और इसी लिये वह उस शक्ति को काम में लाना नहीं जानती—वह अपनी बुद्धि से कार्य्य लेने में असमर्थ रहता है। जिन व्यक्तियों को अपने माता पिता से उत्तम मनःशक्ति और परिष्कृत बुद्धि प्राप्त हुई है, वे ही इन रहस्यों, शक्तियों और नियमों को समझने में कृतकार्य्य होते हैं; वे ही पूर्ण रूप से अपनी बुद्धि को काम में ला सकते हैं; वे ही संसार में धन्य और उन्हीं का मनुष्यजन्म सार्थक है।

इन रहस्यों को जान लेने का, इन शक्तियों को प्राप्त करने और इन नियमों को मालूम कर लेने—समझ लेने—का मार्ग बड़ा कठिन और कष्टसाध्य है। इन की प्राप्ति की इच्छा रखनेवाले अभ्यासी को, बड़ी शान्ति, बड़ी सहनशीलता, बड़े धैर्य्य, उत्साह, दृढ़ विश्वास, निश्चयात्मक-बुद्धि और ईश्वरीय देन से लेश मात्र निराश न हो कर, आशापूर्वक अभ्यास करना पड़ता है; इसी से सतत परिश्रम करनेवाले, अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहनेवाले, बारम्बार निष्फल होने पर भी निराश न होनेवाले और अखण्ड उत्साहपूर्वक उद्योग करनेवाले व्यक्ति ही इन के जानने में समर्थ होते हैं; और ये गुण माता पिता द्वारा ही सन्तान में विकास पाते हैं।

सच्चा उद्योगी पुरुष ही सच्चा ईश्वरभक्त है। ईश्वर भी उसी से प्रसन्न रहता है। जिस प्रकार आलसी और निकम्मे पुत्र से माता पिता नाराज़

और अप्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार आलसी मनुष्य से वह परम पिता जगदीश्वर भी अप्रसन्न रहता और उस की उपेक्षा करता है।

इस कर्मक्षेत्र रूपी संसार में, कर्म ही मुख्य है। यह संसार मानवजाति की कर्म-भूमि है। कर्मरहित हो जाने पर मनुष्य संसार में रह नहीं सकता। कर्म करनेवाला मनुष्य ही ईश्वर को प्यारा है; वही उस की आज्ञाकारी सन्तान है; उसी को सुख और समृद्धि प्राप्त होती है; संसार भी उसी को आदर की दृष्टि से देखता और उस की प्रतिष्ठा करता है; उसी का मनुष्य-जन्म सार्थक समझा जाता है; और उसी का संसार में अनुकरण भी किया जाता है। कर्म-हीन मनुष्य में और पशु में क्या भेद है। खाने-सोने और मर जाने में कौन विशेषता है। वह मनुष्य होते हुए भी पशु तुल्य है। नहीं, वह मनुष्यशरीरधारी पशु है। ऐसे कर्म-हीन मनुष्य का, मनुष्यशरीर धारण करना ही वृथा—नहीं—बल्कि मानव-जाति को हानिकर है। ईश्वर भी अपनी ऐसी अधम सन्तान से असन्तुष्ट रहता है। ऐसे मनुष्य संसार में अप्रतिष्ठा के पात्र बनते हैं; वे मनुष्य-समाज के लिये कांटे के समान हैं; ऐसे व्यक्ति अपने देश, जाति और मानव-जाति को लाभ के बदले हानि पहुंचाते हैं और पृथ्वी के भार रूप समझे जाते हैं। इसी लिये, मनुष्यशरीर धारण करने का तात्पर्य्य समझ कर मनुष्यजन्म को सार्थक बनानेवाले और संसार के नियमानुसार कर्म करनेवाले मनुष्य ही श्रेष्ठ हैं, और वे ही संसार के मार्गदर्शक और मानव-जाति के गौरव रूप माने जाते हैं।

इन्हीं बातों को सोचते और अपने मनुष्यशरीर धारण करने का तात्पर्य्य समझते हुए, हमारे ऋषि, महर्षि और विद्वानों ने इस कार्य्य-क्षेत्र रूपी संसार में जन्म ले कर, प्राणार्पण परिश्रम द्वारा कर्म कर के, संसार को सच्ची ईश्वरभक्ति का परिचय दिया है और लोगों के मार्गदर्शक बने हैं। उन्हों ने अपने कार्य्य-साधन में सिद्धि प्राप्त कर लोगों को साबित कर दिखाया है, कि सच्चे उद्योगी की ईश्वर किस प्रकार सहायता करता है। मानव-जाति उन पवित्रात्माओं की बड़ी आभारी है कि जिन के कर्म्म-साधन के प्रताप से आज मानव-जाति सृष्टिनियमों को समझने में बहुत

कुछ समर्थ हुई है। यह इन्हीं देशहितैषी महानुभावों के असीम स्वार्थ-त्याग और परिश्रम का फल है, कि प्राकृतिक रहस्यों और शक्तियों के ख़ज़ाने में से, आज मानव-जाति के पास भी, इन रहस्यों और शक्तियों के एक अच्छा ख़ासा ख़ज़ाना तय्यार हो गया है। यदि लोकहितैषी और निःस्वार्थ कार्य्य करनेवाले विद्वानगण इन बातों को मालूम न कर लेते, तो हम में और पशुओं में अन्तर ही क्या रह गया होता; और लोगों को विश्वास भी कब होता कि परिश्रम करने पर ही ये शक्तियां प्राप्त की जा सकती हैं।

ऐसा कोई विषय नज़र नहीं आता कि जिस की ओर विद्वानों का ध्यान न गया हो—और उस से सम्बन्ध रखनेवाले प्राकृतिक नियम न ढूंढ़ निकाले गये हों। मनुष्यजाति के प्रायः सभी आवश्यकीय विषयों के प्राकृतिक-नियम ढूंढ़ निकालने की विद्वानों ने चेष्टा की और उन्हें उस में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। प्रत्येक विषय में अगणित आविष्कार हुए नज़र आते हैं। ऐसा कोई विषय नज़र नहीं आता कि जिस में विद्वानों ने हाथ डाला हो और सफलता प्राप्त न हुई हो। जिस विषय में विद्वानों ने हाथ डाला, अन्त में उस को सिद्ध कर के ही छोड़ा।

तत्वज्ञान (Philosophy), पदार्थ विज्ञान (Science), रसायन-शास्त्र (Chemistry), शरीर-रचनाशास्त्र (Anatomy), मानसिक-शास्त्र (Psychology), कृषि-विद्या (Agri-culture), वनस्पति-शास्त्र (Botany) और भी अनेकानेक विषयों में अगणित आविष्कार हुए हैं। इन आविष्कारों के कारण—इन के प्राकृतिक नियमोंको जान लेने के कारण—संसार में बहुत कुछ उन्नति और मानव-जाति का कल्याण हुआ है। इन्हीं आविष्कारों का प्रताप है कि विद्युत्-शक्ति (बिजली) से दासों का कार्य्य लिया जाता है, अग्नि और पवन अनुचर के समान कार्य्य करते है, प्रत्येक बात में उन्नति ही उन्नति दृष्टिगोचर होती है।

इन आविष्कारों द्वारा अनेक आश्चर्यजनक कार्य्य हुए हैं. हमें उन का क़दम २ और पांव २ पर परिचय मिलता है। रेल, तार, वग़ैरः सब इन्हीं

की विभूतियां हैं। फिर भी उदाहरणार्थ हम इस प्रकार की दो एक बातों का उल्लेख करते हैं।

इस समय "आकाश-यान", "व्योम-यान" अथवा "पवन-नौका" या हवाई जहाज़ बनाने की ओर कितने देशों के कितने विद्वान् अखण्ड और अथाह परिश्रम कर रहे हैं। उन्हें अनेक बार निष्फल भी होना पड़ा और अनेक व्यक्तियों को अपने प्राणों का बलिदान भी देना पड़ा; किन्तु "सच्चे उद्योगी और उत्साही कभी निराश नहीं होते" इस सिद्धान्त पर दृढ़ रह कर उन्हों ने अपने साहस का न छोड़ा और लगातार परिश्रम करते रहे; परिणाम में ईश्वर ने उन्हें सिद्धि दी, कि जिस को वे उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहे हैं। अब इन्हीं "आकाश-यानों" द्वारा, आकाश मार्ग से सेकड़ों मील का सफ़र किया जाता है। जिस बात को हम कहानियों में सुना और पुस्तकों में पढ़ा करते थे, आज उसे को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। क्या यह छोटी सी बात है? इन नौकाओं के अस्तित्व में आने से पहिले, यह कहा जाता कि ऐसी नौकाएं होती हैं. तो क्या कोई इसे सत्य मानता? मेरे विचार में तो लोग इसे अवश्य मिथ्या कहते, जैसा कि यूरोपियन विद्वान्. हमारे (आर्य्य) ग्रन्थों में "विमानों" का हाल पढ़ कर "नौन्सेन्स" कह दिया करते थे; किन्तु अब सर्वथा सिद्ध हो गया कि उद्योग और सतत परिश्रम करने से, "प्राकृतिक-नियमों" की सृष्टि के गुप्त भेदों को जाना जा सकता है और उन के द्वारा उन २ कार्य्यों को किया जा सकता है कि जिन को लोग प्रायः असम्भव कह बैठा करते हैं।

इसी प्रकार और देखिये :--"हीरा" अथवा "नीलम" एक प्रकार के रत्न हैं, यह सब कोई जानते हैं। इन्हीं के सदृश "हीरा" अथवा "नीलम" बना लेने की विद्वानों ने कोशिश की और कामयाब हुए। "पृथ्वी के अन्दर बहुत काल तक पत्थर में गरमी और दबाव के बराबर पहुंचते रहने से वही पत्थर हीरा बन जाता है" यह मालूम होने पर उसी जाति के पत्थर पर यन्त्रों द्वारा लगातार निश्चित सीमा तक गरमी और दबाव पहुँचाया गया, परिणाम में असली हीरे के समान उस में आब पैदा हो गई।

किन्तु नियम में कुछ न्यूनता रह जाने, अथवा एकदम गरमी और दबाव पहुंचाए जाने से वह साबित न रह सका और उस के टुकड़े २ हो गए; मगर हीरे को असली आब और चमक दमक लाने में कुछ न्यूनता न रही। यदि यह प्रयत्न जारी रहा तो निश्चय है कि यह न्यूनता भी अवश्य जाती रहेगी।

"नीलम" बनाने में विद्वानों ने पूरी सफलता प्राप्त की है। प्राकृतिक नियमों को जान लेने के कारण प्राकृतिकनीलम (प्रकृति के बनाये हुए नीलम) और इस नीलम में इतना ही अन्तर रहा. और बड़े २ रत्न-परीक्षक भी जांच कर इतना ही कह सके कि यह नई खान का है। मगर देखिये इस बात को हरगिज़ न भूलिये कि ईश्वरीय नियमों को जाने बिना मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं है कि ऐसा कर सके। जिस विद्वान् ने यह नीलम बनाया है. उस ने भी नीलम बनाने से पहिले इसी बात के जानने की चेष्टा की कि -नीलम किन २ पदार्थों का बना हुआ है और इस में किस २ पदार्थ का कितना २ अंश है। इस के जान लेने के बाद, उस ने उन्हीं २ पदार्थों को उतने ही अंश में अपनी निश्चित रीति से मिला नीलम बना लिया—कि जिसे बड़े २ रत्न-परीक्षक भी नक़ली न बता सके। वास्तव में देखा जाय तो वह नक़ली है भी नहीं। पाठक! * देखो आप ने, प्राकृतिक-नियमों को जान लेने की महिमा?

इसी प्रकार स्वार्थत्यागी और जातिहितैषी विद्वानों ने अगणित विषयों में, अगणित ही आविष्कार किये हैं। बड़ी से बड़ी, अथवा छोटी से छोटी वस्तु को लीजिये, उस में भी आप को कोई बारीकी की बात अवश्य मालूम होगी। ईश्वर ने मनुष्य की बुद्धि को विकसित करने के लिये ही संसार की प्रत्येक वस्तु में अपनी महिमा का समावेश किया है; किन्तु शोक है तो इसी बात का कि मानव-जाति का बहुत बड़ा हिस्सा, इन नियमों से अज्ञान रह कर और तुच्छ और वृथा कार्य्यों को अपना जीवनकर्तव्य मान कर अपनी आयुष्य के अमूल्य समय को वृथा नष्ट कर देता है।

---

* जहां २ पाठक! शब्द का प्रयोग किया जाय वहां २ पाठक और पाठिका दोनों से अभिप्राय समझना चाहिये।

वर्तमान समय में, संसार की प्रत्येक जाति इन नियमों का ज्ञान प्राप्त कर के, उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ती चली जा रही है; किन्तु आर्य्य जाति कि जो किसी समय इन नियमों की पूर्ण ज्ञाता थी, कालचक्र के फन्दे में पड़ कर अवनत हुई और अब तक उसी अज्ञानान्धकार रूपी निद्रा में बेखबर सोई हुई है। संसार की अन्य सभ्य जातियों में जितनी संख्या अनपढ़ों की मिलेगी, भारतवर्ष में उस से भी कम संख्या पढ़ेलिखों की मिलेगी। इन गिनती के पढ़े लिखे लोगों में भी ज्यादा हिस्सा अपने वास्तविक कर्तव्यों की ओर ध्यान नहीं देता. यह कितने खेद की बात है। भारत ! प्यारे भारत !! तेरी अवनति करने का सौभाग्य कुंकुम। (क्या सौभाग्य कुंकुम ? नहीं ! नहीं !! स्याही का टीका) तेरी कर्तव्य-विमुख और कर्म-हीन सन्तानों के मुख की शोभा बढ़ावेगा !! इतिहास मेरे इस कथन की साक्षी दे रहा है कि—तू अपनी निकृष्ट सन्तान के अधम कार्यों के कारण कितना अवनत हो गया है; और दिन २ अवनति के सर्वनाशी मार्ग में आगे बढ़ता ही चला जा रहा है।

हमें भारत को—वयोवृद्ध भारत को—प्रत्येक बात में इस बात का प्रमाण मिलता है और संसार आज भी इस बात को मानता है कि जिस समय संसार की अन्य जातियां, कि जो आज गौरवान्वित मानी जा रही हैं, बिलकुल पाशवी अवस्था में थी, उस समय भारतवर्ष इन भेदों को जानता और काम में लाता था। यह संसार का मुकुट-मणि और मार्गदर्शक था। समस्त संसार ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस के द्वार का भिखारी था; अनेक देश और जातियों ने, इसी से ज्ञान भिक्षा पाकर संसार में अपना मुख उज्ज्वल किया है। यही सब का शिक्षा-गुरु था। इसी की कृपा से अन्य देश अपनी आवश्यकताएं पूरी करते थे। एक समय इसी ने अपनी विजयपताका समस्त भूमण्डल पर फहराई थी।

यहीं भगवान राम और कृष्ण जन्म ले कर,—अपनी प्रजावत्सल राज-नीति के कारण राजाओं के लिये एक उत्तम उदाहरण बन गए हैं। यही भीम और अर्जुन जैसे महा-रथियों की जन्मभूमि है। इसी में परम प्रतापी

और स्वदेशभक्त महाराणा प्रताप और महाराष्ट्र-केसरी महाराज शिवा जी आदि अगणित वीरों ने जन्म लिया है ; इसी की सन्तान ने बारह २ और सोलह २ वर्ष की उमर में अलौकिक वीरत्व और आत्मबल का परिचय दिया है। यहीं भगवान् व्यास, शुकदेव, गौतम और शङ्कर आदि महात्माओं ने जन्म लिया है। यहीं महाराज जनक और भोज जैसे विद्वान् नरेश, शिवि और विक्रमादित्य जैसे परोपकारी राजा, महाराज युधिष्ठिर और हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवक्ता नृपति ; पितामह भीष्म और हनुमान जैसे अखण्ड ब्रह्मचारी और समर-शिरोमणियों ने जन्म पाया है। यहीं कवि-कुल गुरु "कालिदास", "दण्डि", "भवभूति" और "माघ" जैसे विद्वानों ने अपनी अतुल मेधा का परिचय दिया है। यहीं स्त्रियों ने कोमलांगी होने पर भी विदुषि और वीराङ्गना की गौरव युक्त पदवी प्राप्त की है। यही सतिशिरोमणि सीता, रुक्मिणी, द्रोपदी, शकुन्तला आदि की क्रीड़ा-भूमि है, कि जिन के अलौकिक पातिव्रत के कारण, आज भी भारतवर्षीय स्त्रीसमाज का मुख उज्ज्वल है। ऐसे कोटि २ उदाहरण हैं कि जिन से साबित हो चुका है कि भारतवर्ष कितना आदर्शरूप, सर्वगुण आगर और विद्वत्ता का समुद्र था। इसी ने जगद्गुरु की पदवी, जो, आज तक, किसी देश को, प्राप्त करने का सौभाग्य न मिला—प्राप्त की थी।

किन्तु कितने दुःख और लज्जा का स्थान है कि वही संसार का मुकुट-मणि, वही संसार का आदर्श रूप भारतवर्ष और हमारी परम पूजनीय सर्वस्वरूपा प्राणों से भी प्यारी जन्म-भूमि, हमारी अयोग्यता के कारण कैसी दीन, हीन, मलीन, कंगाल और अशक्त स्थिति में आ गई है। जो किसी समय बड़ा दानी था, वह आज द्वार २ का भिखारी है ; जो सब को शिक्षा देता और जगत्गुरु कहलाता था, वही आज शिक्षाप्राप्ति के लिये दूसरों की याचना करता है। जो दूसरों की आवश्यकताएं पूरी करने को समर्थ था, वही आज अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिये दूसरों का मुखापेक्षी है। जो किसी समय धनधान्य पूर्ण और समृद्धिवान् था, आज लुटलुटा कर एक २ कौड़ी के लिये मोहताज है। जो किसी समय वीरत्व की साक्षात

मूर्त्ति था, वही आज दूसरों की तिरछी नज़र देख कर डर के मारे कांपने लगता है, और दूसरों की बहादुरी पर आश्चर्य करता है।

प्यारे देश भाइयो! हम को सरस्वती ने, लक्ष्मी ने, साहस ने, धैर्य ने, पराक्रम ने, बहादुरी ने, ओजस्विता ने, और जितने भी सद्‌गुण हैं, सब ने, किमधिकम् मनुष्यत्व तक ने भी अयोग्य समझ कर त्याग दिया है; केवल, एक मात्र सहनशीलता पिशाची ने हमारा साथ नहीं छोड़ा। हम बात २ पर लातें खाते हैं, दूसरों को अपना सर्वस्व हरण करते देखते हैं, अपमान-पिशाच का हृदयविदारी कष्ट सहते हैं; किन्तु—इसी दुष्टा सहनशीलता के कारण सब कुछ सहते हैं। हाय! हाय!! सहनशीलता जैसे पवित्र सद्‌गुण को भी हम ने दुर्गुण की उपाधि दिला दी। सच है दुर्गुणियों के पास आ कर सद्‌गुण भी दुर्गुण बन जाया करते हैं।

प्यारे देश! तू सब प्रकार अधोगति को पहुंच गया! आराम से रहने वाले मनुष्यों को ख़बर तक नहीं है कि तेरी एक चौथाई सन्तान पर क्या गुज़र रही है। वह कैसी निकृष्ट अवस्था में अपना दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है। उस के पास रहने को घर नहीं, पहिनने को वस्त्र नहीं और खाने को अन्न तक नहीं है। ऋतु की क्रूरता से बचने को फटी गुदड़ी—हा! भगवन्!! फटी गुदड़ी का तो नाम किन्तु एक फटा सा चिथड़ा तक नहीं। आज खाने को अधपेटा मिला है तो कल का ईश्वर मालिक है! उपवास का दूसरा दिन है, माता को अन्न का दर्शन नहीं, गोद का बच्चा भूख के मारे रोता है और स्तन को खींच २ कर चूसता है, किन्तु उस में दूध का पता नहीं। हा! कैसा भीषण और लोमहर्षण दृश्य! देश! प्यारे देश!! तेरे कैसे दुर्भाग्य! तू कैसी स्थिति से कैसी स्थिति में आ गया? नहीं, नहीं, तू अपने आप इस स्थिति में नहीं आया। तेरी सन्तान के कर्तव्य शून्य बन जाने के कारण तू इस शोचनीय स्थिति में बरबस डाला गया है। यदि तेरी सन्तान अपने कर्तव्य को समझती, प्राकृतिक नियमों की अवहेलना न करती, सृष्टि-नियम को स्मरण रखते हुए अपना कर्तव्य पालन करती, इस कर्म भूमि में—इस कार्य्य-क्षेत्र रूपी संसार में—कर्महीन न

बनती, और अपनी बुरी आदतें सन्तान को विरासत (मौरूसी धन, पैतृक सम्पत्ति) में न देती तो तेरी ऐसी दशा कदापि न होती।

प्रिय मातृ-भूमि! प्रिय जननी!! माता!!! मैं अपने इस कथन की तुझ ही से साक्षी दिलाता हूं कि—क्या तुझे इस अधोगति में तेरी सन्तान ही ने ला डाला है? प्रत्युत्तर में माता की शोकपूर्ण गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ती है "आत्मविस्मरण, अधम स्वार्थ, कर्तव्य शून्यता" मा! सच है। यदि तेरी सन्तान आत्मविस्मरण न करती, अधम स्वार्थ के वशीभूत और कर्तव्यशून्य न बन जाती तो आज तेरी यह दशा कदापि न होती। हा! तेरी सन्तान में यह दुर्गुण न जानें कहां से आये। जिस को जो मालूम था उसे वह अपने साथ ही श्मशान में ले गया। इसी तरह प्राय: सारी विद्याएं नष्ट हो गईं; और जो ग्रन्थों में शेष रही थीं, वह साहित्यशत्रु पिशाचों के हाथ ग्रन्थरूप में अग्नि देव की शरण में सौंपी गईं।

पाठक! ऐसा नहीं है कि किसी देश अथवा जाति की उन्नति अथवा अवनति अपने आप ही हो जाती हो। संसार में किसी देश की—किसी जाति की—उन्नति अथवा अवनति का एक मात्र आधार, उस देश के—उस जाति के—मनुष्यों पर निर्भर है। यदि मनुष्य उत्तम हैं तो उन का देश और उन की जाति अवश्य उन्नत होती है। यदि मनुष्य मूर्ख हैं, आलसी हैं, निकम्मे हैं, और गुलामी में रहना पसन्द करते हैं तो उन का देश और उन की जाति कभी उन्नति नहीं कर सकती; वह क्रम २ से अधोगति की ओर बढ़ती हुई एक दिन बिलकुल नष्ट हो जाती है। संसार में ऐसी जातियों के सैकड़ों उदाहरण हैं कि, जिन्हों ने इस पृथ्वी पर शताब्दियों पर्य्यन्त राज्य किया और अन्त में नष्ट हो गईं कि जिन का आज कोई नाम तक नहीं जानता।

किन्तु आर्य्य जाति प्राय: दो हज़ार वर्ष से पराधीनता के चक्र पर चढ़ी रहने पर भी अब तक नष्ट न हो अपने जीवन को—अपने अस्तित्व को रख सकी है; इस में कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है। उस की रगों में उन अलौकिक शक्ति-पुनीतात्मा विद्वानों और वीरों का खून विद्यमान है

कि जिन का सौभाग्य-सूर्य्य आज भी संसार पर अपना प्रकाश डाल रहा है। उन की बुद्धि, उन की ओजस्विता, उन का धैर्य्य, उन का साहस, उन का पराक्रम, आज भी आर्य्य जाति में अंश रूप से विद्यमान है कि जिस के प्रताप से वह जिस कार्य्य को हाथ में लेती है उसी में अपना बुद्धिकौशल प्रकट किये बिना नहीं रहती।

प्यारे देश भाइयो! ज़रा अपने पूर्वज ऋषि और महर्षियों की बढ़ी हुई शक्तियों का अन्दाज़ा तो करो कि आज सैकड़ों नहीं, हज़ारों ही वर्ष व्यतीत हो जाने और हमारे उन को नष्ट करने के प्रयत्न में कमी न रखने पर भी—वंशपरम्परा के क्रमानुसार—वे शक्तियां हम में अब तक गुप्त रूप से मौजूद हैं। इसी लिये जिस कार्य्य को हम करते हैं उस में पूर्ण योग्यता प्रकट कर लोगों को आश्चर्य चकित कर देते हैं। किन्तु पूर्वापेक्षा इस में बहुत न्यूनता आगई है; फिर भी, समय है; और अब तक कार्य्य असाध्य नहीं हुआ है; यदि अब भी हम इस शेष रही हुई शक्ति को नष्ट न कर, अपनी सन्तान दरसन्तान--इस की वृद्धि करना शुरू कर देंगे तो सम्भव—सम्भव क्या निश्चय है, कि हमारी जाति अपने पूर्व गौरव को फिर से प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगी; वरन् वह समय अब ज्यादा दूर नहीं है, कि इस महान् जाति का नाम लेनेवाला भी, इस संसार में कोई न रहेगा।

हम ऊपर कह आये हैं कि-किसी जाति अथवा देश की उन्नति, उस जाति अथवा उस देश के लोकसमुदाय की व्यक्तिगत उत्तमता पर अवलंबित है; जिस जाति में उत्तम मनुष्य होते हैं—अर्थात् उत्तम मनुष्यों की अधिकता होती है-वही जाति उन्नति करने में समर्थ हो सकती है—अतएव जाति अथवा देश की उन्नति के लिये उत्तम मनुष्यों की वृद्धि होनी चाहिये। और उत्तम मनुष्यों की वृद्धि तब ही हो सकती है कि जब (यथा शक्य) हम स्वयम् उत्तम बनें और अपनी भावी सन्तान को उत्तम गुण विरासत में देकर सब प्रकार उत्तम बनावें। ऐसा न होने से—उत्तम गुणों के विरासत में न मिलने से--सन्तान के उत्तम बनने की सम्भावना नहीं की

आ सकती। क्योंकि जिन मनुष्यों में जन्म ही से दुर्गुणों का निवास रहता है, अर्थात् जिन को दुर्गुण ही विरासत में मिले होते हैं, उन को उत्तम शिक्षा भी दुष्कृत्यों ही में उपयोगी हो जाती है; इसलिये सन्तान में जन्म ही से उत्तम गुणों का समावेश करना और विरासत में भी उत्तम गुण ही देने चाहियें, कि जिस से वह शिक्षा प्राप्त करने पर उस का सदुपयोग कर अपनी जाति और अपने देश को भलाई कर सकें। अतएव प्रत्येक माता पिता का कर्तव्य है कि वे अपनी सन्तान में जन्म से पहिले ही, प्रत्येक प्रकार की मानसिक शक्ति को पूर्ण रूप से विकसित करें और उस के शारीरिक संगठन और स्वास्थ्य को अच्छा बनावें, जैसा कि हम कर सकते और बना सकते हैं।

किन्तु, वर्तमान समय में, इस कहने के साथ ही कि "अपनी सन्तान को इच्छानुसार उत्पन्न किया जा सकता है" बड़ी भारी कठिनाई उपस्थित होती है। वह यही कि, मनुष्य, सन्तान का उत्पन्न होना, सर्वथा ईश्वराधीन मान बैठे हैं। एक सनातन (अनादि काल से चले आते हुए) धर्मावलंबी भारतवासी होने की हैसियत से, मुझे भी ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं है। मैं सन्तान का उत्पन्न होना ही नहीं बल्कि संसार का प्रत्येक कार्य्य ईश्वराधीन मानता हूं, किन्तु केवल उतने ही अंश में, जितने अंश में कि मानना चाहिये; धर्मान्ध बन कर ज़बरदस्ती किसी बात को मनमाना मान बैठना सर्वथा भ्रान्तिमूलक है। देखिये :—परमात्मा ने सृष्टि की रचना की, सृष्टि की प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न किया, प्रत्येक जाति को जीवन प्रदान किया, और प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति के साथ ही, उस का कार्य्य यथाक्रम चलते रहने के लिये, कार्य्यक्रम भी निश्चित कर दिया। यह क्रम अथवा नियम अनादि हैं, कभी बदलते नहीं। मनुष्य के बनाये हुए नियम बदल सकते हैं और समयानुसार उन में परिवर्तन हो सकता है; किन्तु ईश्वरीय नियम सर्वथा अपरिवर्तनीय हैं। उदाहरणार्थ देखिये :—

"मनुष्य बाल्यावस्था से शनैः २ जवान हो कर शनैः २ ही बुड्ढा हो जाता है" यह एक प्राकृतिक नियम है। न तो कभी ऐसा देखा और न सुना

ही है कि पहिले बाल्यावस्था में आकर बुढ़ापा आगया हो और बाद में बाल्यावस्था आई हो। या बाल्या से जवानी में आकर बुढ़ापा आया हो और जवानी बाद में आई हो। यदि किसी से ऐसा कहा जाय कि, इस क्रम में इस प्रकार परिवर्तन होता है तो सुननेवाला तत्काल यही उत्तर देगा कि—"कैसा मूर्ख है; कहीं सृष्टि का नियम बदल सकता है; यह तो अनादि काल से ईश्वर ने जैसा नियम स्थिर कर दिया है वैसा ही होता है; ईश्वरीय नियम से कदापि विपरीत नहीं हो सकता।" पाठक! मेरा भी यही कहना है कि, ईश्वर ने प्रत्येक बात के नियम बांधे हैं; और यह सर्वथा असम्भव है कि ईश्वरीय नियम बदल सकें—या बदले जा सकें।

इसी प्रकार, प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति के साथ उस का कार्यक्रम अथवा नियम भी स्थिर कर दिया गया है। फिर यह कब सम्भव हो सकता है कि सन्तानोत्पत्ति विषयक नियम निश्चित करने से वंचित रहा हो। अत-एव मानना पड़ता है कि ईश्वर ने इस के भी नियम निश्चित किये हैं। ऐसी हालत में उन नियमों का पालन न कर, इस विषय को सर्वथा ईश्वर ही पर छोड़ देना, कौन बुद्धिमानी की बात है?

संसार में प्रत्येक कार्य्य नियमपूर्वक होता है। दृष्टि जहां तक पहुंच सकती है और बुद्धि जहां तक अपना कार्य्य कर सकती है, कोई बात नियमविरुद्ध होती दिखाई नहीं देती। पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य्य आदि अपने २ नियमानुसार अपना कार्य्य किये जा रहे हैं। आज यदि अग्नि अपने उष्णत्व को छोड़ दे तो क्या ये हजारों मन बोझा खींचनेवाले एञ्जिन और कारखाने जहां के तहां ठंढे न हो जायं? यदि वायु अपने नियम का पालन करना छोड़ दे तो क्षण भर में प्रलय हो जाय। इसी प्रकार संसार की अन्यान्य बातें भी अपने नियम को न छोड़ सदैव अपने नियमानुसार होती रहती हैं। फिर भला सोचिये तो सही कि जिस संसार में नियमों की ऐसी पाबन्दी है; उस में रह कर और नियमों का उल्लंघन कर के क्या कोई सुखी रह सकता है? नियमों का उल्लंघन कर के हम अपना श्रेय और आराम ही नहीं छोड़ते; बल्कि

अपने कुटुम्ब को, अपनी जाति को, और अपने देश को भी हानि पहुंचाते हैं; और उस सर्व शक्तिमान् जगदीश्वर की आज्ञा का, उस के हुक्म का, उस के क़ानून का, निरादर भी करते हैं।

ऊपर जो मनुष्य की आयु की मिसाल दीगई, उस को लेते हुए यह शङ्का की जा सकती है कि नियमानुसार चलें तब भी, और न चलें तब भी; बचपन से जवानी, और जवानी से बुढ़ापा ही आता है; फिर सन्तानोत्पत्ति विषय में भी, नियमानुसार चलें या न चलें; यह तो नियमानुसार जो होना है, वही होगा। अतएव क्या ज़रूरत है कि रास्ते चलते, नियमानुसार चलने की आफ़त मोल लें और बैठे बिठाए अपने आप को झञ्झट में डालें, किन्तु मुझे इस शङ्का में कुछ महत्व नहीं मालूम होता; क्योंकि संसार में प्रत्येक वस्तु के नियम एकसा नहीं होते। बहुत से कार्य्य ऐसे हैं कि जो स्वतः नियमानुसार होते हैं; किन्तु बहुत सी बातें ऐसी हैं कि जो नियमों की पाबन्दी किये बिना, ठीक तौर पर नहीं होती; और बहुत सी बातें तो ऐसी हैं कि जो नियमों की पाबन्दी किये बिना होती ही नहीं। यह भी एक नियम ही है, कि भूमि को हांक जोत कर बीज बोने से अन्न उत्पन्न होता है। भूमि को जितनी भी उत्तमता से हांक कर उपजाऊ बनाया जायगा और बीज डाल देने पर उस को जितनी अधिक संभाल रक्खी जावेगी, उतनी ही पैदावार की उत्तमता बढ़ैगी। केवल ज़मीन को खुरेद कर बीज डाल देने मात्र से और बाद में उस की संभाल न करने से पैदावार कैसी होती है, यह सब कोई जानते हैं। ऐसी बेपरवाही के साथ जिस कृषक ने, कृषि को बिगाड़ कर, उत्तम पैदावार (उपज) की आशा रक्खी है, उसे कौन मूर्ख न कहेगा? ऐसे खेत को देखनेवाला यह कभी नहीं कहेगा कि ईश्वर ने इस खेत में अच्छी पैदावार उत्पन्न नहीं की; बल्कि यही कहेगा कि कृषक ने मिहनत न कर अपनी खेती का नाश कर दिया! क्यों साहब! यह क्यों? कहां रहा आप का स्वतः नियमानुसार होना? अतएव मानना पड़ता है कि पूर्ण रूप से नियमों का पालन करने ही से उत्तम फल की आशा की जा सकती है। अन्यथा भ्रम मात्र है।

इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के विषय को भी समझना चाहिये। यदि सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमों को काम में न लाया जायगा तो "संयोग" (कि जो स्वतः एक नियम है) के फल स्वरूप, इतना ही होगा कि सन्तान उत्पन्न हो जायगी; किन्तु पूर्ण रूप से नियमों का पालन किये बिना, उत्तम सन्तान का उत्पन्न होना कठिन ही नहीं वरन असम्भव है। इस जगह यह शङ्का फिर की जा सकती है कि नियमों का पालन न करने की हालत में भी तो उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है, क्योंकि सारा संसार ही तो दुर्गुणी नहीं; उत्तम मनुष्य भी तो होते ही हैं? इस के उत्तर में हम पाठकों से इतना निवेदन करना ही काफ़ी समझते हैं (क्योंकि इस पुस्तक में आगे चल कर इस बात का भी सविस्तार विवेचन हो जायगा) कि जो उत्तम सन्तान देखने में आती है, उस को उत्पत्ति के समय उस के माता पिता की प्रकृति, स्वभाव, वृत्ति और स्वास्थ्य आदि अवश्य ही उन नियमों के अनुसार होने चाहियें, और वे वैसे ही थे, कि जिस की वजह से उन को सन्तान उत्तमता प्राप्त कर सकी।

जिस प्रकार निःस्वार्थ दत्तचित्त करनेवाले विद्वानों ने और और विषयों के नियम ढूंढ़ निकाले हैं, उसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाले नियम भी उन्हों ने मालूम किये हैं। सन्तानोत्पत्ति विषय उन के नियम ढूंढ़ निकालने से छुट नहीं गया है। इन नियमों के अनुसार चलने से—इन नियमों की पाबन्दी करने से—इच्छानुसार सौन्दर्य्यवान्, बुद्धिमान्, सुशील, सर्वगुण सम्पन्न, निरोगी, दीर्घायुषी, बलवान और बहादुर सन्तान उत्पन्न कर लेने में कोई सन्देह नहीं है।

मनुष्य संसार में किसी कार्य्य को करता है, किन्तु उस में सफलता न होने से, उस को प्रायः मिथ्या या असम्भव मान बैठता है और उस की उपेक्षा करने लगता है। मेरे विचार में यह ख़याल सर्वथा भूल से भरा हुआ है। नियमानुसार चलने से अवश्यमेव सफलता—आशातीत सफलता—प्राप्त होती है। अब यदि हमारी साधना ही में कुछ न्यूनता रही और कृतकार्य्यता न हुई, तो क्या अपनी ग़लती की वजह से उस बात को मिथ्या मान लेना उचित है? पाठक! हम तो इसे कदापि उचित नहीं कह

सकती। बल्कि उचित तो यह है कि जिस कार्य्य को हम आरम्भ करें, उस में यदि कुछ न्यूनता रह जाने के कारण सफलता न हो तो हमें दूने उत्साह के साथ सिद्धि के लिये प्रयत्न करना चाहिये, न कि अपनी ग़लती की वजह से उसी को मिथ्या और असम्भव मान बैठना।

दूसरी बाधा यह उपस्थित होती है, कि हमारे देशवासियों का ज्यादा हिस्सा इस विषय को लज्जाकर और हास्यास्पद समझता है। किन्तु ऐसे महत्त्व के विषय को कि जिस पर हमारी भावी सन्तति की भलाई का दार मदार है, केवल (दो शब्द) "लज्जाप्रद" कह कर त्याग देना कितनी अनर्थमूलक बात है। वे नहीं जानते कि लज्जा किस समय और किस कारण से होती है। देखिये लज्जा हमेशा उसी बात के करने में आती है कि जिस को हमारा दिल और समाज अनुचित समझता हो। हमारे विचार कलुषित अथवा अपवित्र नहीं हैं, हमारा हृदय और विचार दोनों पवित्र हैं और हम एक उत्तम कार्य्य की अभिलाषा से इस विषय को अपने देशबान्धव और भगिनियों के सामने रखने का प्रयत्न करते हैं तो लज्जित होने और लज्जाप्रद समझ कर इस विषय को त्याग देने का कोई कारण नहीं मालूम होता। यह केवल रूढ़िजन्य भ्रम मात्र है, कि जिस को अन्तिम नमस्कार कर सदा के लिये तिलाञ्जलि दे देना चाहिये। माना कि लज्जा मनुष्य का स्वाभाविक गुण है—गुण ही नहीं बल्कि मनुष्य के लिये एक उत्तम भूषण है। किन्तु वह उचित सीमा में है तभी तक गुण कहे जाने के योग्य है; उचित सीमा का उल्लंघन करने पर वह गुण न रह कर अवगुण की पदवी को पहुंच जाती है। अतएव इस लज्जाप्रद होने के भ्रम और रूढ़ि को छोड़ कर प्रत्येक पुरुष और मुख्यतः स्त्रियों को इस विषय का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। स्त्रियों के लिये मुख्यतः कहने का कारण यह है कि पुरुष का सन्तानोत्पत्ति में गर्भाधान करने तक ही बच्चे के सुधार से सम्बन्ध है; किन्तु स्त्री का, गर्भ रहने के पहिले से, बच्चा अच्छे प्रकार समझने न लगे तब तक सम्बन्ध है। इस लिये सन्तान के बिगाड़ और सुधार की विशेष कर स्त्री ही ज़िम्मेवार है। अतएव स्त्रियों

को इस विषय का ज्ञान प्राप्त करा देना आवश्यकीय है; इस के अलावा अपनी सन्तान को भी इस विषय की शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। क्योंकि:—

मनुष्य के लिये, जिस प्रकार और २ विद्याओं की शिक्षा आवश्यकीय है, मेरे ख्याल में, उन सब से, सन्तानोत्पत्ति विषय का ज्ञान प्राप्त करना, ज्यादा ज़रूरी है; क्योंकि प्रत्येक बात का बिगाड़ सुधार उत्तम सन्तान ही पर निर्भर है। उत्तम सन्तान ही मान लाभ कर सकती है, वही देश को लाभ पहुंचा सकती है। विद्वानों के विचारानुसार यदि सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमों का पालन किया जाय, तो संसार में सद्गुण का साम्राज्य हो और दुर्गुण प्रायः नाम मात्र रह जायं। पाठक! थोड़ी देर स्वस्थ हो कर बैठिये और कल्पना कीजिये; कि वह समय, जब कि उत्तम मनुष्यों की वृद्धि हो कर संसार आनन्दमय बन जायगा, मनुष्य जाति के लिये कितने गौरव और महत्त्व का होगा?

ऊपर जो कुछ कहा गया, उस का तात्पर्य्य यही है कि मनुष्य सन्तानोत्पत्ति विषय को ईश्वराधीन मानते हैं, वह भले ही मानें, ऐसा मानने में हानि नहीं, किन्तु ऐसा मानते हुए भी कर्तव्य पालन करने में उपेक्षा न कर इसी प्रकाश में मानना ठीक है कि ईश्वर ने जो सन्तानोत्पत्ति के नियम निश्चित किये हैं, उन नियमों के अनुसार कर्तव्य पालन कर उस सच्चिदानन्द परमात्मा पर भरोसा रक्खें कि उस के आज्ञानुसार—उस के नियमानुसार—चलने से, वह हमें हमारे इच्छित कार्य्य में अवश्य सिद्धि देगा। किन्तु "इच्छा तो है आनन्दोपभोग करने की, और सन्तानोत्पत्ति के लिये बहाना है, ईश्वराधीनता का" भला सोचिये तो, हमारी यह उपेक्षा, (कि संयोग के समय सन्तानोत्पत्ति का, कि जो संयोग का मुख्य हेतु है, ख़याल नहीं रखते बल्कि सन्तानोत्पत्ति के लिये संयोग ही नहीं करते; संयोग तो केवल आनन्द प्राप्ति के लिये है, धन्य!) उस सर्वव्यापी, सर्व शक्तिमान्, त्रिकालदर्शी ईश्वर से छिपी रह सकती है? इस उपेक्षा के फल स्वरूप, उस समय (सन्तानोत्पत्ति क्रिया के समय) माता

पिता की दुर्गुणी अथवा सद्गुणी जैसी ही स्थिति होती है, वैसी ही सन्तान भी उत्पन्न होती है और जिस २ विषय में नियम शिथिलता होती है, उस ही उस विषय में सन्तान अयोग्य रह जाती है; अयोग्य ही नहीं रह जाती बल्कि दुर्गुणी बन जाती है।

परमात्मा की न्याय कसौटी बड़ी ज़बरदस्त है—वह बड़ा न्यायी है। मनुष्य जिस विषय में उस के नियमों की अवहेलना करता है—उपेक्षा करता है - या क़ानूने कुदरत की ख़िलाफ़ वरज़ी करता है; परमात्मा भी उस को उस ही विषय में शिक्षा देता है। मनुष्य प्राकृतिक नियमों की परवाह न कर, स्वच्छन्दता पूर्वक कार्य्य करता हुआ सन्तान उत्पन्न करता है, वह न्यायी परमात्मा भी, उस को उस की इस बेपरवाही के कारण उत्तम सन्तान से वञ्चित रख इस का बदला देता है, अर्थात् सन्तान दुर्गुणी, अल्पायु, बदशकल, मूर्ख, पागल और माता पिता की अवज्ञा करनेवाली उत्पन्न होती है। दुर्गुणी सन्तान उत्पन्न होने से, मनुष्य को कितना कष्ट उठाना पड़ता है इस का किसी न किसी अंश में प्राय: सब मनुष्यों को अनुभव होगा। अज्ञान रह कर नियमों का उल्लंघन करने से अज्ञान अवस्था में—उस के दण्ड स्वरूप—कष्ट उठाना पड़ता है। दुर्गुणी सन्तान के दुर्गुणों के कारण, मनुष्य को बड़ी २ हानियां निरुपाय सहनी पड़ती हैं। अतएव कहा नहीं जा सकता कि मनुष्य कहां तक इन नियमों का ज्ञान प्राप्त न कर दुर्गुणी सन्तान द्वारा, दुर्गुणी सृष्टि की वृद्धि कर, अपने देश को, अपने समाज को, अपनी जाति को, अपने वंश को, स्वयम् अपने आप और अपनी सन्तान को अधोगति में रखना पसन्द करेंगे?

दुर्गुणी सन्तान से मनुष्य क़दम २ पर दुखी होते हैं। मैं ने अकसर, लोगों को अपनी सन्तान के दुर्गुणों से क्रोधित हो कर कहते हुए सुना है कि "ऐसी सन्तान से तो हम नि:सन्तान ही अच्छे थे, ईश्वर ने हमें ऐसी सन्तान—अधम सन्तान—क्यों दी; हम कब उस से मांगने को गये थे इत्यादि २"। किन्तु देखा जाय तो, उन का इस विषय में ईश्वर को दोष देना, और अपनी निर्दोष सन्तान (निर्दोष कहने का कारण यही है कि, सन्तान में जो कुछ भी दोष आया है वह उस के माता पिता

की कुमतियों का परिणाम है, अतएव वह दोषी समझे जाने के योग्य नहीं) को शिक्षा (सज़ा) करना सर्वथा अनुचित है; इस के लिये न तो ईश्वर और न सन्तान ही दोषी है, दोषी वे स्वयम् हैं कि उन्हों ने ईश्वरीय नियमों से मुंह मोड़ हवस और दुर्गुणों के वशीभूत हो, दुर्गुणावस्था में सन्तान उत्पन्न की कि जिस का उन्हें यह नतीजा मिला। ऐसे मनुष्यों को ईश्वर को दोष देने के बजाय अपने आप को दोषी समझ अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करना; और अपनी सन्तान को शिक्षा करने के बजाय, अपने आप शिक्षा (सज़ा) भुगतना चाहिये। वह सन्तान कि जिस का जीवन माता पिता की अज्ञानता के कारण विषमय बन गया है सर्वथा दयापात्र है।

यदि कोई यह शंका करे कि भारतवर्ष में कभी इन नियमों का प्रचार नहीं था, तो इस के उत्तर में मैं दावे के साथ कहूंगा कि उन का ऐसा समझना सर्वथा अनुचित है। भारतवर्ष में आज भी इस बात को साबित करने वाली बातें—कि किसी समय ये नियम भारतवर्ष में प्रचलित थे—रूढ़ी रूपी परदे में ढकी हुई मौजूद हैं, कि जिन पर थोड़ा विचार करने से असलियत ज़ाहिर हो जाती है और उन का प्रारम्भिक शुद्ध स्वरूप प्रत्यक्ष में आजाता है। पाठक ! इसी प्रकार की एक बात प्रायः स्त्री पुरुषों के मुख से सुनने में आती है कि जिसे हम उदाहरणार्थ नीचे देते हैं।

आप ने भी कभी सुना होगा और आश्चर्य नहीं कि कहा भी हो. किन्तु स्त्रियों के मुंह से—जब कि वे अपनी सन्तान के किसी अनुचित कार्य्य से दुखित होती हैं—ज़ियादा सुनने में आता है। वे अपनी सन्तान से कहा करती हैं कि "भय्या ! जैसा कष्ट तुम हमें देते हो, वैसा ही कष्ट तुम भी अपनी सन्तान से पाओगे।" इस कहने का चाहे वे तात्पर्य्य न समझती हों; (कि इन का यह आचार व्यवहार, थोड़े समय में इन का स्वभाव बन जायगा, और गर्भोत्पत्ति और गर्भवास के समय उसी प्रकार का प्रभाव इन की सन्तान पर होने से उस को भी उसी स्वभाव का बना देगा) और परम्परा की रूढ़ी के अनुसार ही कहती हों; किन्तु इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कुछ काल पहिले हमारे देश के स्त्री पुरुष, इस सिद्धान्त से, अनभिज्ञ

नहीं थे—वे इन नियमों को जानते और काम में लाते थे कि जो अब क्रिया-हीन अंश मात्र रह गये हैं। इस के अलावा बहुत सी बातें ऐसी हैं कि जो अबतक किसी न किसी अंश में अवश्य मानी और काम में लायी जाती हैं। जैसे, गर्भवास के दिनों में, घर का प्रत्येक व्यक्ति गर्भवती को प्रसन्न रखने की चेष्टा करता है, उस को हर तरह का आराम दिया जाता है, उस का दिल दुखाना बुरा समझा जाता है—उसे बहुत मिहनत का और थका देनेवाला काम नहीं करने दिया जाता ; गर्भवास के दिनों में गर्भवती को जिस वस्तु की इच्छा होती है यथा सम्भव वह उस के लिये अवश्य प्रस्तुत की जाती है; यदि संयोगवशात् ऐसा न हो तो गर्भवती और गर्भस्थ बच्चे दोनों के लिये हानिकारक माना जाता है। सीमन्त आदि संस्कार भी इसी आधार पर प्रारम्भ किये गये मालूम होते हैं। और भी ऐसी अनेक बातें हैं कि जो इस बात को प्रतिपादन करती हैं कि किसी समय हमारे यहां इन नियमों का पूरे तौर पर पालन किया जाता था; किन्तु अब वे, उस उच्च आशय से भ्रष्ट हो कर रूढ़ी की शकल में बदल गये हैं। और हमारे देश भाई बिना सिद्धान्त को समझे रूढ़ी के फन्दे में फंसे हुए उसी पुरानी लकीर को पीटे जाते हैं और उन का संस्कार या जीर्णोद्धार नहीं करते।

इस बात का इस से भी ज़बरदस्त सुबूत, हमें अपने धार्मिक एवम् ऐतिहासिक ग्रन्थों से मिलता है। भारत में ऐसा कौन व्यक्ति है, जिस ने भगवान कृष्ण और अर्जुन का वृत्तान्त न पढ़ा हो, या उन से परिचित न हो। देखिये उन्हीं के जीवनवृत्तान्त से हम इस बात का प्रमाण लेना अधिक उचित समझते हैं, क्योंकि वे ही लोगों के मार्गदर्शक और भारत के आदर्श रूप हैं :—(१) "प्रद्युम्न" (कृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र) के जन्म लेने से पहिले कृष्ण रुक्मिणी से कहते हैं कि "प्रिये ! यदि तुम्हें मुझ से सच्चा प्रेम है तो तुम्हारी सन्तान सर्वथा मेरे अनुरूप होगी।" (यों तो इस का बहुत लम्बा चौड़ा वृत्तान्त है, किन्तु विस्तार भय से हम यहां बहुत संक्षेप में कह देते हैं। यदि पाठकों को सविस्तर देखने की इच्छा हो तो भागवतादि ग्रन्थों में

देखें) कुछ समय बाद "प्रद्युम्न" का जन्म हुआ ; वे कृष्ण से इतने मिलते हुए थे कि दोनों में से यह जानना कठिन हो जाता था कि कौन कृष्ण और कौन प्रद्युम्न हैं। बल्कि एक बार (प्रथम * बार) स्वयम् कृष्ण को भी यह सन्देह हो गया था कि यह मेरा अनुरूप दूसरा पुरुष कौन है ? किन्तु इस से यह न समझ लिया जावे कि कृष्ण के गुण प्रद्युम्न में न आये हों, उन का गुण प्रत्येक भारतवासी जानता है कि वे प्राय: कृष्ण ही के समान थे। दूसरा दृष्टान्त हम "गर्भवास के दिनों में माता के चित्त पर पड़े हुए प्रभाव का सन्तान पर कितना असर होता है" इस विषय का देना चाहते हैं :—देखिये :—(२) अर्जुन और सुभद्रा से अभिमन्यु का जन्म हुआ था कि जो सब प्रकार अपने पिता के सदृश शौर्य्यवान् था। महाभारत युद्ध में एक दिन कृष्ण और अर्जुन की अनुपस्थिति में, द्रोणाचार्य्य ने चातुरी से "चक्रव्यूह" की रचना कर महाराज युधिष्ठिर से कहलाया कि या तो व्यूह में प्रवेश कर युद्ध कीजिये या कौरव पक्ष को विजयपत्र लिख दीजिये। महाराज युधिष्ठिर बड़े चक्कर में पड़े कि क्या किया जाय, हार तो मानी नहीं जा सकती; और व्यूह में प्रवेश कर युद्ध करना कृष्ण, अर्जुन और द्रोणाचार्य्य के सिवा कोई जानता नहीं ; तो क्या इतने महारथियों के जीवित रहते हुए भी हार मान ली जायगी ? महाराज युधिष्ठिर इसी चिन्ता में मग्न थे कि अभिमन्यु ने आकर प्रणाम किया और चिन्ता का कारण पूछा। महाराज के मुख से कारण सुनते ही वीर बालक की भुजाएं फड़क उठीं। वह धीर गम्भीर स्वर से कहने लगा कि "महाराज चिन्ता को त्यागिये ; सेना को युद्धस्थल में जाने की आज्ञा दीजिये ; और आज के युद्ध का भार मुझे सौंपिये ; मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि व्यूह भेद कर युद्ध करूंगा।" इस के बाद इस वीर बालक ने व्यूह में प्रवेश कर जैसी समर-निपुणता दिखाई है वह इतिहासज्ञ पाठकों से छिपी हुई नहीं है। किन्तु ऊपर हम ऐसा कह आये हैं कि इस व्यूह में प्रवेश करना,

---

* विशेष कारणों से वे जन्म ही से कृष्ण से पृथक् रहे और वयस्क होने पर, सहसा कृष्ण ने उन्हें देखा था।

अथवा इस का भेद करना कृष्ण, अर्जुन और द्रोणाचार्य्य के अतिरिक्त कोई चौथा व्यक्ति नहीं जानता था, फिर इस बालक को यह रीति कहां से मालूम हुई। क्या कृष्ण अथवा अर्जुन ने इस को यह रीति सिखाई थी? सो ऐसा भी नहीं हुआ। इसी प्रकार से महाराज युधिष्ठिर को भी इस विषय की शंका हुई थी; उस के समाधान में जो उन के समक्ष कहा गया वही हम पाठकों के विदितार्थ यहां उद्धृत करते हैं " अभिमन्यु जिस समय गर्भ में था, एक दिन सुभद्रा का चित्त बहुत व्याकुल हुआ, उस समय अर्जुन ने उस के मनोरञ्जनार्थ (धन्य आर्य्यभूमि! तेरी सन्तान की मनोरञ्जन चेष्टा भी कैसी अपूर्व थी!) "चक्रव्यूह" की रचना और उस के भेद करने की रीति कह सुनाई थी; और यह उसी का प्रभाव था कि ऐसी कठिनाई के समय वह उस कार्य्य के करने को समर्थ हुआ। पाठक! देखा आप ने, कि गर्भवास के दिनों में जो सुनी हुई—ध्यान पूर्वक सुनी हुई—बात का प्रभाव अपनी सन्तान पर कितना डाल सकती है। इस प्रकार के और भी अनेकों उदाहरण हैं किन्तु हम विस्तार भय से देना उचित नहीं समझते और इसी पर सन्तोष कर आशा करते हैं कि, अब तो पाठकों का वह भ्रम दूर हो गया होगा कि भारतवर्ष में पहिले इस विषय का प्रचार था या नहीं।

हाय! हाय!! भारतवर्ष का एक तो वह समय था कि बच्चा ज़रा झिझका नहीं कि माता तत्काल उसे हिम्मत दिलाती थी कि "बेटा! तुम बड़े वीर हो, वीर पिता की सन्तान हो, वीर माता के उदर से जन्म लिया और उसी का तुम ने स्तन पान किया है, देखो! कायरता तुम्हारे पास हो कर भी नहीं निकलने पायी है, माता भगवति तुम्हें भी तुम्हारे पिता के सदृश कीर्तिलाभ करने की सामर्थ्य देगी।" या आज यह समय आ गया है कि बच्चा कोई कार्य्य करना चाहता है और माता उसे उस कार्य्य से रोकने के लिये उस के दिल में मिथ्या भय उत्पन्न कर देती है। कोई "हव्वा" कह कर डराती है तो कोई "काली रात" का भय दिखाती है। भला सोचिये तो जिस बच्चे का शुरू ही से इस तरह दिल मार दिया जाय—जिस की हिम्मत को इस तरह ख़ाक में मिला दिया जाय—वह

जिस हिम्मत और दिलेरी के आधार पर सांसारिक कार्यों के करने का आरम्भ कर सकेगा और क्या वह दिल का मज़बूत और बहादुर बनेगा। वह संकट आने पर भयभीत हो कर आत्महत्या जैसा घोर पातक न कर बैठे इस में भी सन्देह ही है। अब जिस बच्चे के बीज की उत्पत्ति के समय या पहिले ही से माता पिता के ऐसे सत्यानाशी विचार हों, और जो स्त्रियां अपने घर में अकेली रहते और उसी घर में इधर उधर फिरते हुए भी भय के मारे थर २ कांपती हों उन की सन्तान का तो कहना ही क्या! वे किसी के तिरछी नज़र से देखने पर रोने भी लगें तो आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। इसी तरह और २ विषयों में भी माता पिता के विचारों का और विशेष कर माता के विचारों का—फिर चाहे वे अच्छे हों या बुरे—बच्चे पर असर होता ही है।

किन्तु जिस स्त्री-समाज पर हमारी सन्तति के बिगाड़ सुधार का विशेष आधार है, वर्त्तमान समय में वही स्त्री-समाज इतनी हीन और अज्ञानावस्था में है कि जिस के स्मरण मात्र से हृदय को दुःख होता है। जिस समाज की स्त्रियां इतनी मूर्ख हैं कि जो इतना भी नहीं जानतीं कि "स्वर" और "व्यञ्जन" किस बलाई बीमारी का नाम है, तीन और पांच मिल कर कितने होते हैं, विद्या से क्या लाभ हैं, और भारतवर्ष किस चिड़िया को कहते हैं, क्या कभी उस समाज के उन्नत होने की आशा करनी चाहिये? पहिले स्त्रियां कितनी साहसी और विदुषी होती थीं? इसी का प्रभाव था कि उन की सन्तान भी सर्वथा योग्य ही होती थी। किन्तु इस समय स्त्री-समाज के गिरी हुई दशा में होने से पुरुषवर्ग स्वयम् अवनति की ओर बढ़ता जा रहा है। ऐसी हीन दशा को पहुंचे हुये स्त्री-समाज से सर्वगुणसम्पन्न सन्तान पैदा होने की आशा रखना, गधी से घोड़ा पैदा होने की आशा रखने के समान है। मैं नहीं कह सकता कि जिस स्त्री को पुरुष का आधा अङ्ग माना जाता है और जिस स्त्री पर सन्तान के योग्यायोग्य होने का दार मदार है उसी को मूर्ख रख कर अपने अर्द्ध भाग को मूर्ख रखने और अपनी सन्तान के सारे जीवन का सत्यानाश करने में लोग क्या लाभ समझते हैं। प्रभो! दया

करो; भारतवासियों को इस अधोगति के दलदल से निकालो; उन के मृत प्राय शरीर में पुनरपि शक्ति सञ्चार करो; और उन्हें अपना हानि लाभ समझ कर उस से निस्तार पाने का साहस प्रदान करो। हे करुणासिन्धो! जिस जाति को आप ने किसी समय अपनाया था, आज उसी जाति को निःसहाय मत करो। भगवन्! हमें अपने पैरों पर खड़े होने को समर्थ करो!

स्त्री-समाज की अज्ञानता के कारण स्त्रियों में बहुत से निरर्थकप्रलाप भी सुनने में आते हैं; उदाहरणार्थ लीजिये—"वे कहती हैं कि "बे माता" (वय-माता अथवा विधाता) जैसी बच्चे को प्रारब्ध, रूप और गुण देती हैं, वैसा ही बच्चा उत्पन्न होता है।" यदि उन में कुछ भी सारा-सार विवेक बुद्धि होती, तो, वे इस का वास्तविक अर्थ समझ कर, इस मिथ्या कल्पना से अवश्य छुटकारा पा जातीं। किन्तु वे क्या करें; वे तो अपने पिता तथा पतियों की क्रूरता के कारण इस दैवी सम्पत्ति से वञ्चित हैं। अच्छा तो पाठक! आइये इस विषय पर हम ही थोड़ा विचार करें; देखिये :—विधाता का अर्थ बनानेवाला या रचना करनेवाला है; धर्म-शास्त्र के सिद्धान्तानुसार सृष्टि का विधाता, स्वयम्, शक्तिमान् जगदीश्वर है, कि जो बच्चे की प्रारब्ध बनाने नहीं आता और न रूप और गुण देने आता है (जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है) प्रारब्ध जन्म लेनेवाले आत्मा के पूर्वजन्म के सञ्चित कर्मों के अनुसार बनती है और गर्भाधान या इस से कुछ पूर्व जिस प्रकार के माता पिता के विचार—भले या बुरे—होते हैं उसी के अनुसार कर्मों वाली आत्मा उन के गृह में जन्म लेती है, अतएव ईश्वर का इस प्रारब्ध के बनाने से कोई सम्बन्ध नहीं। अब रूप और गुण के विषय में देखिये :—रूप और गुण देने भी ईश्वर नहीं आता। अतएव वह इस विषय में भी बच्चे की बे माता (वय माता) या विधाता नहीं माना जा सकता—जब ईश्वर बे-माता (वय माता) या विधाता नहीं माना जा सकता तो इस बे-माता का मतलब? देखिये :—मैं इस का उत्तर निवेदन करता हूं :—"बे-माता" कुछ बिगड़ा हुआ शब्द प्रतीत होता है कि जिस का शुद्ध स्वरूप "वयमाता" है। "वय-माता" की

युक्तिसंगत और बुद्धि-ग्राह्य मतलब—मतलब ही नहीं यथार्थ—यही मालूम होता है :—" वय " का प्रयोग समय अथवा काल के लिये होता है ; तो " वय " = " समय " और " माता " इस का अर्थ विशेष (खास) " समय की माता "। गर्भवास की अवस्था—या गर्भावस्था स्त्री की खास अवस्था होती है ; अतएव " वय माता " गर्भवास के समय की माता का बोधक है और गर्भावस्था में स्त्री अपनी संतान को, अपनी इच्छानुसार बना सकती है (जैसा कि पाठकों को, इस पुस्तक में आगे चल कर मालूम हो जायगा) इस लिये माता ही बच्चे की " वय माता " है। " वय-माता " का अर्थ लोकरूढ़ी के अनुसार " विधाता " मान लिया जाय तब भी इस अर्थ को कुछ हानि नहीं पहुंचती; क्योंकि माता ही बच्चे की रचना करती और उस को रूप या गुण देती है; तो बच्चे की विधाता भी वही है। अब जब यह मालूम हो गया कि माता ही बच्चे की वास्तविक " वय माता " या " विधाता " है; तो ऐसे निरर्थक भ्रम में पड़ने और मिथ्या किसी कल्पित व्यक्ति को, बच्चे की रचना करनेवाला, उस को प्रारब्ध बनानेवाला और उस को रूप तथा गुण देनेवाला, मान लेने से क्या लाभ है ? अतएव ऐसी मिथ्या भ्रमोत्पादक बातों को छोड़ कर हम को सच्चे सिद्धांत पर आना और ईश्वरीय नियमों का पालन कर अपनी संतान को उत्तम बनाने की कोशिश करनी चाहिये।

इन बातों के अतिरिक्त हमारे कार्यों में बाधा डालनेवाली एक बात और है। मेरे खयाल में (जहां तक मेरा अनुमान है) यह सही है कि अच्छे २ समझदार स्त्री पुरुष भी सन्तानोत्पत्तिक्रिया, (संयोग अथवा गर्भाधान) के समय विषयानन्द में लीन हो कर और ज्ञान भूल कर, दुर्गुण और कुचेष्टाओं के वशीभूत हो जाते हैं; और उसी अवस्था में सन्तानोत्पत्ति कर के उन ही दुर्गुणों और कुचेष्टाओं को अपनी सन्तान में भी पैदा कर देते हैं। वे इन दुर्वृत्तियों को रोकने की चेष्टा तक नहीं करते। मेरे इस कहने से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि आनन्द में लीन होजाना बुरी बात है। आनन्द उत्पन्न होना और आनन्दमय बन जाना तो सन्तानोत्पत्ति के लिये आवश्यकीय है, जैसा कि प्रेमद्वारा उत्तम " सन्तति " नामक बातें

प्रकरण में पूरे तौर पर बतलाया जावेगा) किन्तु उस आनन्द में लीन हो कर उत्तम वृत्तियों को और सद्गुणों को क़ायम रखते हुए संतान की उत्तमता को बढ़ाना चाहिये, न कि आनन्द में लीन हो कर कुचेष्टाएं करना और दुर्गुणों के वश हो जाना। मेरे विचार में प्रत्येक समझदार मनुष्य को यह मानना पड़ेगा कि ऐसा होना बुरा है।

किन्तु यह ख़याल रखते हुए भी, " कि हम कुचेष्टाओं के वश हो कर दुर्गुणी नहीं बनेंगे " लोग उन के वश होते हैं—बल्कि मैं कहूंगा—और मुझे स्पष्टतापूर्वक कहने दीजिये कि—लोग ऐसा होने (संयोग करने) के बहुत समय पहिले ही से बुरे विचारों द्वारा अपनी वृत्तियों को इतना बुरा बना लेते हैं कि जिस का कुछ हद नहीं। यह एक बड़ी हानिकारक कमज़ोरी है कि जो हमारे समाज में पैदा हो गई है। गो यह मनुष्यों की ख़याली कमज़ोरी, दिली कमज़ोरी अथवा दिमाग़ी कमज़ोरी भी कही जा सकती है; किन्तु वास्तव में यह आचरणों की कमज़ोरी है। और यह व्यक्तिगत कमज़ोरी ही सामाजिक कमज़ोरी की बुनियाद है। आजकल ज़ियादा लोगों बल्कि प्रायः सारे पढ़े लिखे और समझदार स्त्री पुरुषों में भी यह कमज़ोरी न्यूनाधिक बराबर पाई जाती है—इस लिये इस को सामाजिक कमज़ोरी भी कह सकते हैं।

आजकल प्रत्येक व्यक्ति के (ऐसे बहुत ही थोड़े व्यक्ति होंगे कि जिन में यह कमज़ोरी न होगी, इस लिये प्रत्येक व्यक्ति शब्द का प्रयोग किया जाना कुछ अनुचित न होगा) ख़यालात इतने कमज़ोर हो गये हैं कि वह अपनी दुर्वासनाओं के रोकने में सर्वथा असमर्थ हैं। वह इस कमज़ोरी के दलदल में गले तक फंसे हुए हैं। जो मनुष्य अपने ख़यालात को बुरी राह में जाते हुए नहीं रोक सकता और उन अधम और निकृष्ट विचारों के साथ ख़ुद भी—इच्छा न होते हुए भी—बुरी राह में घिसटता जाता है, वह संसार में अधम कर्मों के सिवा किस कार्य्य के करने में समर्थ हो सकता है। वह अपने समाज, अपने देश, अपनी जाति, अपने वंश, स्वयम् अपने अथवा अपनी सन्तान के लाभार्थ क्या कर सकता है ?

फ़र्ज़ कीजिये :—मैं ने किसी किताब में पढ़ा है अथवा किसी बुजुर्ग से सुना है कि "किसी पुरुष का परस्त्री को या किसी स्त्री का परपुरुष को कुदृष्टि से देखना तक महान् पातक है"। पाठक! मेरा अंतरात्मा भी इस बात को सत्य, उत्तम और बड़ी २ हानियों से बचानेवाली मानता है; और वास्तव में ऐसा ही है भी—किन्तु इसे सत्य मानते हुए भी—आपत्तियों—कठिन आपत्तियों से बचानेवाला मानते हुए भी—यदि मैं उस ओर अपना अनुराग प्रकट करता हूं—और अनुराग प्रकट करते हुए, यह भी सोचता जाता हूं कि मैं यह बुरा कर रहा हूं—फिर भी उसी कार्य्य को करने का यत्न करता हूं—यत्न करते हुए भी इस बात को मान रहा हूं कि मेरा यह प्रयत्न सर्वथा अनुचित है—किन्तु इस बात को मानते हुए भी यत्न कर उस कार्य्य को करता हूं; कर चुकने पर अपने दुष्कृत्य के लिये पश्चात्ताप करता हूं कि मैं ने महान् अनर्थ किया—किन्तु वैसा समय आने पर पुनः उसी अधम कृत्य में प्रवृत्त होता हूं।" पाठक! जिस कार्य्य को मैं बुरा मानता हूं, और बुरा मानते हुए भी पुनः २ उसी नीच कार्य्य को करता हूं इस का क्या कारण? क्या आप इसे दिली कमज़ोरी नहीं कहेंगे? क्या यह सदाचार की न्यूनता नहीं है? क्या यह दुर्गुण (उपर्युक्त उदाहरण से यह नहीं समझलेना चाहिये कि केवल इसी एक विषय में यह कमज़ोरी है-यह कमज़ोरी हमें प्रत्येक बात में पल २ और क़दम २ पर महसूस होती है) गिने गिनाये कुछ भाग्यवान् मनुष्यों को छोड़ कर सर्वव्यापी नहीं है? और जब सर्वव्यापी है– तो क्या यह हमारी सामाजिक कमज़ोरी नहीं है?

मेरे प्यारे भाइयो! तथा बहिनो! देखो हमें यह कमज़ोरी बहुत से उत्तम कार्य्यों के करने से वञ्चित रख इच्छा न होते हुए भी बुरे कार्य्यों की ओर ज़बरदस्ती घसीटे लिये जाती है; अतएव हमें इस हानिकारक सामाजिक न्यूनता रूपी व्याधि को कालामुंह कर भारतीय पुण्यभूमि से—हमारे इस कर्मक्षेत्र से-सदा के लिये निकाल देना चाहिये। किन्तु सुनिये तो यह बहुत दिनों की हिली हुई है और हानिकारक व्याधियों के समान, कि जो दूसरे का रक्त चस कर अपना जीवन बढ़ाते हैं—इस को भी किसी

देश अथवा जाति का जीवन चूस लेने की बाढ़ पड़ी हुई है—अतएव यह आसानी से हमारा पीछा छोड़नेवाली नहीं है; और इस से पीछा छुड़ाये बिना हमें अपने देश अथवा जाति के जीवन की आशा रखना वृथा है। यदि हम अपने देश अथवा जाति के जीवन को रखना और संसार में उन्नति करना चाहते हैं तो इस से पीछा छुड़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होने की आवश्यकता है। जहां हमें कोई बात उचित मालूम हुई नहीं—हमारे अन्तरात्मा ने उसे मान्य किया नहीं—कि हमें तत्काल उसे ग्रहण कर उस के अनुसार कार्य्य शुरू कर देना चाहिये। इस दृष्टा में (इस कमजोरी ने) बहुत से देशों का जीवन चूसा है इस लिये वह अपने जीवन चूसने की तृषा को तृप्त करने के लिये, ऊपर से आनन्ददाई (किन्तु वास्तव में साक्षात् विष के समान) कार्य्यों में अनुरक्त करना चाहेगी, किन्तु मृग-जलतृष्णा के समान उन आनन्ददाई प्रतीत होनेवाले कार्य्यों में न फंस कर जिस बात को हमारा अन्तरात्मा उचित मानले, उस बात को तत्काल कार्य्यरूप में परिणत कर देना चाहिये; तब ही हम इस जीवन हरण करलेनेवाली कमजोरी से छुटकारा पा सकेंगे। किसी बात को या विषय को सुन कर या पढ़ कर यह कह देने मात्र से—कि वास्तव में बात तो सत्य है—काम नहीं चलता; और न इस प्रकार हमें अपनी उन्नति की सम्भावना ही रखनी चाहिये।

हमारे शास्त्रकारों ने ठीक कहा है "कि बुरे कार्य्य को बुरा समझ कर, उस के करने की जिस को इच्छा नहीं होती वह मनुष्य उत्तम है; बुरा समझने पर भी जिस को इच्छा होती है किन्तु वह उस कार्य्य को करता नहीं, वह मध्यम श्रेणी का मनुष्य है; इच्छा होने पर जो उस कार्य्य को करता है किन्तु एक बार कर के पश्चात्ताप कर, आयन्दा के लिये उस से बचता है वह अधम है; और जो पुनः २ उसी अनर्थकारी कार्य्य को करता रहता है—वह मनुष्य नहीं, साक्षात् पिशाच है।"

प्रिय पाठक! अब मैं इस को यहीं समाप्त कर, विद्वानों के संतानोत्पत्ति विषयक मालूम किये हुए प्राकृतिक नियमों को—अपनी बुद्धि के अनुसार (यथाशक्य) पाठकों के समक्ष रखने की चेष्टा करूंगा।

प्रकरण दूसरा।

जानने योग्य बातें।

इच्छानुसार उत्तम संतान उत्पन्न करलेने की रीति मालूम करने से पहिले, निम्न लिखित बातों को जान लेना आवश्यकीय है।

(१) वीर्य्य क्या वस्तु है और वह किस प्रकार उत्पन्न होता है?

(२) पुरुषवीर्य्य में क्या २ पदार्थ हैं?

(३) स्त्रीवीर्य्य में क्या २ पदार्थ हैं?

(४) संयोग क्या है और किस निमित्त किया जाता है?

(५) गर्भाधान किसे कहते हैं और गर्भाशय क्या वस्तु है?

(६) संयोग करने पर भी गर्भ नहीं रहता यह क्यों?

(७) शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रज की पहिचान।

(८) गर्भाधान के लिये कौन समय अच्छा है?

(९) रजस्वला को किस प्रकार रहना चाहिये?

(१०) गर्भाधान-विधि अथवा गर्भाधान करने की रीति।

उपर्युक्त बातों का प्रस्तुत विषय—सन्तानोत्पत्ति—के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण पाठकों से निवेदन है कि वे इन को ध्यानपूर्वक अवलोकन करें:—

(१) वीर्य्य क्या वस्तु है और वह किस प्रकार उत्पन्न होता है?

आयुर्वेद * के सिद्धान्तानुसार :—जो कुछ आहार अथवा भोजन किया जाता है, वह कण्ठ-नलिका के द्वारा पक्वाशय (मेदा=stomach) में जाता है; वहां पाचक-शक्ति द्वारा, उस आहार का पाचन हो कर रस बनता है; सार-भाग उसका हो रस के रूप में, हृदय में जाता है; शेष रहा

* भावप्रकाश से।

भाग मल कहलाता है; वह दूसरे मार्ग से बाहर निकल जाता है। इस में से जो जल का भाग अलग निकलता है, वह मूत्राशय में इकट्ठा हो कर बाहर निकलता है। हृदय में गये हुए रस का फिर पाचन होता है, और वह रुधिर के स्वरूप में बदल कर पहिले रुधिर में मिल जाता है। पहिले के रुधिर में मिल जाने पर इस का फिर पाचन होता है। पाचन हो चुकने पर इस के तीन भाग होते हैं अर्थात् वह स्थूल, सूक्ष्म और मल नामक तीन भागों में विभक्त होता है। रुधिर का मल पित्त है कि जो पाचक पित्त में मिल कर उस को पुष्ट करता है। सूक्ष्म भाग रुधिर में रह कर, रुधिर का पोषण अथवा रुधिर की क्षति को पूरा करता है; स्थूल भाग मांस में जाता है। पहिले के मांस में मिल कर इस का फिर पाचन होता है, और पूर्वानुसार तीन भागों में विभक्त होता है। मल का भाग कान के मैल के नाम से कान द्वारा बाहर निकलता है; सूक्ष्म भाग मांस में रह कर मांस का पोषण करता है; और स्थूल भाग मेदा में जाता है। पहिले की मेदा में मिल कर इस का फिर पाचन होता है— मल जो निकलता है उसे पसीना कहते हैं (यह ठंढा होने से सोतों में रहता है; शरीर में गरमी पहुंचने पर तपता है और गरमी से शरीर का रक्षण करने के लिये, पसीने के रूप में रोमावली के छिद्रोंद्वारा बाहर निकल जाता है) सूक्ष्म भाग मेदा ही में रह कर उस को पुष्टि करता है; और स्थूल भाग शारीरिक अस्थियों में जाता है। क्रमानुसार यहां इस का फिर पाचन हो कर तीन भागों में विभक्त होता है; मल से नख और बाल बनते हैं, सूक्ष्म भाग अस्थियों में रह कर उन की क्षति को पूरी करता है और स्थूल भाग मज्जा में जाता है। वहां इस का फिर पाचन होता है; इस में से जो मल निकलता है, वह आंख के मैल के नाम से आंख द्वारा बाहर निकलता है; सूक्ष्म भाग मज्जा में रह कर उस को पुष्ट करता है। शेष रहा भाग वीर्य में मिल जाता है और पहिले वीर्य में मिल कर इस का फिर पाचन (शुद्धि) होता है; किन्तु जिस प्रकार हजार बार तपाये हुए स्वर्ण (सोने) में मैल

नहीं निकलता, उसी प्रकार इस तरह शुद्ध हुये वीर्य में मल (मैल) नहीं निकलता।

आहार करने से वीर्य बनने तक, रस का, पृथक २ छः धातुओं में पाचन (शुद्धि) होता है। प्रत्येक धातु में पाचन होते हुए पांच दिन और डेढ़ घड़ी लगती है। इस हिसाब से प्रायः एक मास नौ घड़ी में आहार का वीर्य बनता है। "यह केवल सम प्रकृतिवालों के लिये कहा गया है। जिन की पाचन शक्ति बलवान या निर्बल है; उसी के अनुसार समय भी न्यूनाधिक समझ लेना चाहिये।"

आहार किये हुए पदार्थ से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य्य बनता है। वीर्य का फिर पाचन होता है और दो भागों में विभक्त होता है; स्थूल और सूक्ष्म। इन में से स्थूल भाग वीर्य में रहता है और सूक्ष्म भाग का "ओज" बनता है। अर्थात् सब का श्रेष्ठ भाग वीर्य और वीर्य का श्रेष्ठ भाग ओज है; इसी को बल भी कहते हैं। वीर्य की वृद्धि होने से ओज की भी वृद्धि होती है; वीर्य के कम होने से ओज भी कम हो जाता है और निर्बलता बढ़ती है। ओज का नाश होने पर शरीर का भी नाश हो जाता है; अतएव ओज ही प्राणी का जीवन है। उत्साह, बुद्धि, धैर्य, लावण्य, ओजस्विता, सुन्दरता आदि सब इसी ओज की विभूतियां हैं। अतएव साबित हुआ कि यदि वीर्य, अधिकता से—अनुचित रीति से—नष्ट किया जाता है तो उस के साथ उपर्युक्त बातें—बल्कि जीवन तक नष्ट हो जाता है (इसी लिये हमारे शास्त्रकारों ने सन्तानोत्पत्तिकार्य्य के अतिरिक्त एक वार के वीर्य-पात करने से एक स्वजातिव्यक्ति की हत्या करने के बराबर पातक बतलाया है)। वीर्य्य की पुष्टि होने से इन सब की पुष्टि होती है।

स्त्रियों के वीर्य्य होता है, किन्तु वह सन्तानोत्पत्ति में उपयोगी नहीं होता; अतएव आयुर्वेद के आचार्य्यों ने, उसे भी सातवां धातु ही मान कर रज ही को मुख्य माना है। रज को इस वीर्य्य से ही बल, वर्ण तथा

चित्र नम्बर १

बाज़ू से

सामने से

वीर्यकीट पृ० ३३

पुष्टि मिलती है; अर्थात् इस वीर्य का ही रज बनता है; और यही सन्तानोत्पत्ति करता है।

वीर्य का स्थान। } प्रायः सारा शरीर ही वीर्य के रहने का स्थान है—वीर्य का कोई विशेष स्थान नहीं है। जिस प्रकार दही के अन्दर मक्खन रहता है, उसी प्रकार वीर्य भी समस्त शरीर में व्याप्त रहता है और जिस प्रकार दही को मथने पर मक्खन निकल आता है, उसी प्रकार "रतिसेवन" द्वारा समस्त शारीरिक इन्द्रियों का मथन हो कर, वीर्य अण्डकोष में इकट्ठा होता है और "उपस्थ इन्द्रि" द्वारा बाहर निकल जाता है।

(२) पुरुष-वीर्य्य (Semen) में क्या २ पदार्थ हैं ?

पुरुष के दो अण्ड-कोष (Testicles अण्डे के आकार वाले, दो गोल अवयव) होते हैं। इन्हीं के द्वारा वीर्य्य उत्पन्न होता है, और ये ही वीर्य्य के स्थान भी हैं (वीर्य्य सारे शरीर से खिंच कर अण्डकोष में इकट्ठा होता है; अतएव [खास सूरत में] अण्डकोष को वीर्य्य का स्थान मान लेने में कोई हानि नहीं मालूम होती)।

पाश्चात्य विद्वानों ने "सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र" द्वारा वीर्य्य का निरीक्षण कर के पता लगाया है कि इस में एक विशेष प्रकार के जन्तु अथवा कीट होते हैं (देखो चित्र नं० १)। इन के केवल सिर और पूंछ होती हैं; इन में सजीव जंतुओं के सदृश संचालन और "स्त्री-कोष" ("स्त्री-कोष" क्या है? इस के विषय में पाठकों को आगे मालूम होगा) को बच्चे का बीज बनाने की शक्ति होती है। पुरुष-वीर्य्य इसी प्रकार के जन्तुओं का जन्तुपुञ्ज है— अर्थात् पुरुषवीर्य्य में ऐसे जन्तु ही जन्तु होते हैं—वह सर्वथा इन्हीं जन्तुओं का बना हुआ होता है।

इन जन्तुओं का विशेष हाल जानने के लिये यूरोपियन विद्वान् ही हमारे अच्छे मार्गदर्शक बन सकते हैं; अतएव देखना चाहिये कि उन्हों ने अब तक के कठिन परिश्रम से इस विषय में क्या २ मालूम किया है। यों

तो इस विषय में अनेक विद्वानों ने अपने २ मत प्रकट किये हैं; किन्तु हम यहां केवल दो विद्वानों के अभिप्राय का ही उल्लेख करेंगे; कारण कि, इन दोनों विद्वानों ने सब मतों को ध्यान में रखते हुए अपने अभिप्राय दिये हैं। पाठक! उन का अभिप्राय हमारे शब्दों में सुनने की अपेक्षा उन्हीं के शब्दों में सुनना अधिक अच्छा होगा। देखिये:—

डाक्टर "ट्राल" (Trall) कहता है कि * "अब तक साफ़ तौर" "पर इस बात की असलियत नहीं मालूम की जा सकी है। वीर्य्य की" "बनावट का जहां तक रासायनिक क्रिया से सम्बन्ध है, उस के विषय" "में. मैं केवल अपना अभिप्राय देना ही उचित समझता हूं कि प्राणतत्त्व" "(Vital) और रासायनिक पृथक्करण के तरीक़ों में कोई प्राकृतिक" "सम्बन्ध नहीं है। पृथक्करण केवल पृथक्करण के तरीक़े को बतलाता है।" पृथक्करण के तरीक़े को पूरा करने के बाद. रसायन-शास्त्र (Chemistry)" "केवल इतना बतलाता है कि शेष क्या रहा?"

"सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की सहायता से परीक्षा की गई; उस से मालूम" "होता है कि, पुरुष-वीर्य्य में एक प्रकार के अति सूक्ष्म जन्तु होते हैं," "कि जो, स्त्री-कोष (Cell) को गर्भरूप में अथवा बच्चे के बीजरूप" "में परिणत करने (Impragnate करने) के लिये अत्यन्त आवश्यकीय" "हैं। इन जन्तुओं को नीचे लिखे नामों से नामांकित किया गया" "है:— "स्परमैटोज़ोआ (Spermatozoa), सेमिनल फ़िलेमैण्ट" "Seminal filement), ज़ूस्पर्म्स (Zoo-perms), सेमिनल एनेमल-" "क्यूल्स (Seminal anamulcules) और स्परमैटोज़ोएड्स (Sperma-" "tozoeds)। इस के अतिरिक्त "वेगनर" (Wagner) आदि विद्वानों" ने" इस में (पुरुषवीर्य्य में) "सेमिनल ग्रेन्यूल्स" (Seminal" "granules) नाम के दाने (ज़र्रे) भी मालूम किये हैं; कि जो" "सेमिनल फ़िलेमैण्ट (Seminal filement) अर्थात् वीर्य्यकीटों"

* "Sexual Psychology by Trall."

"(अन्तुओं) की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। ये दोनों (दाने तथा "
" कीटों) एक प्रकार के द्रव पदार्थ में मिले हुए रहते हैं। "

" शुद्ध वीर्य्य (Pure Semen) वीर्य्यकीट (सेमिनेल एनेमलक्यूलस- "
Seminal anamulcules) और वीर्य्य के दानों" " सेमिनेल ग्रेन्यूलस- "
(Seminal granules) से बना हुआ होता है, कि जो एक प्रकार "
" के बहुत थोड़े द्रव पदार्थ में घिरे हुए होते हैं। "

" स्परमेटोज़ोआ" की एनेमिलिटो (Anamility) मालूम करने "
" के लिये कई बार सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा कठिन जांच और परीक्षा "
" की गई, किन्तु इस बात को अब तक शरीर-रचना शास्त्र के (Physi-"
" ology) के अनिश्चित प्रश्नों में गिनती है। समान रूप से (Analo-"
" gically) बहस करते हुए मैं नहीं कह सकता कि कीकोष के विषय "
" में जितना मालूम हो चुका है, उतना वीर्य्यकीटों के विषय में मालूम "
" हुआ हो।"

" कालिकर (Kollikar) के मतानुसार पुरुषवीर्य्य का प्रत्येक "
" जन्तु (Seminal filement) १/५० इञ्च जितना बारीक या छोटा "
" होता है कि जो साधारण आंख से कदापि नहीं देखा जा सकता "

अब " किर्क्स * " का अभिप्राय भी देख लीजिये कि वह इस विषय में क्या कहता है। " वीर्य्य सफेद, लेसदार चिकना पदार्थ है और उस में विशेष प्रकार की गन्ध होती है। यह सेमिनेलग्रन्यूलस नामक दोनों "
" और वीर्य्यकीटों (Seminal filements) का बना हुआ पदार्थ है। "
" इस में अधिक संख्या वीर्य्यकीटों ही की होती है। "

" वीर्य्यकीट अथवा जंतु का सर चपटा और लंब गोल होता है। इसी "
" सर से मिली हुई इस की पूंछ है, कि जो लम्बी, पतली और चढ़ी- "
उतार होती है "।

" सर की लंबाई १/५००० और चौड़ाई १/१२००० होती है। पूंछ एक इञ्च "
की १/५०० से १/४५० तक होती है। इसी में सञ्चालनशक्ति होती है और "

---

*" Kirkes' Handbook of Physiology " के आधार पर।

" इसी शक्ति के कारण, ये आगे बढ़ते और स्त्रीकोष को गर्भरूप में "
" बदलने को समर्थ होते हैं; अर्थात् आगे बढ़ कर स्त्रीकोष में प्रवेश करते "
" हैं। यह सञ्चालन तड़पने की शकल में (Lashing) होता है, कि जो "
" वीर्य्यकीट के जिस्म के एलकेलाइन नामक द्रव पदार्थ में घण्टों या "
" दिनों तक क़ायम रह सकता है। "

" मानवीय वीर्य्यकीट लम्ब गोल (गावदुम=ऊपर से मोटा "
" और नीचे से क्रमानुसार कुछ पतला जिसे अंग्रेज़ी में Club shape "
" कहते हैं) होता है। इस सर की जड़ में एक बहुत नाज़ुक और "
" बारीक तार (Filement) भी होता है, कि जो इस के आकार से "
" वीर्य्यकीट के आकार से) तिगुना या चौगुना लंबा होता है। यह "
" एक झिल्ली से ढका हुआ होता है, कि जो बहुत चौड़ी, जिस में यह "
" तार कीट के शरीर से कुछ अन्तर पर रह सके, होती है। "

" कीट का सर भी इसी झिल्ली से ढका हुआ रहता है। वह पदार्थ "
कि जिस से इस का सर बना हुआ है, तार की बनावट वाले पदार्थ से "
" पृथक् है। हरकात करने की शक्ति अथवा गुण विशेष कर इस तार "
" और झिल्ली ही में होता है। "

---

(३) स्त्रीवीर्य्य (ovum) में क्या २ पदार्थ हैं ?

जिस प्रकार पुरुष के अण्डकोष होते हैं, उसी प्रकार स्त्री के भी अण्डकोष (Ovaries होते हैं। पुरुष के अण्डकोष बाहर की ओर होते हैं; किन्तु स्त्री के अण्डकोष अन्दर की ओर (एक गर्भाशय के दाहिनी ओर, और दूसरा बाईं ओर) होते हैं; इन्हीं से स्त्रीवीर्य्य * उत्पन्न होता है।

---

*इस पुस्तक में स्त्री पदार्थ के लिये जहां २ वीर्य्य शब्द आवे उस का रज ही से अभिप्राय है ऐसा समझना चाहिये : क्योंकि गर्भोत्पत्ति में रज ही प्रधान है। स्त्रीवीर्य्य से गर्भ रह जाने की हालत में बिना अस्थि का बच्चा उत्पन्न होता है—अर्थात् उस के शरीर में हड्डी नहीं होती। और यह रज मासिक-

चित्र नम्बर २
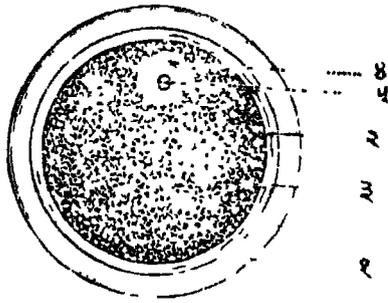
रजोकोष पृ० ३७

जिस प्रकार पुरुषवीर्य में एक विशेष प्रकार के जन्तु अथवा कीट होते हैं, उसी प्रकार स्त्रीवीर्य में भी एक विशेष प्रकार के कोष (Cells) होते हैं। काल्लिकर (Kollikar) के मतानुसार इन का आकार १/३०० इञ्च के बराबर होता है; अर्थात् पुरुषवीर्य्य के जन्तुओं की अपेक्षा ये कोष तिगुने बड़े होते हैं।

इस कोष का आकार अण्डे के सदृश होता है, और जिस प्रकार अंडे के अन्दर दो भाग—सफेदी और ज़रदी—होते हैं; उसी प्रकार इस कोष के अन्दर भी दो भाग होते हैं कि जिन को क्रमानुसार " न्यूक्लियस " (Nucleus) और " प्रोटोप्लाज़्म " (Protoplasm) कहते हैं। इसी " प्रोटोप्लाज़्म " को " वाइटेलस " (Vitellus) और " याक " (Yalk) भी कहते हैं।

इस प्रकार के एक कोष को " सूक्ष्मदर्शक यन्त्र " द्वारा देख कर—उस में क्या २ पदार्थ हैं—इस बारे में जो कुछ विद्वानों ने स्थिर किया है, नीचे दिया जाता है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह सर्वथा निश्चित हो चुका है, फिर भी जितना कुछ इस समय तक निश्चित हो चुका है, उसी को यहां लिखा गया है।

" स्त्रीवीर्य्य का एक परिपक्व कोष व्यास में १/२०० से १/१२० इञ्च तक "
" होता है। चित्र नं० (२) को देखिये यह एक कोष का चित्र है, "
" इस में नं० (१) वाला भाग एक स्वच्छ और पारदर्शक झिल्ली के सदृश "
" है। इस झिल्ली की मोटाई १/२५०० इञ्च के बराबर है। इस को अंगरेज़ी "
" में " वाइटेलीन मेम्बरेन " (Vitelline Membarane) कहते है। सूक्ष्म- "
" दर्शक यन्त्र द्वारा यह झिल्ली चमकदार छल्ले के सदृश मालूम होती "
" है। इस झिल्ली के दोनों तरफ़ (अन्दर तथा बाहर की तरफ़) काली "
" लकीर होती है, अर्थात् यह झिल्ली दोनों तरफ़ काली लकीर से घिरी "
" हुई होती है। (देखो चित्र (२) अंक (२)।

धर्म होने पर उत्पन्न होता है और सोलह रात्रि पर्य्यन्त गर्भोत्पत्ति करने योग्य रहता है।

प्रोटो प्लाज़्म............" इस पारदर्शक झिल्ली के अन्दर प्राय: इसी "
(सपेदी) " से मिली हुई "वाइटेलस" होती है (देखो चित्र"
" नं० (२) में अंक (३)) कि जो द्रव पदार्थ के समान है। इस में "
" दो प्रकार के परमाणु होते हैं। एक बड़े अथवा गोल परमाणु और "
" दूसरे छोटे परमाणु। गोल परमाणुओं को " ग्लब्यूल्ज़ " (Globules)"
" और छोटे परमाणुओं को " ग्रन्यूल्ज़ " (Granules) कहते हैं।"
" इन दोनों प्रकार के परमाणुओं का आकार एकसां नहीं होता।"
" छोटे परमाणु अपने आकार और बराबर संचालन होने के कारण"
" " रंगीन परमाणुओं " (Pigment Granules) के सदृश होते हैं।"
" गोल परमाणु कि जो " फ़ैटग्लब्यूल्ज़ (Fat globules) के सदृश होते "
" हैं विशेष कर ज़रदी (न्यूक्लस = Nucleus) के घेरे (दायरे) के "
" पास ज़्यादा होते हैं। (मांसभक्षी पशुओं के वीर्य्य में छोटे परमाणुओं "
" की संख्या अधिक होती है और मनुष्य जाति के वीर्य्य में गोल "
" परमाणुओं की।) "

न्यूकल्यस............" ज़रदी के भाग को—न्यूक्ल्यस या—जरमी- "
(ज़रदी) " नल वेसिकिल " (Nucleus or Germinal "
" Vesicle) कहते हैं; यह ¹/₇₂ इंच के बराबर होता है। " वेसिकिल याक "
" के छोटे २ परमाणुओं की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है और याक "
" से घिरा रहता है। प्राय: याक के बीच में रहता है और याक के "
" दूसरे परमाणुओं की अपेक्षा बहुत आहिस्ता बढ़ता है; किन्तु ज्यों २ "
" बढ़ता जाता है याक के किनारे पर आता जाता है; यहां तक "
" कि वह उस की सितह (Surface) के बराबर आ जाता है। "
" देखो चित्र नं० (२) में अंक नं० (४)। यह बारीक, और स्वच्छ "
" पारदर्शक झिल्ली के सदृश होता है। उस में रेशा (तंतु) या ताना बाना '
नहीं होता। इस झिल्ली के अन्दर पानी के सदृश स्वच्छ द्रव पदार्थ होता "
" है। इस में कभी २ परमाणु भी पाए जाते हैं। न्यूक्लस के उस किनारे
" पर कि, जो याक के घेरे के पास होता है—" जरमीनेल स्पाट, "

" (Germinal spot or madula Germinativa or Nucleolus) कि जो "
" सुन्दर पीले रंग के परमाणु के सदृश होता है, होता है—देखो चित्र नं०"
" (२) में अंक (५)। इस में विशेष प्रकार का चार (खार) होता है और "
" प्रकाश की किरणों को परावृत्त (Refract) करने की शक्ति ज़ियादा "
होती है *। "

(४) संयोग क्या है ? और वह किस
निमित्त किया जाता है ?

संयोग का शब्दार्थ :—योग होना, मिलना, अथवा सम्मिलित होना है। यूं तो, दो वस्तुओं का योग होता हो, वहीं संयोग शब्द का प्रयोग किया जा सकता है ; किन्तु विशेष स्थान पर प्रयोग होने से यह शब्द स्त्री पुरुष के, विशेष अवस्था में, योग होने का बोध कराता है। पाठक ! इस से ज़ियादा स्पष्टतापूर्वक इस शब्द की व्याख्या करना उचित नहीं मालूम होता और इतने ही में पाठक, इस का भावार्थ समझ सकते हैं। (इस पुस्तक में भी यथा स्थान इस शब्द का इसी आशय से प्रयोग किया गया है।)

अब " संयोग किस निमित्त किया जाता है " इस का विचार कीजिये। सृष्टि के आरम्भ में स्त्री तथा पुरुष जाति एक ही थी, और जिस प्रकार आज स्त्री और पुरुष जाति एक दूसरे से अलग २ हैं इस प्रकार अलग २ नहीं थी ; पश्चात् एक दूसरे से अलग हुई। (इस का विशेष हाल " बच्चे के शारीरिक तत्त्व " नामक तीसरे प्रकरण में देखिये) अथवा यूं भी कहा जा सकता है कि—ईश्वर ने सांसारिक कार्य्यों को निर्विघ्न चलाने, प्रेम जैसी पुनीत और अपूर्व शक्ति का विकाश (Develop) करने, और सृष्टि की वृद्धि करने के लिये इन दोनों जातियों (स्त्री तथा पुरुष जाति) को एक दूसरी से जुदा किया। इसी प्रकार का एक उदाहरण हमें हमारे धर्मशास्त्र ग्रन्थों में मिलता है कि जिस से हमारे इस

* " Kirkes' Handbook of physiology " के आधार पर।

कथन की पुष्टि होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में कि जब स्त्री जाति उत्पन्न नहीं हुई थी संकल्प द्वारा सृष्टि उत्पन्न की जाती थी—जहां दृढ़तापूर्वक संकल्प किया नहीं कि अपने शरीर से एक दूसरा शरीर उत्पन्न हो जाया करता था; किन्तु उपर्युक्त गुणों को मनुष्यजाति में विकसित करने के लिये, प्रकृति (ब्रह्मा) ने अपने शरीर से एक जोड़ा (दाहिने अंग से स्वायंभू-मनु और वाम भाग से शतरूपा को) उत्पन्न किया, अर्थात् एक ही शरीर के स्त्री और पुरुष दो भाग हुए।

अब, जब कि ये दोनों जातियां प्रारम्भ में एक थीं और बाद में एक दूसरी से जुदी हुईं, तो प्रकृति ने इन के जुदे हो जाने पर भी, ऐसा नियम स्थिर कर दिया कि जब तक ये दोनों जुदी पड़ी हुई जातियां फिर से एक दूसरी में—मिल कर - परस्पर लीन न हो जायं, सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। सन्तानोत्पत्ति करने के लिये इन दोनों जातियों का फिर तन से और मन से एक दूसरे में लीन हो जाना लाज़मी (ज़रूरी) है। किन्तु आनन्द उत्पन्न हुए बिना किसी विषय में अनुरक्त होना या लीन हो जाना प्राय: असम्भव है।

मनुष्य स्वत: ही आनन्द की ओर आकर्षित होता है; अथवा आनन्द की ओर आकर्षित होना मनुष्य का स्वाभाविक या प्राकृतिक गुण है। मनुष्य संसार में उसी कार्य की तरफ़ अनुराग प्रकट करता है, कि जिस में उसे कुछ आनन्द मिलने की सम्भावना होती है। चाहे वह आनन्द क्षणिक हो अथवा स्थाई, किन्तु यह तो सर्वथा निश्चित है, कि मनुष्य जब झुकेगा आनन्द ही की ओर झुकेगा; जिस बात में उसे यक़ीन हो जाय कि इस में लेश मात्र भी आनन्द नहीं है, तो वह कदापि उस बात के करने की चेष्टा तक नहीं करेगा, कारण की परमात्मा स्वयम् आनन्द स्वरूप और आनन्दमय है। (अब रही यह बात कि क्षणिक आनन्द और स्थाई आनन्द में कौन उत्तम है और किस की प्राप्ति के अर्थ चेष्टा और परिश्रम करना चाहिये। यदि देखा जाय तो यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है और इच्छा भी होती है कि इस विषय पर कुछ लिखा जाय, किन्तु इस का हमारे प्रस्तुत

विषय के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं ; अतएव हम इस का निणय पाठकों की मनोवृत्ति के आधार पर छोड़ कर आगे बढ़ते हैं।)

"मनुष्य में आनन्द की ओर आकर्षित होने का स्वाभाविक गुण है"। इसी लिये उस परमपिता सच्चिदानन्द जगदीश्वर ने—सन्तानोत्पत्ति के निमित्त जो स्त्री पुरुष का योग होना आवश्यकीय है, उस की ओर मनुष्य का अनुराग बढ़ाने और मानव जाति की वृद्धि और श्रेय के लिये—संयोगकार्य्य में विशेष प्रकार के आनन्द का समावेश कर दिया है। मनुष्य के सांसारिककार्य्यों में सन्तान उत्पन्न करना एक कार्य्य है, और परस्पर प्रेम का विकाश कर आनन्द प्राप्त करना दूसरा कार्य्य है। ये दोनों कार्य्य जब एक ही क्रिया द्वारा सिद्ध होते हैं तो मनुष्य उस में विशेषता से नहीं, बल्कि विशेष उत्साह से भाग ले यह उचित ही है। किन्तु देखिये ! इसे न भूलिये कि प्रेम के बिना आनन्द प्राप्ति नहीं होती। यदि दम्पत्ति में परस्पर प्रेम नहीं है तो संयोग, संयोग नहीं, दुर्योग में आनन्द (शिव ! शिव !! ऐसी जगह आनन्द के स्थान में कलह और वैमनस्य का प्रादुर्भाव होता है) प्राप्त होना प्राय:—प्राय: क्या महाशय !—सर्वथा असम्भव है। अतएव आनन्दोत्पत्ति के लिये दम्पत्ति में गाढ़ स्नेह (प्रेम) का होना अत्यावश्यक है। (विशेष हाल प्रेम द्वारा उत्तम संतति नामक सातवें प्रकरण में मिलेगा।)

सन्तानोत्पत्ति क्रिया (संयोग) से जो आनन्द प्राप्त होता है उस में मनुष्यों के विशेष उत्साह से भाग लेने के अतिरिक्त एक और लाभ है। वह यही कि आनन्द प्राप्त होने से उमंग और उत्साह बढ़ता है; उमंग और उत्साह बढ़ने से मनुष्य की स्थिति में उत्तमता आती है, और उत्तम स्थिति में उत्पन्न होनेवाली सन्तान, उत्तम ही गुणों से विभूषित होती है। (यह प्राय: सब विद्वानों की मानी हुई बात है कि गर्भाधान के समय जिस प्रकार की माता पिता की मनोवृत्ति होती है, सन्तान पर भी उसी प्रकार का प्रभाव होता है ; जैसा कि पाठकों को आगे चलकर पूर्ण रूप से मालूम हो जायगा।)

पाठक ! उपर्युक्त विवेचन से हमारा यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि संयोग सन्तानोत्पत्ति के लिये और आनन्द सन्तान में उत्तमता का समावेश करने के लिये या सन्तान को उत्तम बनाने के लिये है। किन्तु इसी आधार पर और और नियमों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये जो कि आगे बतलाये जायंगे।

किन्तु आजकल प्राय: यही देखने में आता है कि मनुष्य इस वास्तविक बात को "कि संयोग सन्तानोत्पत्ति और आनन्द सन्तान में उत्तमता की वृद्धि करने के लिये है" भूलकर, केवल आनन्द प्राप्ति और अधम काम-वासना की तृप्ति के लिये ही इस उत्तम कर्म को मान बैठे हैं; और कितने खेद की बात है कि इस नीच वासना के वशीभूत हो कर अपना सर्वस्व नष्ट करने को कटिबद्ध हुए नज़र आते हैं। बल्कि विशेषता यह है कि सन्तानोत्पत्तिविषय को इस से जुदा ही मान बैठे हैं--गोया इस का उस के साथ में कोई सम्बन्ध ही नहीं। इन कामाचार्यों के सिर पर विषय लोलुपता का भूत ऐसा सवार है कि जो इन को अपने वास्तविक कर्तव्य की ओर ध्यान नहीं देने देता। ऐसे व्यक्तियों का विचार है कि "ऐसा करने से यदि प्रारब्ध में हुआ तो सन्तान उत्पन्न हो जायगी वरना हरि इच्छा" पाठक ! मैं पूछता हूं कि क्या वे ऐसा कर के उस घटघटवासी पर-मात्मा के नियम को--अपनी क्षणिक इच्छा की तृप्ति के लिये—उपेक्षा करके, उस को धोखा दे धूल में लट्ठ लगाना चाहते हैं ? क्या यह सम्भव है ? नहीं पाठक ! नहीं !! ऐसा कदापि नहीं !!! वे उस के नियम की उपेक्षा कर अपराधी बनते हैं, और अपने अपराध की सज़ा भी पाते हैं। सज़ा मिलने पर रोते हैं और कहते हैं कि :—हाय ! हमारे सन्तान नहीं हुई, हा भगवत् ! हमारे कैसी दुर्गुणी सन्तान उत्पन्न हुई ! अरे ! इस का हाल तो सारे कुटुम्ब ही से निराला है ; यह तो हमारे वंश का नाम निकालेगी !! (अर्थात् बदनाम करेगी।)

(५) गर्भाधान किसे कहते हैं और गर्भाशय क्या वस्तु है ?

ऊपर कहा गया है कि स्त्री तथा पुरुषवीर्य्य में हजारों ही कोष और कीट होते हैं। उत्पत्तिक्रिया (संयोग) के समय स्त्री पुरुष से जितना पदार्थ (वीर्य्य) उत्पन्न होता है उस में भी सैकड़ों ही कोष और कीट होते हैं। किन्तु वे सब के सब बच्चे की उत्पत्ति के काम में नहीं आते। स्त्रीकोषों में से एक कोष और वीर्य्यकीटों में से एक कीट बच्चे की उत्पत्ति के काम में आता है; शेष पदार्थ वृथा जाता है। उत्पत्तिक्रिया (संयोग) के समय ये दोनों कोष और कीट—गर्भाशय के निकट एक दूसरे में मिलते हैं। (ये किस जगह और किस प्रकार मिलते हैं ? इस के बतलाने से पहिले यह बतला देना आवश्यकीय है कि गर्भाशय क्या है।)

गर्भाशय·········गर्भाशय को अंगरेजी में " यूटेरस (Uterus) और फारसी में " रहम " कहते हैं। यह नाभि, मूत्राशय (मसाने=ब्लैडर) और मलाशय (अम्आय मुस्तकीम=रैक्टम) के बीच में होता है—अर्थात् आगे मूत्राशय, पीछे मलाशय और ऊपर नाभी होती है। यह एक झिल्ली का बना हुआ अवयव है, कि जिस में सुकड़ने और फैलने की शक्ति होती है। इस का आकार नासपाती के सदृश होता है। इस के दो भाग होते हैं, चौड़े को इस का शरीर (Body) और तंग को इस की गरदन कहते हैं। यह गरदन योनि तक आई हुई होती है। इस की लम्बाई स्त्री की शरीररचना के अनुसार छः से ग्यारह अंगुल तक होती है। इसी गर्भाशय से मिले हुए दोनों अण्डकोष (ovaries) होते हैं, कि जिन में से एक गर्भाशय के दाहिनी और दूसरा बाईं ओर होता है। जो गर्भवती न हो ऐसी युवा स्त्री का गर्भाशय अनुमान ३ इञ्च लम्बा, २ इञ्च चौड़ा, और एक इञ्च मोटा होता है। गर्भाशय का मुंह हर समय खुला नहीं रहता अर्थात् सदैव गर्भ धारण करने के योग्य नहीं होता। प्रत्येक मासिक धर्म्म के समय यह गर्भ धारण करने योग्य बनता है और १५ या १६ दिन तक इस योग्य रहता है।

पाठक ! फिर इसी तरफ़ ध्यान दीजिये कि गर्भाशय के निकट अर्थात् योनि के—गर्भाशय की गरदन के—उस सिरे पर कि जो गर्भाशय मिली रहती है, दोनों पदार्थों का मिश्रन होता है अर्थात् * " वीर्यकीट, " रजो-कोष में प्रविष्ठ होता है और पुरुषकीट का न्यूक्लस भाग (न्यू- " " क्लस भाग-उक्त जंतु के सिर से अभिप्राय है—स्त्री-कोष में प्रवेश करने" " पर इस की पूंछ क्रमशः जाती रहती है) स्त्रीकोष के न्यूक्लस भाग " " के साथ मिलता है " (देखिये चित्र नं० (३)) इस प्रकार मिश्रित हुए दोनों कोषों को बच्चे का बीज कहते हैं। इसी को अंगरेज़ी में 'Impregnation' कहते हैं, यही बच्चे की उत्पत्ति करता है, यही गर्भ का आदि स्वरूप है। यह बीज आहिस्ता २ गर्भाशय में प्रवेश करता है कि जहां प्रसव होने तक इस की वृद्धि होती है (बच्चे का वृद्धिक्रम चौथे प्रकरण में देखिये)। किन्तु मिश्रण हो जाने मात्र से गर्भाधान नहीं होता—इस बीज के गर्भाशय में प्रवेश कर स्थित हो जाने— वहां ठहर जाने ही—को गर्भाधान कहा जा सकता है। आशा है कि पाठक गर्भाधान को समझ गये होंगे !

(६) संयोग करने पर भी गर्भ नहीं रहता— इस का क्या कारण।

संयोग करने पर भी गर्भ नहीं रहता इस के कई कारण हैं। कि जो यथाशक्य और यथालब्ध नीचे दिये जाते हैं।

१—स्त्रीकोष में पुरुषजन्तु का मिश्रित न होगा।

संयोग के समय यदि स्त्री पहिले स्खलित हुई और पुरुष कुछ देर बाद में, या पुरुष पहिले और स्त्री कुछ देर बाद में तो प्रायः दोनों पदार्थों का मिश्रण नहीं होता। अतएव उत्पन्न हुआ पदार्थ वृथा जाता है और गर्भोत्पत्ति नहीं कर सकता।

* Balfour

चित्र नम्बर १
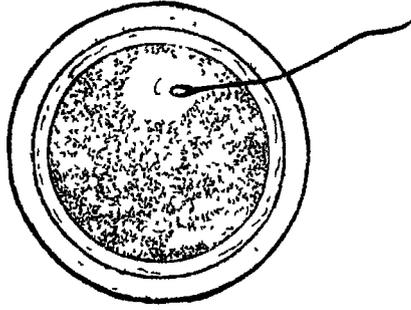
वीर्य्यकीट और रजोकोष का मिश्रण पृ० ४४

मान लीजिये कि दोनों उचित समय पर स्खलित भी हुए और दोनों पदार्थों का मिश्रण भी हो गया, किन्तु, कारण-वशात् गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर पाता और गर्भाशय उसे धारण करने में असमर्थ रहता है, ऐसी हालत में दोनों पदार्थों (रज और वीर्य्य) का मिश्रण हो जाने पर भी गर्भस्थित नहीं हो सकती।

२—मिश्रित होने पर भी गर्भाशय में न ठहरना।

दोनों प्रकार के कोषों का मिश्रण भी हुआ और वह गर्भाशय में ठहर भी गया, किन्तु कामवासना आदि के वश हो कर यदि पुनः संयोग किया गया तो लाज़मी (ज़रूरी) बात है कि गर्भाशय में हरकत पहुंचे और रहा हुआ गर्भ अपने स्थान से हटकर पीछा फिर बाहर निकल आवे।

३—गर्भस्थिति हो जाने पर भी बीज का पीछा निकल आना।

पाठक यह तो जानते ही हैं कि पुरुषवीर्य्य में एक विशेष प्रकार के कीट होते हैं कि जिन में बच्चे को जीवन प्रदान करनेवाली शक्ति होती है। संयोग की अधिकता से वीर्य्य में इन जन्तुओं की कमी आजाती है, कारण यही कि जितना पदार्थ निकलता है उतना उत्पन्न नहीं होता और वीर्य्य में बच्चे को जीवन प्रदान करने-वाले जन्तु कम हो जाते हैं। कम हो जाने से मिश्रित होने में कठिनाई होती है और मिश्रित होने में कठिनाई होने से, गर्भाधान होना भी कठिन हो जाता है।

४—संयोग की अधिकता भी गर्भ न रहने का एक कारण है।

यदि दम्पत्ति में परस्पर प्रेम नहीं है तो उन का संयोग होने से प्रायः गर्भ नहीं रहता। कारण भी प्रत्यक्ष ही है :— प्रेम न होने से वे एक दूसरे से घृणा करते हैं; घृणा करने से वे एक दूसरे में अनुरक्त नहीं हो सकते; अनुरक्त न होने से उन्हें आनन्द की प्राप्ति नहीं होती; आनन्द प्राप्त न होने से वे एक दूसरे में लीन नहीं होते, और लीन न होने से गर्भाधान

५—प्रेम का अभाव भी गर्भ का बाधक है।

होने में त्रुटि आती है। ऐसी अवस्था में अव्वल तो गर्भ रहता ही नहीं, और यदि कभी रह भी गया तो उत्पन्न होनेवाली सन्तान सर्वथा कष्टदाई और दुराचारी होती है।

कुछ समय तक सन्तान उत्पन्न न होने से मनुष्य प्रायः यही मान बैठा करते हैं कि हमारे सन्तान होती ही नहीं—किन्तु ऐसा मान लेना बड़ी भारी भूल है। वे नहीं जानते कि हम ऐसा मान कर मनःशक्ति जैसी प्रबल शक्ति का सन्तानोत्पत्ति के प्रतिकूल प्रयोग कर रहे हैं, गोया डूबते हुए की कमर में पत्थर बांध रहे हैं। धन्य !! पाठक ! मनःशक्ति का प्रभाव बड़ा विलक्षण है (इस का सविस्तर वृत्तान्त छठें प्रकरण में मिलेगा) अतएव, यदि दम्पत्ति को कोई बीमारी वगैरः नहीं है (यदि बीमारी हो तब भी ऐसा न मान कर इलाज़ करने की ज़रूरत है) तो ऐसा मान कर सन्तानोत्पत्ति में जान बूझ कर कठिनाई उपस्थित करना नहीं तो क्या है ?

६—मनःशक्ति की प्रतिकूलता भी गर्भाधान में हानिकारक है।

इन उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त "गर्भाशय और रजस्राव से सम्बन्ध रखने वाली कुछ और बातें भी हैं, कि जिन से गर्भाधान होने में कठिनाई उपस्थित होती है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने स्त्री को तीन प्रकार की बन्ध्या माना है। (१) जिस के सन्तान उत्पन्न होती ही न हो। (२) एक बार सन्तान उत्पन्न होकर फिर सन्तान न हो। (३) जिस की सन्तान जीवित न रहती हो अर्थात् उत्पन्न होकर मर जाती हो। इस के निम्न लिखित छः कारण बतलाए हैं। पाठकों के विदितार्थ उन के पहिचानने की सुगम रीति और सुगमता पूर्वक किये जा सकें ऐसे उपचार भी उन के साथ दिये जाते हैं किन्तु लेखक कोई वैद्य नहीं है अतएव उपचार करते समय किसी वैद्य वगैरः की राय ले लेना आवश्यकीय है।

गर्भाशय से सम्बन्ध रखनेवाली बातें।

(१) गर्भाशय में वायु का बढ़ जाना। (संयोग के बाद स्त्री से पूछने पर कहा जाय कि मर कांपता है, तो वायु का प्रकोप समझना चाहिये।)

(उपचार) हींग को काले तिल के तेल में पीसकर और उस में रूई का फाया तर कर के तीन दिन (ऋतुकाल में) योनि में रक्खे, चौथे दिन शुद्ध होने पर गर्भाधान किया जावे।

(२) गर्भाशय पर मांस का बढ़ जाना (इसे यूनानी में औरामे रहम कहते हैं) (पहिचान) कमर में दर्द होना (उपचार) काला जीरा और हाथी का नख रेंडी के तेल में पीस कर पूर्वानुसार।

(३) गर्भाशय में कीड़ों का पैदा हो जाना (यूनानी में इसे सरताने रहम कहते हैं) (पहिचान) पिंडलियों में दर्द होना (उपचार) हड़, बहेड़ा और कायफल को साबुन के पानी में पीस कर।

(४) गर्भाशय में ठंढक का बढ़ जाना (यूनानी में इसे इस्त़नाके-रहम कहते हैं)—पहिचान :—छाती में दर्द (उपचार) बच, स्याहजीरा, और असगन्ध को चौकिया सुहागे के पानी में पीस कर।

(५) गर्भाशय का दग्ध हो जाना (यौवनावस्था आने से पहिले बड़ी उमर के पुरुष के संयोग करने से प्रायः यह ख़राबी पैदा हो जाया करती है) (पहिचान) सर में पीड़ा होना और मूर्छा आना (उपचार) समुद्र-फल, संधानमक और बहुत थोड़ा लहसुन तीनों को शामिल पीस कर पूर्वानुसार।

(६) गर्भाशय का उलट जाना (पहिचान) जंघाओं में दर्द (उपचार) केसर तथा कस्तूरी को पानी में पीस कर पूर्वानुसार क्रिया करे।

मासिक धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाली बातें।

मासिक धर्म्म (रजो धर्म्म, रजस्राव, हैज़ या Monthly sickness) से सम्बन्ध रखनेवाली बातें जो कि नीचे बतलाई जाती हैं, गर्भाधान में हानिकर होने को अतिरिक्त स्त्री के स्वास्थ्य आदि के लिये भी हानिकारक हैं। कभी २ तो इन के कारण जीवन तक की आशा को त्याग देना पड़ता है—अतएव इन बातों को जाँचते रहना चाहिये और कुछ भी गड़बड़ मालूम होने पर उपेक्षा न कर तत्काल किसी अनुभवी वैद्य, हकीम, अथवा डाक्टर से सम्मति ले इलाज शुरू कर देना चाहिये।

(१) * मासिक धर्म का न होना। (२) † ठीक समय पर न होना।
(३) ‡ कम होना। (४) ¶ ज़्यादा होना।

योनि से सफेद (अथवा कोई रंग लिये हुए) चिकना पानी सा पदार्थ

प्रदर आदि रोगों से हानि।

निकलने को प्रदर कहते हैं। यह रोग गर्भाधान का बाधक होने के अतिरिक्त स्त्रियों के लिये बहुत हानिकारक है। प्रारम्भ में इस का प्रतिरोध न करने से यही रोग जड़ पकड़ जाने पर गुल्म आदि भयानक रोगों की शकल में बदल कर कष्ट साध्य और प्राय: असाध्य बन जाया करता है और बेचारी स्त्रियों को अकाल ही में अपनी संसारयात्रा की इति श्री करने को विवश होना पड़ता है। अतएव तत्काल प्रतिरोध करना चाहिये।

---

* वायु और कफ के प्रकोप से रज के निकलने का मार्ग रुक जाता है, अतएव मासिक धर्म नहीं होता। ऐसी अवस्था में :—मछली का गोश्त, कुलथी, खट्टे पदार्थ, तिल, उड़द, शराब, और मट्ठा (आधा दही और आधा पानी) लाभदायक है। औषधि के लिये वैद्य, हकीम अथवा डाक्टर से सम्मति लेनी चाहिये।

† हमेशा पहिले या पीछे-दो ही सूरतें हो सकती हैं—जल्दी होने से ज़्यादा होने में और नियत समय से देर में होने पर न होने में लेना चाहिये, क्योंकि इन दोनों बातों की शुरूआत इसी तरह होती है।

‡ इसी तरह कम होना भी न होने के अन्तर्गत समझ लेना चाहिये।

¶ यह पित्त और रक्त विकार से होता है। इसी को रक्तप्रदर भी कहते हैं। बदन का टूटना, बदन में तकलीफ़ या कसक होना, (रक्त निकलने के कारण) शरीर का कृष हो जाना, मूर्छा आना, भ्रम, आंखों में अंधेरा आना, शरीर में जलन होना, प्यास का अधिक लगना, घुमेर आना, क्षुधा का कम हो जाना, किये हुए भोजन का पूर्ण रूप से पाचन न होना इत्यादि इस के लक्षण हैं। शुरू २ में ये लक्षण सामान्य रूप से होते हैं, किन्तु ज्यों २ व्याधि बढ़ती जाती है ये भी स्पष्ट होते जाते हैं। स्त्रियों के लिये यह सब से भयानक बीमारी है। यह बहुत जल्दी कष्टसाध्य हो जाती है अतएव इस से बहुत सचेत रहने की आवश्यकता है।

(७) शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रज की पहिचान।

सन्तानोत्पत्ति के लिये शुद्ध वीर्य्य, शुद्ध गर्भाशय और शुद्ध रज की बहुत आवश्यकता है। यदि वीर्य्य, गर्भाशय अथवा रज शुद्ध नहीं है तो गर्भ रहना कठिन ही है। यदि गर्भ रह भी गया तो सन्तान रोगी, निर्बल और अल्पायु उत्पन्न होती है। कारण भी प्रत्यक्ष ही है, अर्थात् जब बच्चे के बीज ही में रोग है, तो जिस बच्चे की उत्पत्ति रोगी बीज से हुई है, जिस बच्चे का रोगी बीज से विकास हुआ है अथवा जिस बच्चे ने रोगी स्थान में विकास पाया है वह भी अवश्यमेव रोगी होना चाहिये। जिस प्रकार घुना हुआ बीज उत्तम भूमि में और उत्तम बीज ऊसर भूमि में डाले जाने पर या तो उस से अंकुरोत्पत्ति ही नहीं होती, यदि अंकुरोत्पत्ति हुई भी तो उस का होना न होना बराबर होगा और उस से फल प्राप्ति कदापि न होगी। और यदि बीज भी घुना हुआ है और भूमि भी ऊसर है तो ऐसी हालत में अंकुरोत्पत्ति की आशा रखना ही वृथा है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के विषय में समझना चाहिये। गर्भोत्पत्ति के लिये शुद्ध गर्भाशय, शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रज की बहुत आवश्यकता है। इसी लिये पाठकों के विदितार्थ शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रज के पहचानने की रीति का यहां उल्लेख किया जाता है। गर्भाशय के विषय में पहिले कहा जा चुका है।

* शुद्ध वीर्य्य की पहिचान।

जो वीर्य्य सफेद (स्वच्छ, स्फटिक = बिल्लौर के समान) हो, पतला (न अधिक गाढ़ा और न अधिक पतला) हो, चिकना हो, मधुर हो, जिस में शहद के समान खुशबू आती हो, जिस के स्खलित होने पर किसी प्रकार की वेदना न हो और जो पानी में डालने पर तैरता रहे और डूबे नहीं उसी को शुद्ध वीर्य्य समझना चाहिये। अन्यथा उत्तम, दीर्घायुषी, और निरोग सन्तान की कामना रखनेवाले मनुष्य को किसी अनुभवी व्यक्ति से उपचार कराना चाहिये।

---

* सुश्रुत।

शुक्र (वीर्य्य) वायु, पित्त, रक्त और कफ़ आदि के प्रकोप से दूषित होता है। दूषित शुक्र (शुक्र किन २ दोषों के कारण दूषित हुआ है) के पहिचानने की रीतियां इस प्रकार हैं।

* दूषित शुक्र के लक्षण।

(१) वायुदूषित शुक्र का रंग कुछ सुरखी और स्याही लिये हुए होता है। स्खलित होते समय रुक २ कर स्खलित होता है।

(२) कफ़दूषित शुक्र का रंग सफ़ेद किन्तु कुछ ज़रदी मायल होता है। स्खलित होते समय कुछेक वेदना भी होती है।

(३) पित्तदूषित शुक्र का रंग नीला और ज़रदी मायल होता है। स्खलित होते समय जलन होती है।

(४) रक्तदूषित शुक्र का रंग सुरखी मायल, स्खलित होते समय जलन, मुरदे के सदृश गन्ध और स्खलित होने पर बहुत सा वीर्य्य निकल जाता है।

(५) कफ़ और वायु दूषित शुक्र में गांठें पड़ जाती हैं।

(६) कफ़ और पित्त दोष से शुक्र राध (पीव) के सदृश हो जाता है और दुर्गन्ध आने लगती है।

(७) त्रिदोषदूषित शुक्र में मल तथा मूत्र की गन्ध आने लगती है और वीर्य्य में इन का कुछ अंश भी आ जाता है।

(८) शुष्कता वीर्य्य (वीर्य्य का बहुत गाढ़ा हो जाना या बहुत कम हो जाना—ऐसी अवस्था में वीर्य्य बहुत कठिनाई से स्खलित होता है।)

जो रज ख़रगोश के ख़ून के सदृश अथवा लाख के रंग के सदृश हो, जिस में रंगा हुआ वस्त्र काला पीला आदि रंग का न हो कर सुर्ख़ ही रहे और धोने पर बिलकुल साफ़ हो जाय और वस्त्र पर किसी प्रकार का दाग़ या धब्बा न रहे, वह रज शुद्ध है और वही सन्तानोत्पत्ति में श्रेष्ठ है।

* शुद्ध रज की पहिचान।

---

* सुश्रुत।

दूषित शुक्र के जो कारण बतलाये गये हैं वे ही दूषित रज के कारण समझने चाहियें, अर्थात् रज भी वायु, कफ, पित्त, रक्त दोष, दो दो विकारों से मिलकर और त्रिदोष से दूषित होता है और जिस प्रकार की वेदना आदि हो उसी कारण से दूषित समझना चाहिये।

* दूषित रज के लक्षण।

---

(८) गर्भाधान के लिये कौन समय अच्छा है ?

* ध्रुवं चतुर्णाम् सन्निध्यात् ! गर्भःस्याद्विधिपूर्वकः।
ऋतु क्षेत्राम्बु बीजानाम्, सामिग्र्यादंकुरो यथा॥
एवं जाता रूपवन्तो, महासत्वाश्चिरायुषः।
भवन्त्यृणस्य मोक्षारः, सत्पुत्रः पुत्रिणोहितः॥

अर्थात् चार पदार्थों के संयोग से विधिपूर्वक गर्भ रहता है। जिस प्रकार ऋतु, भूमि, बीज और जल इन चार पदार्थों के संयोग होने पर बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है; उसी प्रकार ऋतु (समय), भूमि (शुद्ध गर्भाशय), बीज (शुद्धवीर्य्य) और जल (शुद्ध रज) इन चार पदार्थों के संयोग होने पर रूपवान, सत्ववाली, निरोगी, दीर्घायुषी और माता पिता की ऋणी (माता पिता की आज्ञा मानने और सेवा करनेवाली) सन्तान उत्पन्न होती है।

शुद्ध गर्भाशय, शुद्ध वीर्य्य और शुद्ध रज की कितनी आवश्यकता है, इस के विषय में ऊपर कहा जा चुका है। अब रही चौथी बात समय की, और समय ही सब में मुख्य है, क्योंकि उत्तम भूमि में भी कुसमय बोया हुआ उत्तम बीज फलदायक नहीं होता, इस लिये सब कुछ होते हुए भी समय मुख्य है; अतएव देखना चाहिये कि सन्तानोत्पत्ति के लिये कौन समय श्रेष्ठ है और किस समय गर्भाधान क्रिया (संयोग) करने से सन्तान प्राप्ति हो सकती है।

इस बात को प्रायः सब कोई जानते और मानते हैं कि गर्भाधान के लिये उत्तम समय स्त्री के मासिक धर्म्म से निवृत्त होने अथवा शुद्ध होने के

---

* सुश्रुत।

बाद का है। क्योंकि इसी समय (मासिक धर्म होने पर ही) गर्भाशय शुद्ध और गर्भधारण करने योग्य बनता है और इसी समय बच्चे की उत्पत्ति के काम में आनेवाला स्त्रीपदार्थ (रज) भी उत्पन्न होता है; इसी लिये गर्भाधान के लिये यह समय मुख्य माना गया है। किन्तु मासिक धर्म के तीन दिन कि जो आम तौर पर त्यागे जाते हैं अवश्य त्याग ही देने चाहियें (और पुत्र की कामना रखनेवाले मनुष्यों को "पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करना मनुष्याधीन है" नामक पांचवें प्रकरण में बतलाया जायगा तदनुसार पहिले नौ दिन त्याग देना चाहिये)।

पहिले तीन दिन त्यागने का कारण यह है कि इन तीन दिन में जिस प्रकार बहते हुए पानी में कोई वस्तु डाली जाय और वह स्थिर न रह प्रवाह के साथ बह जाती है, इसी प्रकार रजस्राव जारी रहने पर उस में यदि वीर्य्य डाला जाता है तो वह गर्भाशय में न ठहर, उस प्रवाह के साथ फिर बाहर निकल आता है—यदि गर्भाधान किया जाता है तो प्रायः गर्भ नहीं रहता। यदि संयोगवश गर्भ रह भी गया तो सन्तान सब प्रकार हीन, निर्बल, अल्पायु, बुद्धि रहित, रोगी और बदशकल उत्पन्न होती है। इस के अतिरिक्त, इस अवस्था में स्त्रीसेवन करने से पुरुष को खास प्रकार की बीमारी, जैसे प्रमेह (जिरयान), उपदंश (गरमी), मूत्रकृच्छ (सुजाक) आदि के हो जाने की भी विशेष संभावना रहती है। और स्त्रियों के लिये भी, इस समय का संयोग हानिकारक है।

मालूम होता है इसी कारण हमारे शास्त्रकारों ने इसे धर्म का स्वरूप देकर इस का निषेध किया। उन के अभिप्रायानुसार रजस्वला स्त्री को पहिले दिन चाण्डाली के सदृश, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के सदृश त्याज्य समझ कर त्याग देना चाहिये। यदि रजस्राव बन्द न हुआ हो तो चौथा और पांचवां दिन भी त्याग देना चाहिये। रजोदर्शन होने से सोलहवीं रात्रि पर्य्यन्त स्त्री गर्भधारण कर सकती है; सोलहवीं रात्रि के बाद यदि संयोग किया जाय तो गर्भ नहीं रहता। क्योंकि सोलह रात्रि पर्य्यन्त ही गर्भाशय का मुंह खुला रहता है, पश्चात् बन्द हो जाता है और उस में नवीन रज इकट्ठा होना शुरू होता है। महीना

समाप्त होने तक रज इकट्ठा होता रहता है और महीना समाप्त होने पर फिर रजस्राव जारी हो जाता है, अर्थात् स्त्री रजस्वला हो कर फिर से गर्भधारण करने योग्य बन जाती है।

किन्तु पाठक! अक्सर ऐसा भी देखने में आया है कि बिना रजोधर्म्म हुए ही स्त्री को गर्भ रहा और सन्तान उत्पन्न हुई। इस का कारण बतलाते हुए आयुर्वेद के आचार्य्यों ने कहा है कि—"बिना रजस्राव मालूम हुए ही स्त्री ऋतुमती हो जाती है और गर्भाधान भी हो जाता है, किन्तु ऐसा उसी समय होता है कि जब दूध पीता बच्चा दूध पीना छोड़ दे या दूध पीते हुए बच्चे की मृत्यु हो जाय या दूध पीता बच्चा मौजूद हो, किन्तु दूध पीते रहने के कारण बहुत समय से पति से अलग रहना पड़ा हो और स्त्री को पति से मिलने की बहुत इच्छा बढ़ गई हो। यदि स्त्री में निम्न लिखित लक्षण पाये जायं तो बिना रजस्राव हुए ही स्त्री को ऋतुमति मान लेना चाहिये—जिस स्त्री का मुख प्रसन्न और पुष्ट हो, शरीर, मुख और मसूढ़े गलगल्लाण से हों, संयोग की उत्कट अभिलाषा हो, मधुर और प्रिय भाषण करे, नेत्र ढीले हो जायं, हाथ, कुच, नाभी, कमर और जंघा में स्फुर्णा हो और आनन्दयुक्त हो।" ऐसे गर्भ को इनाम का गर्भ और ऐसी सन्तान को (ठेठी भाषा में) नेमी (इनामी) सन्तान कहते हैं।

अच्छा, अब यह तो निश्चित हुआ कि सन्तानोत्पत्ति के लिये स्त्री के मासिक धर्म्म से निवृत्त होने पर संयोग किया जाय; किन्तु यह नहीं मालूम हुआ कि जिस दिन संयोग किया जाय उस दिन किस समय—किस वक्त किया जाय? समय का निर्णय करते हुए मुख्यत: इस बात का विचार रक्खा जाय कि किया हुआ भोजन तो पूरे तौर पर पाचन हो चुका है या नहीं? भोजन के पाचन होने के लिये कम से कम ३ घंटे का अन्तर अवश्य दिया जाना चाहिये, अन्यथा सन्तान का स्वास्थ्य बिगड़ जाने की बहुत सम्भावना है। अतएव भोजन करने के बाद के तीन २ घण्टे त्यागने चाहिये इसी प्रकार रात्रि और दिन-प्रात: काल व सयंकाल—के सन्धि--(संध्या) समय (अर्द्ध प्रहर दिन और अर्द्ध प्रहर रात्रि) को भी अवश्य त्याग देना चाहिये (सन्धि के समय गर्भाधान करने से अशुभ और

आदति जैसे सर्वगुणसम्पन्न माता पिता से भी राक्षसी सन्तान उत्पन्न हुई है) इसी प्रकार अर्द्ध रात्रि और मध्याह्न काल (११ से १ तक का समय) भी त्याग देने योग्य है। अब रहा दिन में १ बजे से ४ बजे तक का समय और रात्रि में यदि ६ बजे भोजन कर लिया जाय तो ८ बजे से ११ बजे और १ बजे से ४ बजे तक का समय ; इस में भी दिन का समय त्यागने योग्य है, क्योंकि संयोग के पश्चात् गर्भ को गर्भाशय में प्रवेश कर स्थित होने के लिये स्त्री को शान्त भाव से आराम करने की आवश्यकता है और दिन में ऐसा होना कठिन सा है। इस के अतिरिक्त जो निश्चिन्तता रात्रि को प्राप्त हो सकती है वह दिन में कदापि नहीं हो सकती। अब रहा रात्रि में—८ बजे से ११ बजे और १ बजे से ४ बजे तक का समय - इन दोनों का मुक़ाबला करते हुए—तुलना करते हुए—रात्रि का ८ बजे से ११ बजे तक का समय ही इस कार्य्य के लिये अधिक उपयोगी समझा जा सकता है—कारण यह कि रात्रि के पिछले समय में गर्भाधानकार्य्य करने से शान्तिपूर्वक आराम करने को उतना समय नहीं मिलता कि जितना रात्रि के प्रथम समय में मिल सकता है और गर्भस्थिति के लिये इस की अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव निश्चित हुआ कि गर्भाधान के लिये स्त्री के मासिक धर्म से शुद्ध होने पर निश्चित किये हुए दिन रात्रि के नौ बजे से ११ बजे तक (और १ बजे से ३ बजे तक) का समय अच्छा है।

---

(९) रजस्वला को किस प्रकार रहना चाहिये ?

नियमों के पालन करने की आवश्यकता।

जिस प्रकार किसी इमारत के भले बुरे का एक मात्र आधार उस मकान की नीव पर—उस की बुनियाद पर—अवलंबित है ; अब यदि नीव मज़बूत दी गई है—उत्तम बनाई गई है—तो उस के आधार पर, भव्य, देदीप्यमान और सर्वाङ्ग सुन्दर महल तय्यार किया जा सकता है; किन्तु यदि नीव ही कमज़ोर है—निर्बल है—निकम्मी है—तो उस के ऊपर भव्य और आलिशान इमारत कदापि तय्यार नहीं की जा सकती; यदि हठ कर के—बल कर के—

या ज़िद कर के—उस पर इमारत बना भी ली गई तो कदापि सन्तोष-दायक नहीं हो सकती; वह अवश्यमेव अस्थीभूत होगी और किया हुआ परिश्रम—अनुचित परिश्रम—अवश्यमेव वृथा जायगा। अतएव आवश्य-कीय है कि नीव प्रथम ही इतना उत्तम बनाई जाय कि जिस से अभिष्ट फल प्राप्ति में कोई शंका ही न रह जाय और परिश्रम निष्फल जाने का समय न आवे।

इसी प्रकार गर्भाशयरूपी भूमि पर, सन्तानरूपी महल बनाने के लिये, सब से पहिले गर्भाधानरूपी नीव को उत्तम बनाने की आवश्यकता है। किन्तु नीव तय्यार करने से पहिले उस का नक्शा तय्यार करना पड़ता है कि जिस को स्त्री और पुरुषरूपी शिल्पकार—दोनों मिल कर—तय्यार करते हैं। समय पर—जिस ने दृढ़तापूर्वक नक्शा तय्यार किया है—उसी का नक्शा विजयी होता है। उसी के अनुसार निर्माण कार्य्य निश्चित होता है और दोनों मिल कर उसी के अनुसार उस की नीव तय्यार करते हैं। किन्तु अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि पुरुषरूपी शिल्प-कार गर्भाधानरूपी सूत्रपात करता हुआ (विवश) सब भार स्त्रीरूपी शिल्पकार पर छोड़ इस निर्माण कार्य्य से अपना सम्बन्ध तोड़ लेता है। इस के पश्चात् न तो वह निर्माणकार्य्य करता है और न कर ही सकता है। हां! यदि निर्माणकर्त्ता, निर्माण सम्बन्धी सम्मति लेना चाहे तो वह अवश्य सम्मति देकर उस की सहायता कर सकता है; और उसे उचित भी यही है कि वह अपने साथी का उत्साह बढ़ाता और उसे यथासमय उचित सम्मति देकर उस के मार्ग में आनेवाली कठिनाइयों को दूर करता रहे।

इस के बाद स्त्री रूपी शिल्पकार—जैसी नीव तय्यार कर ली गई है और सन्तान रूपी इमारत का जैसा नक्शा निश्चित हो गया है—उसी के अनुसार निर्माण कार्य्य का प्रारम्भ करता है और सुगमतापूर्वक सन्तान रूपी इमारत के अवयव रूपी प्रत्येक भाग को (अपनी योग्यतानुसार), उचित सीमा में विकास देता हुआ, सन्तान रूपी महल को तय्यार कर देता है। किन्तु इमारत का भव्य, देदीप्यमान और सर्वाङ्ग सुन्दर बनना

शिल्पकार की योग्यता पर अवलंबित है। अब यदि शिल्पकार (स्त्री) चतुर है—निपुण है—योग्य है—तो वह अपनी शिल्पचातुरी दिखा कर लोगों को आश्चर्य, चकित और स्तम्भित कर देता है। अन्यथा उस का भद्दापन—फूवड़पन—तो लोगों की दृष्टि में आता ही है।

शिल्पकार के चतुर होने पर, प्रथम तो नीव में कोई त्रुटि रहने ही नहीं पाती; और यदि प्रसंगवश दोनों शिल्पकारों (स्त्री पुरुष) में से किसी की भूल से कोई त्रुटि रह भी गई तो दूसरा शिल्पकार (स्त्री) निर्माणकाल में उस त्रुटि का इस योग्यता से रूपान्तर कर देता है कि जिस को देखनेवालों को मुक्तकंठ से प्रशंसा करनी पड़ती है। अतएव लाज़मी बात है—ज़रूरी बात है—कि इस निर्माणकार्य्य में दोनों को योग्यता प्राप्त करना चाहिये, तब ही वे अपनी निर्मित वस्तु को उपयोगी, सर्वाङ्ग सुन्दर और हृदयहारिणी बना सकेंगे, अन्यथा जैसे कूड़ करकट की अबतक वृद्धि होती रही है और हो रही है, वैसी ही होती रहेगी (और पवित्र आर्य्यभूमि आर्य्यलक्ष्मी और आर्य्यजाति उसी अधोगति के दलदल में पड़ी सड़ती रहेगी); क्या हुआ यदि असंख्य कूड़ करकट में किसी २ रत्न का प्रादुर्भाव हो गया।

पाठक! जैसा कि आप ऊपर देख आये हैं, पुरुष रूपी शिल्पकार का इस निर्माण (सन्तानोत्पत्ति) कार्य्य से बहुत थोड़ा सम्बन्ध है, किन्तु वास्तविक और महत्व की बात में वह अपने साथी का समानरूप से सहकारी होने के कारण निर्माणकार्य्य में दोषोत्पत्ति होने पर समान रूप में दोषी बनने का भी अवश्यमेव अधिकारी है; अतएव दोनों में से प्रत्येक का कर्तव्य है, कि अपनी ड़फली अपना राग न अलापते हुए, और एक दूसरे के विचारों को मिलाते हुए अपने २ हृदय में एक ही प्रकार का नक़शा अङ्कित करें; और सब प्रकार के दूषणों से बचते हुए उत्तम प्रकार से उस की नीव तय्यार करें और पूर्ण उत्साह, सच्ची उमंग, शुद्ध प्रेम और ईश्वरभक्ति से अपने अन्तर को आनन्दमय बनाते हुए सद्गुणों की साकार मूर्ति बन कर सन्तान रूपी इमारत की नीव का गर्भाधान रूपी पहिला पत्थर रख कर

कार्य्य का प्रारम्भ करें। उपर्युक्त बातों (आगे विस्तारपूर्वक बतलाया जावेगा) का गर्भाधान के समय अपने में (स्त्री और पुरुष दोनों में) पूर्णरूप से विश्वास करना और वैसा ही अपना आचरण भी बनाना चाहिये। पाठक! यह तो सब ठीक है किन्तु देखिये तो, समय आने पर जो योग्य बनना चाहता है वह ग़लती करता है—वह समय पर कदापि योग्य नहीं बन सकता। योग्य वही बन सकता है कि जो समय आने से पहिले ही योग्य बनने की आवश्यकता समझ कर योग्य बनने की चेष्टा करता है (पाठक! यह विषय आगे उदाहरणों सहित विस्तारपूर्वक बतलाया जायगा; अतएव दिग्दर्शन मात्र यहां कहा गया है। अब हम इस लेख के शीर्षक पर कुछ निवेदन करना चाहते हैं—इस विषय से और आगे इसी प्रकरण में जो गर्भाधान की रीति बतलाई जावेगी उस से इस का सम्बन्ध समझ कर उपर्युक्त बातें इसी लिये कही गई हैं कि जिन से इन बातों की आवश्यकता पाठकों के ध्यान में अच्छे प्रकार आ जायं; अतएव अप्रासंगिक न समझी जायंगी)।

रजस्वलाकृत्य।

सन्तान के प्रति जो स्त्री के कर्तव्य हैं, उन का आरम्भ रजोदर्शन के साथ ही होता है और प्रसव पर्य्यन्त (यहां प्रसव पर्य्यन्त जो कहा गया है उस का कारण यही है कि इस पुस्तक का प्रसव पर्य्यन्त ही सन्तान के बिगाड़ सुधार से सम्बन्ध है, पालन और शिक्षण का विषय दूसरा है) रहती है। अतएव स्त्री को रजोदर्शन के साथ ही—यदि उत्तम सन्तान प्राप्ति की इच्छा हो तो—अपने कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए नियमानुसार कार्य्यारम्भ कर देना चाहिये।

ठीक रजोदर्शन के समय से नियमों का पालन करने के लिये जो कहा गया उस का कारण यह है कि—जिस प्रकार "* थरमामीटर" में गरमी

---

* यह एक काच का बना हुआ यन्त्र होता है कि जिसे प्रायः सब कोई जानते और काम में लाते हैं। इस में नीचे काच की पोली गोली होती है कि जिस में पारा भरा हुआ होता है; गरमी पहुंचने पर पारा क्रमशः बढ़ता और सरदी पहुंचने पर क्रमशः घटता रहता है। सारांश यह कि यह गरमी सरदी

और सरदी के प्रभाव को यथास्वरूप से लेने की शक्ति होती है, उसी प्रकार स्त्रीबीज (रज) में भी अच्छे और बुरे प्रभावों को--कि जिन का स्त्री के मन पर प्रभाव होता है--अपने ऊपर ले लेने की शक्ति होती है; और जिस प्रकार फोटो की प्लेट पर सामने आये हुए दृश्य का प्रतिबिम्ब पड़कर चित्र खिंच जाता है, ठीक उसी प्रकार रजोधर्म होने से प्रसव पर्य्यन्त, स्त्री के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सन्तान पर प्रभाव होता है; अर्थात् जैसे जो दृश्य (देखने से अथवा सुनने से) स्त्री के मनरूपी प्लेट पर अपना प्रभाव डालते हैं, उसी के अनुसार सन्तानरूपी चित्र अस्तित्व में आता है। स्त्री के मन और रज में इस प्रकार से प्रभावों को अपने ऊपर ले लेने का प्राकृतिक गुण है। ये प्रभाव यथारूप और समान भाव से बराबर होते हैं। इन नियमों से अज्ञान रहने और इन का ज्ञान प्राप्त कर लेने में अन्तर इतना ही है कि--अज्ञानावस्था में स्वतः जैसे २ दृश्य (देखने या सुनने से) हृदय पर अंकित होते हैं, सन्तान पर वैसा ही प्रभाव होता है और उसे भी वैसा ही बना देता है। ज्ञान प्राप्त कर लेने से इच्छा शक्ति (इच्छा शक्ति क्या है इस का पूरा हाल छठे प्रकरण में मिलेगा) द्वारा बुरे प्रभावों को रोक कर इच्छित प्रभाव डाले जा सकते हैं और संतान--भावी सन्तान--को अपनी इच्छानुसार सौन्दर्य्यवान्, गुणवान् और सब प्रकार योग्य बनाया जा सकता है। अतएव देखना चाहिये कि वे कौन २ सी बातें हैं कि जिन का स्त्री को रजस्वला रहने की हालत में पालन करना चाहिये। देखिये :--

प्रायः वे सब बातें कि जो बुरी हैं और हृदय पर बुरा प्रभाव डालती हैं त्याज्य, और वे सब बातें कि जो उत्तम हैं और हृदय पर उत्तम प्रभाव अंकित करती हैं ग्राह्य समझनी चाहियें। किन्तु यह बहुत संक्षेप में कहा गया है--सो सब का सार यही है, फिर भी प्रसंगानुसार कुछ विस्तारपूर्वक कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा।

नापने का एक यन्त्र है कि जिस पर थोड़ी भी गर्मी सर्दी का असर बराबर मालूम होता है।

रजोदर्शन होते ही अथवा रजस्वला होते ही स्त्री को सब कार्यों से निवृत्त हो एकान्तवास करना चाहिये। एकान्तवास के अनन्त लाभ हैं कि जिन में मुख्य यह है कि एकान्तवास के कारण बहुत सी बुराइयों से स्वतः ही छुटकारा मिल जाता है और यही हमारा प्रधान उद्देश्य है कि सन्तान को उत्तम बनाने और उस में उत्तम गुणों का विकास करने के लिये बुराइयों से बचा जाय। हमारे शास्त्रकारों ने रजस्वला स्त्री के किसी वस्तु के स्पर्श करने के निषेध में इसी रहस्य का समावेश किया है; मालूम होता है कि जिसे हम लक्ष्यभ्रष्ट होने के कारण भूलकर मिथ्या और भ्रमोत्पादक बातों में फंस गये हैं। खैर। तो तात्पर्य उन का यही मालूम होता है कि वह एकान्तवास के कारण बहुत सी बुराइयों से बचेगी और अपनी सन्तान में दुर्गुणों का विकास न कर पायगी। किन्तु इस आशय का आज कल सर्वथा दुरुपयोग किया जा रहा है। इन दिनों में स्पर्शास्पर्श के कारण स्त्रियां निठल्ली रहती हैं और निरर्थक प्रलापों, चित्त को व्यग्र और क्षुभित करनेवाले झगडों और कलह कंकास में फंसी रहती हैं। अफ़सोस, सदुपयोग के स्थान में कैसा दुरुपयोग !

बहिनो। प्यारी बहिनो ।। ज़रा ख़्याल तो करो कि तुम यह क्या कर रही हो? क्यों अपने समय और अपनी सन्तान के सारे जीवन का वृथा ही नाश कर रही हो? क्यों अपने भावी अबोध बालक और मुग्धा बालिकाओं के सुखमय जीवन के कण्ठ पर विषमय कुठार चला रही हो? देखो, तुम्हारी इस समय की उपेक्षा आगे चल कर तुम्हीं को दुःखदाई होगी; अतएव तुम्हें चाहिये कि इस एकान्तवास का वास्तविक रहस्य समझते हुए अपना कर्तव्य पालन करो. इस समय को वृथा नष्ट न करो. इस एकान्तवास से पूरा लाभ उठाओ— अपनी सन्तान के योग्य बनाने की कोशिश करो —इस समय मनसा (मन से), वाचा (बातों से), कर्मणा (कर्म से) पूरे तौर पर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करो, भूल कर भी अश्लील और अपवित्र विचारों के अधीन मत बनो—सद्गुणों और उत्तम विचारों ही में मन लगाओ—उत्तम २ पुस्तकों का अवलोकन करो—उन पर मनन करो. अच्छे विचारों को हृदयंगम् करो और जब तक शुद्ध स्नान न

करलो किसी व्यक्ति का मुंह न देखो (अन्ध पुरुष और बदशकल औरत वगैर: को न देखो)। दिन का सोना, रात्रि को भी अधिक सोना (विशेष सोने से सन्तान आलसी), रोना (रोने से सन्तान आंखों की बीमारीवाली), निरर्थक बहुत बोलना (निरर्थक बहुत बोलने से सन्तान बकू), दौड़ना (दौड़ने से सन्तान तथा भटकनेवाली), बिलकुल चुप चाप रहना (इस से सन्तान गुंगी), बालों में कंघी करना (कंघी करने से गंजी), आंखों में अञ्जन लगाना (अंजन लगाने से सन्तान क्षीण दृष्टि वाली), तेज हवा में रहना (तेज हवा में रहने से विचलित चित्तवाली), परिश्रम (थका देने वाले काम) करना (परिश्रम करने से सिर की पीडा वाली), बहुत ज़ोर से बोलना या ज़ोर की आवाज़ सुनना (इस से कम सुनने वाली), क्रोध करना (क्रोध करने से क्रोधी), झूठ बोलना (झूठ बोलने से झूठी), चोरी करना (चोरी करने से चोर), और भी जिस २ प्रकार के माता आचरण करती है प्राय: वे ही बातें सन्तान में अवतरित होती हैं; अतएव इस प्रकार की सब बातों का त्याग करो। अपने पति और सम्बन्धियों से, शुद्ध हृदय से प्रेम करो, कि जिस से तुम्हारी सन्तान भी तुम्हें प्रेम करना सीखे, सदाचरणों का व्यवहार करो, प्रत्येक व्यक्ति को नि:स्वार्थ हो सहायता करो—स्वदेश से प्रेम करो, धर्म पर आस्था और ईश्वर पर दृढ़ श्रद्धा रक्खो, जन्मभूमि का आदर करो—अपने हृदय में उसे सब से ऊंचा स्थान दो और इसी प्रकार के और २ शुभ विचारों में अपने इस एकान्तवास के समय को लगाकर सार्थक करो। शुद्ध स्नान करने पर स्वच्छ वस्त्र पहिन शृङ्गार आदि से सुसज्जित हो—यदि पुत्र की कामना है तो अपने प्रिय पति के मुख का आन्तरिक-प्रेम-पूर्वक दर्शन करो अथवा जैसी सुन्दर सन्तान की अभिलाषा हो उसी प्रकार के अति सुन्दर चित्र का अवलोकन करो और उस का प्रतिबिम्ब गर्भाधान होने तक अपने हृदय पर दृढ़ रूप से अंकित करो—अर्थात् उसे इतना ध्यानपूर्वक देखो कि आंख बन्द करने पर भी तुम्हें वही आकृति बराबर नज़र आती रहे। यदि पुत्री की अभिलाषा है तो शुद्ध होने पर दर्पण में स्वयम् अपना मुंह देखो अथवा किसी

सुन्दर स्त्री अथवा सुन्दर चित्र को देखो और उस का प्रभाव हृदय पर दृढ़ करो। प्यारी बहिनो! देखो, मैं फिर कहता हूं कि तुम्हारा प्रत्येक विचार उत्तम और उच्च कोटि के आशय को लिये हुए होना चाहिये। यदि तुम इस साधना में लब्धार्थ हुई तो ईश्वर तुम्हें उत्तम सन्तानरूपी सिद्धि अवश्य प्रदान करेगा।

(१०) गर्भाधान विधि अथवा गर्भाधान करने की रीति।

पाठक! गर्भाधान के लिये, शुद्ध वीर्य्य, शुद्ध रज, शुद्ध गर्भाशय और उचित समय के विषय में पहिले निर्णय किया जा चुका है। (यदि वीर्य्य रज और गर्भाशय में कोई विकार है—कोई दोष है—तो किसी वैद्य, हकीम, अथवा डाक्टर से इलाज करवा कर उन दोषों को—उन विकारों को—दूर करना चाहिये; लेखक वैद्य, हकीम अथवा डाक्टर न होने से इस विषय में कुछ सम्मति देने से मजबूर है और साथ ही विषय भी दूसरा है) अब रही इन सब के निर्दोष होने की हालत में उपस्थित होनेवाली दूसरी कठिनाइयां; अतएव इन्हीं के विषय में इस जगह उल्लेख किया जाता है :—

गर्भ न रहने के कारण बतलाते हुए कई एक कारण ऐसे बतलाये गये हैं, कि जिन के कारण, वीर्य्य, रज और गर्भाशय में कोई दोष न होते हुए भी गर्भ नहीं रहता; अतएव उसी क्रम से उन का समाधान किया जाता है :—

(१) स्त्रीकोष में पुरुषजन्तु का मिश्रित न होना।

"स्त्री*कोष में पुरुषजन्तु के मिश्रित होने के लिये, पहिले स्त्री और तत्पश्चात् तत्काल ही पुरुष के स्खलित होने की आवश्यकता है। क्योंकि स्त्रीवीर्य्य के निकलते ही पुरुषवीर्य्य निकलना चाहिये तब ही स्त्री-वीर्य्य-कोष में पुरुष-वीर्य्य-जन्तु प्रविष्ट हो सकता है। अतएव

* पण्डित महादेव "झा"।

पुरुष को चाहिये कि पहिले स्त्री को स्खलित † कर (पाठक ! कुछ स्पष्टतापूर्वक कहना पड़ता है और कहे बगैर काम नहीं चलता, अतएव क्षमा करें) तत्काल खुद भी वीर्यपात कर दे।" ऐसा होने पर दोनों पदार्थों का मिश्रण हो बच्चे का बीज बन जायगा।

"बीज ‡ बन जाने की हालत में भी यदि स्त्री पुरुष तत्काल एक दूसरे से पृथक् होकर उठ खड़े हुए, तो वह बीज गर्भाशय में प्रवेश न कर योनि से ही फिर बाहर निकल जाता है; अतएव स्त्री पुरुष को तत्काल एक दूसरे से, कदापि पृथक् नहीं हो जाना चाहिये।

(२) मिश्रित पदार्थ का गर्भाशय में न ठहर पाना।

पुरुष के तत्काल अलग हो जाने से वायु के आघात द्वारा बने हुए बीज का बाहर निकल जाना बहुत मुमकिन है; और यह स्पष्ट ही है कि जुदा होते ही स्त्री के तत्काल उठ खड़े होने से वह बीज गर्भाशय की ओर आगे न बढ़ कर नीचे की ओर चला आता है और फौरन बाहर निकल जाता है। अतएव पुरुष को, जब तक वह आप से आप पृथक् न हो जाय, पृथक् होने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। आप से आप पृथक् हो जाने पर वह यदि उठ कर अलग हो जाय तो कोई हानि नहीं है, किन्तु पुरुष के हट जाने पर भी स्त्री को उसी प्रकार सीधा भीते रहना चाहिये और अधिक उत्तम तो यह हो कि उस बीज को, गर्भाशय की ओर आगे बढ़ने में, सहायता की जावे कि जो बहुत सुगमतापूर्वक की जा सकती है; अर्थात् स्त्री को अपना शरीर तना हुआ न रख ढीला छोड़ देना चाहिये कमर में कोई बन्धन न होना चाहिये और नितम्ब के नीचे एक छोटा तकिया अथवा कोई वस्त्र इकट्ठा कर रख दिया जाय कि जिस से अगला हिस्सा कुछ ऊंचा हो जाय और गर्भाशय की ओर कुछ ढलाव हो जाने के कारण बीज को गर्भाशय में प्रवेश करने में सुगमता हो और वह सुगमतापूर्वक

† स्खलित करने की रीति हम यहां देना उचित नहीं समझते।

‡ पण्डित महादेव "झा"। पाठक वात्स्यायन सूत्र अर्थात् काम सूत्र (कोकशास्त्र अश्लील ग्रन्थ नहीं) आदि में देखें।

गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाय। इस के बाद भी स्त्री को शान्तभाव से आराम करते रहना चाहिये ताकि गर्भाशय में पहुंचा हुआ बीज स्थित हो सके।"

(३) स्थित होने पर भी पीछा निकल आना।

रहा हुआ गर्भ—अथवा स्थित हुआ बीज—पीछा बाहर न निकल जाय इस के लिये बहुत सावधान रहना चाहिये। शुरू २ में थोड़ा भी विक्षेप पड़ने से अनिष्ट की सम्भावना रहती है। बोझा उठाना, बार २ सीढ़ियां उतरना चढ़ना या ज़ोर से वा जल्दी २ उतरना या चलना और पुनः २ संयोग करना हानिकारक है। "गर्भाशय * के निचले हिस्से में हरकत पैदा होने से, नाचने से, दौड़ने से, कूदने से, बलपूर्वक छींकने या खांसने से," बहुत नीचे देखने (जैसे कुए आदि में देखने) से, और भी ऐसे अनेक कारणों से रहे हुए गर्भ का स्थान भ्रष्ट हो जाना बहुत सम्भव है।

(४) वीर्य्य में वीर्य्यकीटों का न्यून हो जाना।

इस कठिनाई को दूर करने के लिये जहां तक हो सके, संयोग की संख्या घटाई जाय, यदि कम न हो सके तो अति की सीमा को न पहुंचाया जाय—शास्त्रकारों ने तो सोलहवीं रात्रि के बाद इस का सर्वथा निषेध किया है और उस में भी केवल एक बार। गर्भाधान के लिये की आज्ञा दी है, किन्तु आज कल लोगों के लिये एकदम इस की पाबन्दी करना कठिन सा है; अतएव इस विषय पर ज़ोर देना निरर्थक सा मालूम होता है। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य का विचार रखना ज़रूरी है। जहां तक सम्भव हो और जो आ सके संयोग की मात्रा को कम किया जाय—और स्त्री के रजस्वला होने से आठवें नवें दिन गर्भाधान किया जाय तब तक दोनों को अखण्ड ब्रह्मचारी रहना चाहिये—और इस समय को पवित्र विचारों और उत्तम पुस्तकों के अवलोकन और उत्तम विषयों में वार्तालाप कर के बिताना चाहिये।

जो पुरुष दोनों को परस्पर एक दूसरे से दृढ़, शुद्ध और सात्विक प्रेम

---

* डाक्टर "ट्रौल" (Troll)।

(५) प्रेम का अभाव।

करना चाहिये। दोनों को एक दूसरे का दिल दुखे ऐसे व्यवहार करने का विचार तक नहीं करना चाहिये और संयोग के समय पूर्ण रूप से आन्तरिक प्रेमपूर्वक एक दूसरे में लीन हो जाना (दो शरीर एक प्राण की कहावत को चरितार्थ कर दिखाना) चाहिये।

(६) मनःशक्ति की प्रतिकूलता।

इस बात का दृढ़ विश्वास और निश्चय कर लेना चाहिये कि हम संयोग सन्तानोत्पत्ति के लिये कर रहे हैं और अवश्य-मेव गर्भाधान होगा। इस विश्वास में लेशमात्र भी न्यूनता नहीं आनी चाहिये—बल्कि संयोग के कुछ अरसे पहिले से दोनों को अपने विचार—संयोगानन्द ! में नहीं बल्कि—गर्भाधान प्रति लगा देने चाहियें और "संयोग * के पश्चात् पुरुष को स्त्री के पेट पर (जिस जगह गर्भाशय है उस जगह) अपना हाथ रख इस बात का दृढ़ संकल्प करना चाहिये कि गर्भ स्थित हो गया -स्त्री को भी निश्चय पूर्वक इसी बात का ध्यान रखना चाहिये"। इस प्रकार उन्हें अपनी साधना में बीसों बिसवे सफलता होगी।

इन बातों के अतिरिक्त गर्भाधान के समय निम्न लिखित बातों का भी अवश्य ध्यान रक्खा जाय :—

(१) जिस प्रकार किसी पुण्यकार्य्य को करते हुए हमारे विचार स्वतः पवित्र होने लगते हैं और हो जाते हैं, उसी प्रकार इस समय भी हमें अपने आचार विचार को शुद्ध और पवित्र बना लेना चाहिये।

(२) दम्पति को स्नानादि क्रिया से निवृत्त हो शुद्ध, स्वच्छ और श्वेत वस्त्र पहिनना चाहिये। स्त्रियां यदि श्वेत वस्त्र न पहन सकें तो उन्हें हलके रंग का ऐसा रंगीन वस्त्र पहिनना चाहिये कि जिस में सफेदी का अंश अधिक हो, जैसे मोतिया। काले आदि रङ्ग का कदापि नहीं।

(३) जिस घर में शयन किया जाय वह सफेदी किया हुआ होना चाहिये।

---

* हकीम महम्मदहुसेन साहब।

(४) उस घर में आवश्यकीय वस्तुओं के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं होनी चाहिये।

(५) शयनागार में प्रायः लोग अश्लील और अप्राकृतिक चित्र लगा दिया करते हैं, सन्तान के लिये यह बहुत हानिकारक बात है। ऐसी जगह अश्लील और मनुष्याकृति से भिन्न कोई चित्र न रखा जावे। संक्षेप में यूं समझ लीजिये कि हृदय पर बुरा प्रभाव डालनेवाले किसी चित्र का होना अच्छा नहीं। हां! वह चित्र कि जिसे अपने सन्तान को सुन्दर बनाने के लिये ध्यानपूर्वक अवलोकन किया है उस जगह अवश्य रखना चाहिये।

(६) मकान में किसी प्रकार की दुर्गन्ध नहीं होनी चाहिये, बल्कि कोई सुगन्धित पदार्थ अथवा सुगन्धित पुष्प अवश्य होने चाहियें। पुष्पों में भी श्वेत रंग के पुष्प अधिक उत्तम होंगे।

(७) मकान में बहुत अंधेरा और बहुत प्रकाश (तेज़ रोशनी) भी नहीं होनी चाहिये, स्वच्छ और मन्द प्रकाश उत्तम है।

(८) स्थान एकान्त और निस्तब्ध होना चाहिये। भय और शंका जहां नाम मात्र भी प्रतीत होती हो या होने की सम्भावना हो, वह स्थान सर्वथा त्याग देने योग्य है।

(९) चित्त सब प्रकार प्रसन्न और प्रफुल्लित होना चाहिये।

(१०) कुचेष्टाओं को सर्वथा त्याग देना चाहिये।

(११) आनन्दमय बनते हुए अपने विचारों को निर्लज्ज—और निरंकुश नहीं होने देना चाहिये।

(१२) अधिक अथवा अनुचित लज्जा को भी त्यागना चाहिये—देखिये राजा विचित्रवीर्य्य की स्त्री ने लज्जा के कारण गर्भाधान के समय आंखों पर पट्टी बांधी और महाराज धृतराष्ट्र को जन्मान्ध होना पड़ा।

(१३) उस दिन भोजन सुपाच्य (जल्दी पचनेवाला जैसे खीर आदि) हलका और सदैव की अपेक्षा कुछ जल्दी कर लेना चाहिये।

(१४) अधिक भोजन कि जिस से ग्लानि उत्पन्न हो, नहीं करना चाहिये; सदा की अपेक्षा न्यूनता रक्खी जाय।

(१५) बिलकुल भूखे या खाली पेट भी गर्भाधान न किया जावे।

(१६) मादक पदार्थ (नशे) का सेवन सर्वथा निषिद्ध समझा जाय।

(१७) प्यासे और तत्काल पानी पीए हुए भी न होना चाहिये।

(१८) इस दिन थका देनेवाले कार्य्यों से बचा जाय।

(१९) दोनों में जो अधिक सुन्दर हो उसी की सुन्दरता पर ध्यान रक्खा जाय।

(२०) सन्तान को जिस विषय में योग्य बनाना हो उसी विषय का ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिये।

(२१) इस के अतिरिक्त जिन २ बातों को उचित समझा जाय ध्यान में रक्खा जाय।

उपरोक्त सब बातों को ध्यान में रखते हुए और उन के अनुसार कार्य्य करते हुए सन्तानप्राप्ति के लिये संयोग करना चाहिये।

गर्भाधान हो जाने के तात्कालिक लक्षण।

इस जगह यह बतला देना भी अनावश्यक न होगा कि संयोग के पश्चात् तत्काल यह कैसे मालूम किया जा सकता है कि गर्भ रहा या नहीं। इस के जान लेने के लिये हमारे शास्त्रकारों ने तात्कालिक लक्षण इस प्रकार बतलाए हैं :—"संयोग के बाद ही (१) तकान (थकावट) का मालूम होना; (२) ग्लानि होना (जी मिचलाना); (३) प्यास लगना; (४) साथलों (जंघाओं) का थक जाना; (५) रजस्राव का एकदम बन्द हो जाना; (६) और योनि का फरकना।" यदि ध्यानपूर्वक इन बातों के मालूम करने की ओर लक्ष दिया जाय और स्त्री इन का स्मरण रखते हुए विचार रक्खे तो बिना कठिनाई यह मालूम किया जा सकेगा कि गर्भ रहा या नहीं।*

* सुश्रुत।

कुछ समय बाद यह मालूम करने के लिये कि स्त्री गर्भ से है या नहीं– बहुत से तरीक़े हैं। ये तरीक़े प्रायः स्त्रियों को मालूम होते हैं और वे मालूम भी कर लेती हैं, तथापि प्रसंगानुसार यहां भी कुछ नियमों का उल्लेख किया

गर्भवती की पहिचान।

जाता है :—" * स्त्री के गर्भवती होने की सब से बड़ी पहिचान तो यह है कि (१) अगले महीने स्त्री को मासिक धर्म्म नहीं होता; (२) दोनों स्तनों का पुष्ट हो जाना और उन के मुंह पर सियाही का अधिक आ जाना; (३) पेट की रोमावली का उठा हुआ रहना; (४) आंखों की पलकों का मामूल से ज्यादा सिचना; (५) बिना कारण ही वमन (कै) का होना; (६) सुगन्ध भी बुरी मालूम होना; (७) मुंह में थूक का विशेष आना या पानी छुटना; (८) और हर समय बदन में तकान (थकावट) सी मालूम होना।" यदि ये चिन्ह मालूम हों तो स्त्री को निश्चय गर्भवती समझ लेना चाहिये।

प्रकरण तीसरा।

बच्चे के शारीरिक तत्त्व और वंश-परम्परा से आनेवाले गुण।

पाठक! कृपा कर बच्चे के शारीरिक-तत्त्व और वंशपरम्परा से आने-वाले गुणों के विषय में भी थोड़ा विचार कर लीजिये। यों यह विषय कठिन अवश्य है; किन्तु ऐसा कठिन नहीं कि समझा ही न जा सके। सन्तानोत्पत्ति—इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति- में इस के न जानने से कोई बाधा नहीं आती, और जान लेने से हानि के बदले लाभ ही की सम्भावना है; साथ ही यह विषय पाठकों को मनोरञ्जक भी अवश्य होगा। अतएव प्रसंगानुसार इस का वर्णन कर देना भी अप्रासंगिक न होगा।

गत प्रकरण में आप पढ़ चुके हैं कि बच्चे का बीज . इच्छ जितना छोटा होता है और अगले प्रकरण में देखेंगे कि माता के शरीर से पोषण पाकर बढ़ता है और उसी का रूपान्तर होकर बच्चा बन जाता है। अब प्रश्न यह होता है कि इतने छोटे बीज में बच्चे के शारीरिक सङ्गठन के आवश्यकीय पदार्थ, वंशपरम्परा से आनेवाले गुण और माता पिता के स्वभावादि की समानता कैसे समाई रहती है ·

इस प्रश्न के समाधान में दो प्रकार के सिद्धान्त देखने में आते हैं। पहिला सिद्धान्त यह है कि "बीज में (चाहे वह वनस्पति, पशु, पक्षी, अथवा मनुष्य जाति का हो, बच्चे के शरीर की रचना करनेवाले तत्त्व पहिले ही से यथास्थित संगठित हुए रहते हैं।" दूसरा सिद्धान्त यह है कि "वे पहिले ही से मौजूद नहीं होते, बल्कि भिन्नत्व—(Differentiation) के नियमानुसार शनैः २ शरीर के जुदे २ भाग उत्पन्न होते हैं।" इन सिद्धान्तों के अनुमोदन में तीन नामांकित विद्वानों के अभिप्राय नीचे दिये जाते हैं:—

पहिला व्यक्ति " हरबर्ट स्पेन्सर " है उस का सिद्धान्त है कि " जिस प्रकार क्षार (खार अथवा नमक) में अपने समान क्षार उत्पन्न करने की शक्ति होती है, उसी प्रकार प्रत्येक शारीरिक परमाणु (Unit) अथवा कोष (Cell) में अपना आकार प्राप्त कर लेने का गुण—स्वाभाविक गुण—होता है । " इस विद्वान् के मतानुसार सारा शरीर इसी प्रकार के परमाणु का बना हुआ होता है । ये सब परमाणु एक ही प्रकार के होते हैं। बीज में भी ऐसे ही परमाणु होते हैं। यही परमाणु जुदी २ रीति से संगठित होकर शरीर के जुदे २ आकार और भाग उत्पन्न करते हैं । इन परमाणुओं में जुदी २ रीति से संगठित होने का प्राकृतिक गुण होता है। यदि शरीर के कुछ परमाणु निकाल डाले जायं, या जिस प्रकार शास्त्र चिकित्सा के समय शरीर का कुछ भाग काट डाला जाता है और वह पीछा अपनी असली सूरत में आ जाता है, उसी प्रकार ये परमाणु अपनी कमी को स्वतः पूरा कर लेते हैं और पूर्णता को पहुंच जाते हैं) " इस विद्वान् ने अपने सिद्धान्त का इन ही शारीरिक परमाणुओं द्वारा प्रतिपादन किया है और वंश-परम्परा से औलाद में आनेवाले गुणों के विषय में भी कुछ विवेचन किया है—किन्तु वह यह नहीं बतलाता कि ये परमाणु बीज में किस प्रकार एकत्रित होते हैं ? केवल " शारीरिक परमाणुओं में ऐसा गुण है " ऐसा कहने से काम नहीं चलता। इसी सिद्धान्त का और और विद्वानों ने भी प्रतिपादन किया है, अतएव देखना चाहिये कि उन का इस विषय में क्या अभिप्राय है ?

इसी विषय में सिद्धान्त रूपी विवेचन करनेवाला दूसरा विद्वान् " चार्ल्स डार्विन " है। इस का अनुमान है कि शरीर का प्रत्येक भाग अपने में से अति सूक्ष्म भाग उत्पन्न करता है । ये अति सूक्ष्म परमाणु सारे शरीर में सञ्चालन करते हैं । जब इन को अच्छे प्रकार पोषण मिलता है, तब ये पुष्ट होते हैं और अपने में से अपने जैसे ही दूसरे परमाणुओं को उत्पन्न करते हैं। उन्हीं में से शनैः २ शरीर उत्पन्न करनेवाले कोषों की उत्पत्ति होती है । ये सब बच्चे में उतरते और प्रकट होते हैं। प्रायः कुछ पीढ़ियों तक गुप्त भी रह जाते हैं। शरीर की प्रत्येक प्रकार की वृद्धि

होने पर शारीरिक कोष इन परमाणुओं को उत्पन्न करते हैं। इन अति सूक्ष्म परमाणुओं में बीज में इकट्ठे होने का गुण है। इन परमाणुओं को पहिले के उन परमाणुओं में कि जो इन्हीं के समान हैं, मिलने से वृद्धि होती है। किन्तु इस ने भी कोई प्रयोग आदि कर के इस को प्रमाणित नहीं किया, अतएव इस सिद्धान्त पर भी पूर्ण रूप से विश्वास नहीं होता।

तीसरा व्यक्ति जरमनी का प्रख्यात विद्वान् "विस्मेन" है। उस ने जो अपने सिद्धान्त का विवेचन किया है उसे भी देख लीजिये। वह कहता है कि "बच्चे का बीज—बच्चे की उत्पत्ति करनेवाला बीज—प्राण-रक्षक-परमाणुओं (Vital units) का बना हुआ होता है कि जो गुण में पृथक् होते हुए एक ही प्रकार के होते हैं। शरीररचना करनेवाला प्रत्येक तत्त्व उन में मौजूद होता है। यह पदार्थ बार २ नया नहीं बनता, वरन इस की वृद्धि होती रहती है और वंशानुक्रम से औलाद में आता रहता है।"

यही विद्वान् आगे चलकर उपरोक्त कथन के समर्थन में कितने ही उदाहरण और दलीलें देता है, कितने ही प्रयोग कर के बच्चे के बीच में जुदे २ गुण रखनेवाले भाग बतलाता है और यह भी बतलाता है कि इस बीज में शारीरिक संगठन और वंशपरम्परा से आनेवाले गुणों से सम्बन्ध रखनेवाले तत्त्व किस प्रकार रहते हैं? किन्तु विस्तारभय से हम यहां उस के अभिप्राय—सिद्धान्त—का ही उल्लेख करेंगे।

वह कहता है कि "बच्चे की उत्पत्ति का कारण बतलानेवाला पहिला व्यक्ति "हेकल" ही है, ऐसा मेरा अनुमान है। इस के कथनानुसार जब एक प्राणी में होनी चाहिये उस से अधिक वृद्धि होती है, तब उस में से उसी के सदृश दूसरा प्राणी उत्पन्न हो जाता है।" इस विद्वान् का यह अनुमान एक कोषवाले, साधारण आंख से न देखे जा सकें ऐसे सूक्ष्म जन्तुओं के विषय में है—जैसे "एमिबा" "इन्फ्यूसेरिया" आदि। जब इन जन्तुओं की अच्छे प्रकार वृद्धि होती है—पोषण प्राप्त कर वे अच्छे प्रकार पुष्ट होते हैं—तब उन के दो भाग हो जाते हैं—वे दो भागों में विभक्त हो जाते हैं—उन दोनों भागों में ऐसी समानता होती है कि यह जान लेना कठिन सा हो

एककोषीय जन्तुओं का वृद्धिक्रम

जाता है कि कौन भाग नया और कौन भाग पुराना है। ये दोनों अलग २ प्राणी के समान जीवन बिताते हैं। इन की फिर वृद्धि होती है, और फिर दो भागों में विभक्त हो अपने समान जन्तुओं की वृद्धि करते हैं। इसी प्रकार इन जन्तुओं की बराबर वृद्धि होती रहती है और ये जीते रहते हैं—बल्कि ये जन्तु इस प्रकार अमर रहते हैं। ऐसे एक कोषवाले सूक्ष्म जन्तु का अच्छे प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने पर यह प्रत्यक्ष रूप से मालूम हो जायगा कि बच्चा सर्वथा माता पिता का अंशरूप है।

ऐसे एक कोषवाले (जिन का शरीर एक कोष का ही बना हुआ हो) जन्तु तो ऊपर कहे अनुसार दो भागों में विभक्त हो कर दूसरे जन्तु उत्पन्न करते हैं; किन्तु बड़े जानवर और मनुष्य कि जिन का शरीर असंख्य कोषों से मिलकर बना है, बिना स्त्री पुरुष का योग हुए सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते, अतएव देखना चाहिये कि इन में बच्चे की उत्पत्ति किस प्रकार होती है?

उपरोक्त जन्तु केवल एक कोष के बने हुए हैं, किन्तु अन्य जानवर और मनुष्यादि का शरीर ऐसे करोड़ों ही अति सूक्ष्म कोषों का बना हुआ है। मनुष्यशरीर में दो प्रकार के कोष होते हैं। एक प्रकार के कोषों से शरीर बना है कि जिन में से दिन में सैकड़ों ही नष्ट होते हैं और भोजन आदि से फिर उत्पन्न हो जाते हैं। दूसरे प्रकार के जो कोष हैं, वे नष्ट नहीं होते—मरते नहीं—और पीढ़ी दर पीढ़ी औलाद (सन्तान) में उतरते रहते हैं। इन्हीं कोषों से वीर्य्य उत्पन्न होकर बच्चे की उत्पत्ति करता है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि ये दो प्रकार के कोष उत्पन्न कैसे हुए?

दो प्रकार के कोषों की उत्पत्ति।

पहिले जिन जन्तुओं के विषय में उल्लेख किया जा चुका है, वे अच्छे प्रकार पोषण प्राप्त होने पर बढ़ते हैं और दो भागों में विभक्त होकर अपने समान जन्तु उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार विभक्त होते २—कितने ही जन्तु विभक्त हो जाने पर भी अलग २ न होकर आपस में—एक दूसरे से—मिले रहे। मिले रह कर, उन्हों ने अपने काम को दो भागों में विभक्त कर आपस में

बांट लिया। एक भाग ने खूराक (आहार) से पोषण करने का और दूसरे भाग ने, अपने में से, अपने समान जन्तु उत्पन्न करने का ज़िम्मा लिया और इस के अनुसार दोनों भागों ने अपना २ काम करना शुरू किया। यही दो प्रकार की कोषोत्पत्ति का आदि कारण है। प्रोफ़ेसर "विस्मेन" इन दो प्रकार के कोषों के नाम पोषक-कोष (शरीर का रक्षण और पोषण-करनेवालेकोष = Sometic Cells) और उत्पादक-कोष (वृद्धि करनेवाले या बच्चे को उत्पन्न करनेवाले कोष = Germ Cells) बतलाता है।

एककोषीय जन्तु और मनुष्योत्पत्ति में समानता।

"पाठक! गत प्रकरण में पढ़ चुके हैं कि नर और नारी जाति का एक एक कोष मिल कर बच्चे का बीज बनता है। दोनों प्रकार के कोष मिल कर एक बन जाते हैं—इस में दो भाग होते हैं—ज़रदी (न्यूक्लयस) और सपेदी (प्रोटो प्लाज़्म) तमाम कोष का मुख्य और आवश्यकीय भाग न्यूक्लस ही है। बच्चे की उत्पत्ति करनेवाले आवश्यकीय तत्त्व और शक्तियां इसी भाग में होती हैं। सपेदी (प्रोटो प्लाज़्म) ज़रदी (न्यूक्लस) का पोषण और रक्षण करती है।") प्रोफ़ेसर "हेक्सले" के मतानुसार बच्चा जिन २ बातों में माता पिता से विपरीत प्रकृति, गुण और स्वभाव का होता है, वह इस सपेदी पर जुदा जुदा असर होने ही का प्रताप है, सपदी में बाहर के फेरफार का असर अपने ऊपर लेलेने का स्वभाव होने (Re-ponsive power) के कारण ही बच्चे में फेरफार होता है, जैसा कि पाठकों को आगे सविस्तर मालूम हो जायगा।)

शरीररचना, शरीरसंगठन और वंशपरम्परा से आनेवाले प्रत्येक गुण इसी ज़रदी के भाग में होते है। यह सिद्धान्त किस प्रकार मान्य और किस प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ यह भी देख लीजिये :—

मनुष्यबीज बहुत छोटा और दुष्प्राप्य होने के कारण उस पर प्रयोग नहीं किया जा सका। मनुष्यबीज और अण्डा प्रायः समान होने से (क्योंकि प्राकृतिक नियमानुसार जो २ भाग मनुष्यबीज में होते हैं, वे ही पशु, पक्षियों आदि के बीज में होते हैं। वंशपरम्परागत शरीररचना और स्वभाव

आदि के तत्त्वों में मिलता होना दूसरी बात है) जो प्रयोग बच्चे पर किया जाय वह प्रयोग मनुष्यजाति के बीज पर किये हुए प्रयोग के बराबर ही समझा जायगा।

जरमनी के "बावेरी" (Boveri) नामक एक विद्वान् ने इसी बात को साबित करने के लिये, कि बच्चे को पैदा करने की शक्ति और संक्रमण-तत्त्व जरदी ही में होते हैं—एक दरयाई जानवर (Sea urchin) का बच्चा लिया और बहुत सावधानी के साथ उस में से जरदी का भाग निकाल दूसरी जाति के बच्चे की जरदी उस में डाली गई; परिणाम यह हुआ कि जिस जाति की जरदी—न्यूक्लियस—उस में से निकाली गई उस जाति का बच्चा पैदा न हो कर जिस जाति की जरदी उस में डाली गई उस जाति का बच्चा पैदा हुआ; अतएव सिद्ध हुआ कि बच्चा पैदा करने की ताकत (शक्ति) जरदी ही में है—सपेदी तो बीज का पोषण मात्र करती है।

पाठक ! अब देखिये कि बच्चे के बीज में अथवा उक्त मिश्रित कोष में इस प्रकार के दो भाग हैं किन्तु है, वह एक ही कोष—और एक कोष होने की अवस्था में, एककोषीय जंतुओं में और इस मनुष्यबीज में, कि जो मनुष्य का आदि स्वरूप है, कोई भेद नहीं है। जब कोई भेद नहीं है, तो मानना पड़ेगा कि मनुष्य भी प्रारम्भ में एककोषीय स्थिति में आया—तत्पश्चात्, मनुष्यशरीर करोड़ों कोषों का बना होने के कारण, उक्त एक-कोष की वृद्धि हो कर मनुष्य-शरीर बना, अर्थात् इस को पोषण प्राप्त होने पर वृद्धि हुई—वृद्धि होने पर नियमानुसार यह दो भागों में विभक्त हुआ, किन्तु (दो प्रकार के कोषों के नियमानुसार) अलग २ न हो, विभक्त हो जाने पर भी, ये आपस में मिले रहे। इन दोनों की फिर वृद्धि हुई और प्रत्येक फिर दो दो भागों में विभक्त हुआ—(विशेष हाल "बच्चे की शारीरिक रचना और पोषण" नामक चौथे प्रकरण में मिलेगा) इसी प्रकार विभक्त होते २ इन कोषों की वृद्धि हो कर, क्रमानुसार बच्चे के अंग प्रत्यंगों की रचना होती गई। आशा है कि उक्त कोषों का वृद्धि-क्रम और मनुष्य-

जाति के बच्चे का उत्पत्ति-क्रम पाठकों को अच्छे प्रकार ध्यान में आ गया होगा।

अव्वल (प्रथम) तो मनुष्य बीज बहुत ही बारीक (सूक्ष्म) और बारीक भी ऐसा कि एक पानी के परमाणु (ज़र्रे) से भी बारीक—उस में भी उस ज़र्रे का भाग, कि जिस में पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तान में अवतरित होनेवाली शक्तियां और बच्चे के शरीर-रचना-तत्त्व बतलाए जाते हैं अति सूक्ष्म होता है; अतएव अगत्या प्रश्न करना पड़ता है कि ऐसे अति सूक्ष्म बीज में वह शक्ति और तत्त्व कैसे हैं कि जो बच्चे की रचना करते हैं ?

बच्चे के शारीरिक तत्त्व और संगठन करनेवाली शक्तियां।

पाठक! यह तो आप ऊपर स्वीकार कर आए हैं कि सन्तान में उतरनेवाले गुण और उस की शरीररचना करनेवाले तत्त्व इसी ज़र्रे में होते हैं। किन्तु इस प्रश्न का समाधान करना भी अत्यावश्यक है—अच्छा तो आइये, अपने पूर्व परिचित उन्हीं प्रोफ़ेसर (विस्मन) महाशय को टटोलें कि वे इस विषय में क्या कहते हैं—

देखिये, वे आप को इस शक्ति और तत्त्वों का भी परिचय देते हैं। सुनिये :—"बीज में जो शक्ति है उसे इडियो प्लाज़्म=(Ideoplasm) कहते हैं। यह शक्ति प्रत्येक बीज में नई नहीं बनती, बल्कि पीढ़ी दरपीढ़ी उत्पादक कोषों में से प्रत्येक कोष, प्रत्येक नये बननेवाले कोष, को यह शक्ति देता रहता है। बीज में, बच्चे की उत्पत्ति करनेवाला तत्त्व, इसी शक्ति के आधार पर बच्चे का शारीरिक संगठन—या बच्चे की शारीरिक रचना करता है। उत्पादक कोषों के साथ २ यह शक्ति भी सन्तान दर सन्तान अवतरित होती रहती है।

बीज में माता पिता की शरीररचना के अनुसार ही शरीररचना हुई रहती है। माता पिता के जिस जगह जो अवयव होता है, प्रायः बीज में भी उस जगह वही अवयव होता है और क्रमानुसार प्रत्येक अवयव विकास पाता है—बीज में जो "डिटर्मीनेन्ट (Determinent) नाम का एक और

सूक्ष्म पदार्थ होता है, उसी के द्वारा यह सब कार्य होता है और उसी के प्रभाव से बीज क्रमानुसार बढ़ता है।

बीज के प्रत्येक परमाणु में उसी के अनुसार गुण देनेवाला-जीवन-शक्ति देनेवाला—जो तत्त्व होता है उस को "बायोफर्स" (Biophers) कहते हैं। इस "बायोफर्स" द्वारा ही बीज में जीवनशक्ति और औलाद का जातीय गुण उत्पन्न होता है—प्रत्येक जाति के बीज में जुदे २ प्रकार के "बायोफर्स" होने के कारण ही बच्चे में उस जाति के अनुसार रङ्ग रूप और गुण प्रकट होते हैं। इन "बायोफर्स" के परमाणु अलग २ नहीं होते। कितने ही परमाणुओं का मिलकर एक "बायोफर" बनता है। प्रोटोप्लाज्म—सफेदी—इन ही बायोफर्स की बनी हुई होती है। परमाणुओं के जुदी २ रीति से संगठित होने पर, जुदे २ गुणवाला "बायोफर" बनता है। यह बायोफर न्यूक्लस—ज़रदी—के भाग में प्रवेश करने पर उस के गुण को बदल कर अपने समान गुणवाला बना लेता है।

ऊपर बताये गये सब सूक्ष्म तत्त्व और शक्तियां उचित पद्धति में कार्य करती हैं। जिस प्रकार किसी मकान को बनाते समय पहिले उस का नकशा (प्लान) तय्यार किया जाता है, नकशा तय्यार हो चुकने पर, इमारत बनाने के लिये जिस २ वस्तु की आवश्यकता समझी जाती है वह इकट्ठी की जाती है, तत्पश्चात् उस की बनाई का काम शुरू होता है। इसी प्रकार बच्चे के बीज में पहिले निश्चित आकार का प्लान तय्यार होकर बच्चे का रचनाक्रम स्थिर होता है। उपरोक्त तत्त्व और उन में जो शक्तियां हैं वे बच्चे की रचना करने का काम शुरू करती हैं और सिर, हाथ, पैर और प्रत्येक अवयव की रचना का जो आकार निश्चित हो चुका है, उसी के अनुसार, उसी जगह पर, वही अवयव बनाती हैं। (बच्चे की शारीरिक रचना के लिये चौथा प्रकरण देखें)।

वंशपरम्परा से आनेवाले गुणों से सम्बन्ध रखनेवाले तत्त्व।

पाठक! आप ने बच्चे के शारीरिक तत्त्व और उन तत्त्वों में रह कर बच्चे की रचना करनेवाली शक्तियों से तो परिचय प्राप्त कर ही लिया। कृपा कर, वंशपरम्परा से आनेवाले गुणों से सम्बन्ध रखनेवाले तत्त्वों को भी देख लीजिये।

जिस "इडियोप्लाज़्म" शक्ति के विषय में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है—उस शक्ति के जो "इड्स" नामक तत्त्व, बच्चे के बीज में होते हैं उन्हीं में वंशपरम्परा से आनेवाली प्रत्येक ख़ासियत शरीरसंगठन और स्वभाव की समानता होती है। जिस समय बच्चे का बीज एक से दो, दो से चार, आदि भागों में विभक्त होता है, उस समय, उस में यह "इड्स" नामक तत्त्व बहुतायत से होता है और ज्यों ज्यों बच्चे का बीज एक से दो और दो से चार आदि भागों में विभक्त होता जाता है त्यों ही त्यों "इड्स" भी उतने ही भागों में विभक्त होता जाता है और जो बहुत प्रबल (बलवान) "इड" (Id) होता है शेष रह जाता है—यही अपने स्वभावादि के अनुसार बच्चे का संगठन करता है। बीज में "डिटर्मीनेण्ट" (नामक तत्त्व) भी बहुत होते हैं; जो अमुक २ अवयव के तत्त्वों को विभक्त कर के अमुक २ अवयव ही को बनाते हैं। इन "डिटर्मीनेण्ट" में से बहुत से "बायोफ़र्स" में बदल जाते हैं—इन के "बायोफ़र्स" बन जाते हैं। ये "बायोफ़र्स" बीज के प्रत्येक परमाणु का रक्षण करते हैं और इन्हीं में वंशपरम्परा से उतरनेवाली ख़ासियतें होती हैं—अर्थात् प्रत्येक परमाणु को वंशपरम्परा से आनेवाली ख़ासियत यही "बायोफ़र्स" देते हैं। ये "बायो-फ़र्स" बीज के प्रत्येक परमाणु में प्रविष्ट हो जाते हैं। और पूरे गुण—अथवा कम गुण—रखनेवाला "बायोफ़र" जिस परमाणु में दाख़िल होता है वह उसी प्रकार की रचना करता है।.........आशा है कि पाठक अच्छे प्रकार समझ गये होंगे कि बीज में—बच्चे के बीज में—जो तत्त्व हैं वे, और उन तत्त्वों में जो शक्तियां हैं वे—किस प्रकार बच्चे की रचना करने की शक्ति रखती हैं और बीज में वंशपरम्परागत स्वभावादि का किस प्रकार समावेश रहता है। किन्तु एक महत्त्व का ज़रूरी प्रश्न और उठता है कि जब बच्चे का बीज—उस में भी ज़र्रदी का भाग इतना सूक्ष्म है तो उस में जो तत्त्व हैं वे कितने सूक्ष्म होने चाहियें? और उन तत्त्वों में जो शक्ति है वह किस चीज़ की बनी हुई है?

जिन प्रोफ़ेसर "विज़्मेन" महोदय की सहायता से हम अब तक निर्विघ्न आगे बढ़ते चले आए हैं यहां आकर वे भी हमारा साथ छोड़

देते हैं—खैर! लेकिन दीक्षित-रस से निराश होने की कोई बात नहीं है; हमें दूसरी जगह देखना चाहिये—किसी दूसरे शास्त्र का आधार लेना चाहिये—देखिये! मानसिक शास्त्र हमें इस का कारण बतलाता है—अतएव प्रोफ़ेसर साहब की अब तक दी हुई दलीलों को मान्य रखते हुए हम उसी शास्त्र के आधार पर आगे बढ़ते हैं :—

बीज में जो शक्तियां और तत्त्व हैं वे किस तत्त्व के बने हुए हैं?

मनुष्यबीज, पानी के एक परमाणु से भी बारीक और ½ रज जितना छोटा होता है, उसी में पीढ़ी दर पीढ़ी सन्तान में उतरने वाले गुण और बच्चे के शारीरिक सङ्गठन से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक तत्त्व होता है। इसी में प्रत्येक प्रकार की शक्ति भी होती है; अतएव इस बीज में होने वाला प्रत्येक तत्त्व और शक्ति इतनी बारीक होनी चाहिये—इतनी सूक्ष्म होनी चाहिये—कि जो सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र द्वारा भी न देखी जा सके। किन्तु इतने सूक्ष्म तत्त्व और किसी पदार्थ के होना सम्भव नहीं, केवल "ईथर" (नामक तत्त्व) ही के हो सकते हैं। यह "ईथर" तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म होता है। पाठक उस की सूक्ष्मता का इस से अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि वह लोहे जैसे घन पदार्थ में भी प्रवेश कर सकता है—और इस अनुकूलता के साथ कि लोहे के एक परमाणु में "ईथर" के हज़ारों ही नहीं वरन् लाखों परमाणु प्रविष्ट हो सकते हैं। अतएव अनुमान यही होता है कि बीज—बच्चे के बीज—में भी इसी "ईथर" के परमाणु होते हैं (इन परमाणुओं का विशेष हाल छठे प्रकरण में मिलेगा)। बीज में इन को अपना मन उत्पन्न करता है। अर्वाचीन मानसिक शास्त्र के सिद्धान्तानुसार मन से उत्पन्न होनेवाले विचार और शक्तियां इसी "ईथर" नामक तत्त्व की बनी हुई होती हैं। प्रत्येक विचार जो कि अपने मन से उत्पन्न होता है इसी "ईथर" का बना होता है। प्रत्येक विचार "ईथर" के हिस्से में विशेष प्रकार की (अपने अनुसार!) आकृति उत्पन्न करता है; किन्तु यह आकृति अथवा आकार "ईथर" के बने होने के कारण साधारण आंख से नहीं देखे जा सकते।

जर्मनी के प्रख्यात विद्वान् डाक्टर "ब्रंडक्" ने इस सिद्धान्त की सफलता प्रतिपादन करने के लिये कठिन परिश्रम और अभ्यास द्वारा खास प्रयोग कर के विचारों के द्वारा जो "ईथर" में आकृतियां उत्पन्न होती हैं उन के प्लेट (तसवीर) लिये हैं। उस विद्वान् ने ऐसे प्रयोग कई बार किये—एक बार एक सैनिक) फ़ौजी ने गरुड़ पक्षी का विचार किया, और प्लेट पर भी गरुड़ पक्षी ही का चित्र आया। इसी प्रकार एक बार एक स्त्री अपने मरे हुए बच्चे का विचार कर रही थी; उसी समय प्लेट लिया गया और उस प्लेट पर उस मरे हुए बच्चे का चित्र उतर आया।

अतएव उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि— बच्चे का आकार पहिले माता के मन में उत्पन्न होता है; यह आकार "ईथर" के परमाणुओं का बना हुआ होता है; ये परमाणु माता के रुधिर से पोषण पाकर जड़ बनते हैं और बच्चे के योग में प्रवेश करते हैं और अपने समान गुणवाले बच्चे की उत्पत्ति करते हैं। पाठक! आप आगे चल कर देखेंगे कि माता के मन पर जिस प्रकार के आकार का, जिस प्रकार की शरीर रचना का और जिस प्रकार के स्वभाव, ज्ञान और बुद्धि का प्रभाव होता है वैसा ही बच्चा पैदा होता है। इस का कारण ऊपर कहे अनुसार ये ही "ईथर" के परमाणु हैं।

प्रकरण चौथा।

" बच्चे की शारीरिक रचना और पोषण।"

दूसरे प्रकरण में (जिस जगह गर्भाधान का वर्णन किया गया है) बतलाया जा चुका है कि " पुरुषवीर्य (का एक) जन्तु स्त्रीवीर्य (के एक) कोष में प्रविष्ट होता है और पुरुष वीर्य जन्तु का "न्यूक्लस" भाग, स्त्रीवीर्य कोष के "न्यूक्लस" भाग के साथ मिश्रित होता है।" इस मिश्रित हुए कोष को बच्चे का बीज कहते हैं।

यह बीज गर्भाशय में कैसे और किस मार्ग से प्रवेश करता है; इस विषय में विद्वानों के सिद्धान्तों में भेद है। किसी का सिद्धान्त है कि यह बीज "फ़ेलोपियन" नली द्वारा अण्डकोष (ovaries) में जाता है और वहां से गर्भाशय में। दूसरे पक्ष का सिद्धान्त है कि यह योनि से सीधा गर्भाशय में प्रवेश कर जाता है। किन्तु पाठक! यह विषय इतना आवश्यकीय नहीं है और न इस के न जानने से ही कोई हानि है; ऐसी हालत में इस के निर्णय करने की झञ्झट में न पड़ कर इतना कह देना ही बस होगा कि यह बीज गर्भाशय में प्रवेश करता है कि जहां इस की प्रसव पर्य्यन्त वृद्धि होती है।

अब देखना यह है कि गर्भाशय में पहुंचने पर इस बीज की वृद्धि किस प्रकार होती है और इतने छोटे बीज से कि जो १/१२० इञ्च के बराबर है—बच्चे के शारीरिक अवयव किस क्रम से बनते हैं और किस २ महीने में कौन २ अवयव उत्पन्न होता है?

इस विषय में वैद्यक शास्त्र के आचार्यों में मतभेद है। कोई कहता गर्भ में बच्चे का है कि मस्तक समस्त शारीरिक इन्द्रियों का मूल-कौन अवयव पहिले स्थान है इस लिये पहिले मस्तक उत्पन्न होता है। उत्पन्न होता है। कोई कहता है कि हृदय बुद्धि और मन का स्थान

है इस लिये पहिले हृदय उत्पन्न होता है। कोई कहता है कि बच्चे का पोषण नाभी द्वारा होता है अतएव पहिले नाभी बनती है। कोई कहता है कि गर्भ में सब से पहिले चेष्टा मालूम पड़ती है और चेष्टा हाथ-पांव का गुण है अतएव पहिले हाथ पांव बनते हैं। कोई कहता है कि मध्य-शरीर ही से समस्त शारीरिक अवयवों का सम्बन्ध है अतएव पहिले धड़ बनता है और भारतवर्षीय चिकित्साशास्त्र के आचार्य धन्वन्तरी जी का अभिप्राय है कि बालक के अंग प्रत्यंग, सब एक साथ ही उत्पन्न होते हैं; गर्भ के सूक्ष्म होने के कारण नज़र नहीं आते किन्तु समय पाकर यथा-क्रम प्रकट हो जाते हैं। विचारने पर यही सिद्धान्त युक्तिसंगत प्रतीत होता है और अर्वाचीन विद्वानों की खोज से भी इसी की पुष्टि होती है।

शारीरिक संगठन और मानसिक शक्तियों का विकासकाल।

बच्चे का बीज उत्पन्न होने के समय से प्रायः नौ महीने में बच्चे के सारे शारीरिक अवयव और शारीरिक और मानसिक शक्तियां पूर्ण रूप से बन चुकती हैं। इस नौ महीने की अवधि को विद्वानों ने प्राकृतिक नियमानुसार दो भागों में विभक्त किया है; अर्थात् पहिले छः महीने का एक भाग, तथा दूसरे तीन महीने का दूसरा भाग। पहिले भाग में बच्चे के प्रायः सारे शारीरिक अवयव बनते हैं, दूसरे भाग में वे अधिक पुष्ट होते हैं, और बच्चे की मानसिक शक्तियां (अर्थात् मस्तक में जो जुदी २ शक्तियों के जो जुदे २ स्थान हैं वे) पूर्ण रूप से परिपक्व और पुष्ट होकर विकास पाती हैं। अतएव पहिले छः महीने में बच्चे की शारीरिक रचना में और पिछले तीन महीने में बच्चे की मानसिक शक्तियों में परिवर्तन कर इच्छानुसार संस्कृत किया जा सकता है कि जिस का यथा समय उदाहरणों सहित सविस्तर वर्णन किया जावेगा।

बच्चे का वृद्धिक्रम अथवा बच्चे की शारीरिक रचना

इस के विषय में आयुर्वेद और अर्वाचीन डाक्टरी सिद्धान्त प्रायः एक से हैं। जिस प्रकार यूरोपियन विद्वान् बच्चे का वृद्धि-क्रम मानते हैं प्रायः (कुछ न्यूनाधिक) उसी प्रकार, हमारे वैद्यकशास्त्र ने भी माना है। किन्तु वैद्यक

शास्त्र में इस का जो क्रम मिलता है, वह संक्षेप में है और यूरोपियन विद्वानों का बतलाया हुआ क्रम सविस्तर और प्रत्यक्ष प्रमाणित हो जाने के कारण यहां यूरोपियन विद्वानों के सिद्धान्तानुसार ही बच्चे का हृदिक्रम दिया जाता है * ।

पहिला और दूसरा सप्ताह ।

इस बात के जानने की विद्वानों ने बहुत कोशिश की और सैकड़ों ही प्रयोग भी किये कि "बच्चे के बीज उत्पन्न होने के समय से, प्रथम दो सप्ताह पर्य्यन्त उस बीज की क्या हालत रहती है, और वह किस प्रकार बढ़ता है और उस में क्या २ परिवर्त्तन होते हैं ?" किन्तु आज तक इस बात का पूर्णरूप से निश्चय नहीं किया जा सका है ।

इसी ख़याल से कि—"जब संयोग किया जाता है तो दोनों प्रकार के पदार्थ (रज और वीर्य्य) उत्पन्न होते हैं; जब उत्पन्न होते हैं तो मिश्रण भी अवश्य होता है और जब मिश्रण हुआ तो बच्चे का बीज भी अवश्य ही बना । इस बीज के गर्भाशय में ठहर जाने पर तो गर्भ रह ही जाता है—किन्तु प्राय: संयोग करने पर गर्भ नहीं रहता, अतएव वह मिश्रित पदार्थ समय २ पर पीछा बाहर निकलता है । जब बाहर निकलता है तो सम्भव है कि उस के देखने से गर्भ की इस समय की स्थिति के विषय में पता लगाया जा सके ।" संयोग के बाद स्त्रियों की योनि में, उस बीज के पीछा बाहर निकलने तक बराबर एक साफ़ कपड़ा रक्खा और बाहर निकलने पर उस का बहुत सावधानी के साथ निरीक्षण किया जाता रहा । बाज़ स्त्रियों के चौथे दिन, बाज़ के छठें सातवें दिन, बाज़ के नवें दसवें दिन, और बाज़ के बारहवें, तेरहवें दिन वह बीज पीछा बाहर निकला; उस को जांचने पर सिर्फ़ एक बारीक सा ख़ून का दाग़ पाया गया ; इस से विशेष कुछ पता न लग सका । अतएव ठीक तौर पर यह बतलाना कि, "गर्भाधान के समय से दूसरे सप्ताह के समाप्त होने तक वह किस प्रकार बढ़ता है और उस में क्या २ परिवर्त्तन होता है" असम्भव है । फिर भी इस समय

---

* Sexual Physiology by Trall

की स्थिति के विषय में विद्वानों ने जो अनुमान स्थिर किये हैं, वे ही पाठकों के विदितार्थ यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

जिस प्रकार एक वृक्ष का फल क्रमशः बढ़ता है उस प्रकार बच्चे का बीज नहीं बढ़ता। वह (बीज) पहिले दो भागों में विभक्त होता है, कि जो विभक्त हो जाने पर भी आपस में मिले रहते हैं। इन दोनों भागों में से प्रत्येक भाग फिर दो भागों में विभक्त होता है; ये चारों भाग भी पूर्वानुसार आपस में मिले रहते हैं। इन चार भागों में से प्रत्येक भाग फिर दो भागों में विभक्त होता है; ये भी परस्पर मिले रहते हैं। इन आठ के सोलह भाग हो जाते हैं (देखो चित्र नं० (४) तथा (५))। इस क्रम से विभक्त होते और बढ़ते २ यह बीज एक "शहतूत" की शकल का बन जाता है (देखो चित्र नं० (६))। इस के बाद बच्चे का आकार बनना शुरू होता है और उस के अंग प्रत्यंग विकास पाने लगते हैं।

दूसरे सप्ताह के समाप्त होते २ बच्चे के बीज का वज़न प्रायः एक ग्रेन और आकार प्रायः 1/12 इंच हो जाता है। तीसरे सप्ताह के समाप्त होते २ उस का आकार बाजरे के दाने के बराबर अथवा लाल चींटी के समान होता है। चौथे सप्ताह, अथवा पहिले महीने के समाप्त होते २ सिर तथा पैर का आकार बनने लगता है। लम्बाई 1/4 इंच तक बढ़ जाती है। लगभग पैंतालीसवें दिन बच्चे का ऐसा आकार बन जाता है कि जिसे देख कर यह कहा जा सके कि यह मनुष्य जाति का बच्चा है। इस समय शरीर की अपेक्षा सिर बड़ा होता है। हाथ, पैर ठूंठे के समान होते हैं; उन में हथेली, तलव या उंगलियां नहीं होतीं। आंख, नाक, कान, और मुंह की जगह, सिर्फ़ काले २ दाग़ से मालूम पड़ने लगते हैं। लम्बाई एक इंच तक बढ़ जाती है।

दूसरा, तीसरा और चौथा सप्ताह।
चित्र नं० (७-८-९)

दूसरे महीने में प्रायः सारे अवयव स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं; आंख की पलकें, मुंह और हाथ पैर की उंगलियां नज़र आने लगती हैं; नाक बाहर निकलना शुरू होता है।

दूसरा महीना।
चित्र नं० (१०)
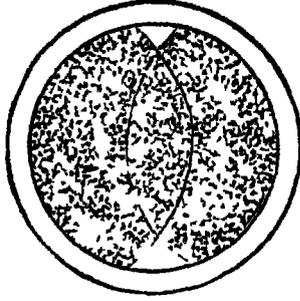
चित्र नम्बर ४

भ्रविक्रम (प्रथम पक्ष) पृ० ८२

चित्र नम्बर ५
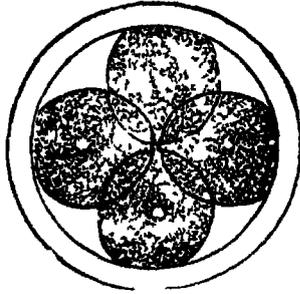
भ्रविक्रम (प्रथम पक्ष) पृ० ८२

चित्र नम्बर ६
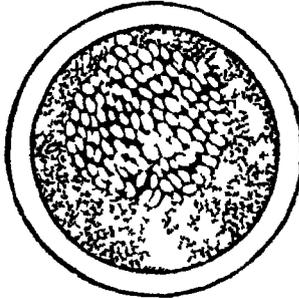
भ्रविक्रम (प्रथम पक्ष) पृ० ८२

चित्र नम्बर ७
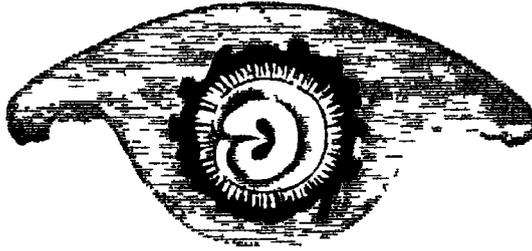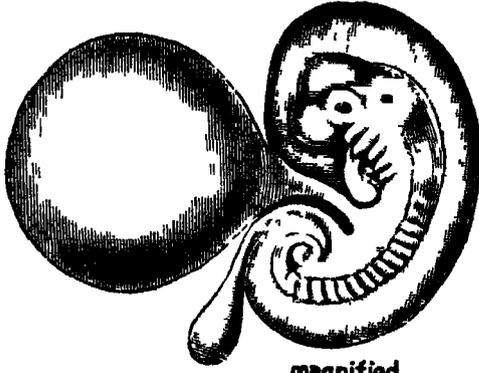
(असली आकार)।

(बढ़ाया हुआ आकार)।

हुकवर्म (द्वितीय सप्ताह समाप्त)।

चित्र नम्बर ८

(बढ़ाया हुआ आकार)।

हृदिक्रम (तृतीय सप्ताह)।

चित्र नम्बर ९

(प्रथम मास)

(असली आकार)

(बढाया हुआ)

चित्र नम्बर १०

(असली आकार)

भ्रूविकास (द्वितीय मास)

चित्र नम्बर ११

(असली आकार)

भ्रूणविक्रम (तृतीय मास)
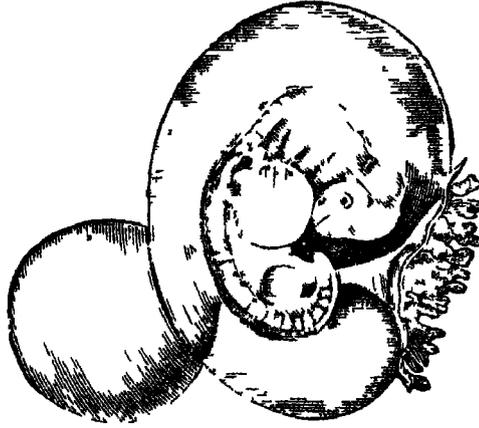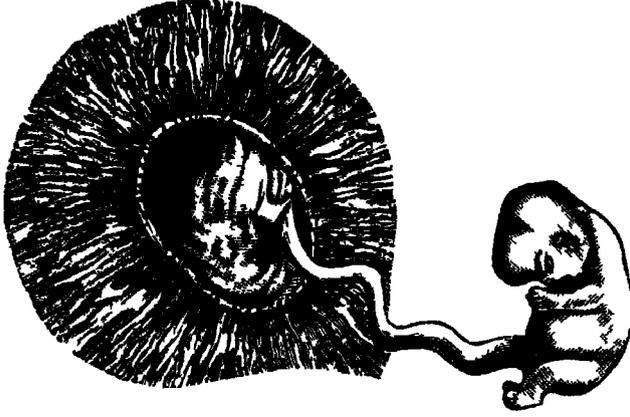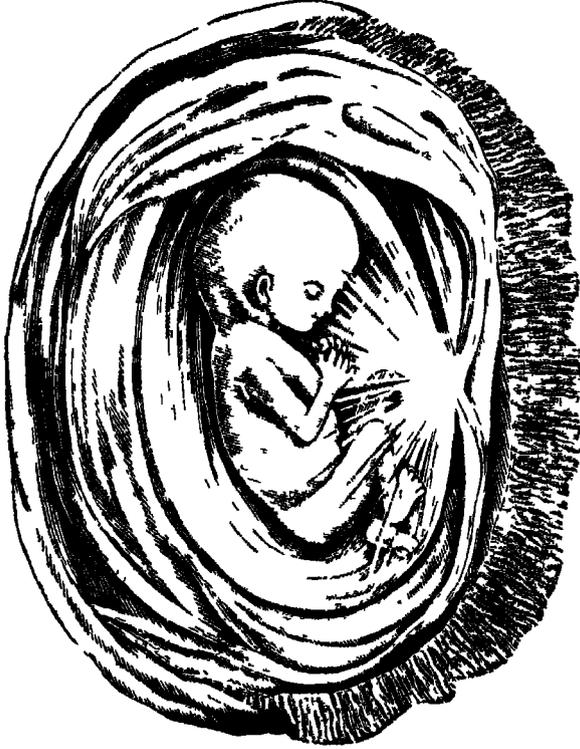
चित्र नम्बर १२

(असली आकार)
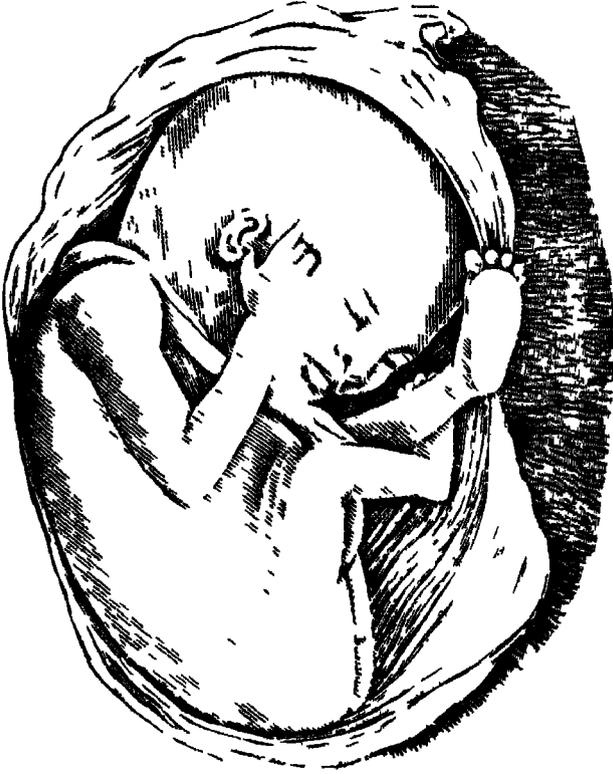
वृद्धिक्रम (चतुर्थ मास)

तीसरे महीने में आंख की पलकें प्रायः तय्यार हो जाती हैं, किन्तु बन्द रहती हैं; नाक के नथने और होंठ बराबर दिखाई देने लगते हैं, मुंह बन्द रहता है। इसी महीने में स्त्री पुरुष में भेद बतलानेवाले अवयव की रचना होती है और वह चिन्ह साफ़ मालूम पड़ने लगता है। मस्तक कुछ विकास पाया हुआ किन्तु बहुत ही लपलपा होता है; कमर का भाग भी प्रायः ऐसा ही होता है। फेफड़ा भी इस समय तक पूरा विकास पाया हुआ नहीं होता। कलेजा कुछ बड़ा मालूम पड़ता है; हाथ पैर परिपूर्ण हो जाते हैं। लम्बाई ३½ इञ्च और वज़न २½ औंस हो जाता है।

तीसरा महीना।
चित्र नं० (११)

चौथे महीने में मस्तक और कलेजे की अपेक्षा दूसरे अवयव अधिक बढ़ते हैं, रग पट्ठे बराबर नज़र आने लगते हैं। इस महीने में बच्चा कुछ हिलना भी शुरू करता है। साढ़े चार महीने के क़रीब, लम्बाई प्रायः ५ से ६ इञ्च तक बढ़ जाती है।

चौथा महीना।
चित्र नं० (१२)

पांचवें महीने में रग पट्ठे जैसे बनने चाहियें वैसे बन जाते हैं। बच्चे का हिलना बराबर जारी रहता है। इस समय तक शरीर की अपेक्षा सिर ही बड़ा होता है और उस पर कोमल रूपहरी बाल निकल आते हैं। लम्बाई ७ से ८ इञ्च और वज़न ६ से ८ औंस तक बढ़ जाता है।

पांचवां महीना।

छठें महीने में त्वचा (चमड़ी) के दोनों परत (ऊपर की खाल और अन्दर की भिल्ली) नज़र आने लगते हैं, किन्तु बहुत नाज़ुक, सलवट पड़ी हुई, और रक्तवर्ण होती है। नख निकल आते हैं। लम्बाई १० से १२ इञ्च और वज़न प्रायः २ पौण्ड (१ सेर) हो जाता है। यदि इस समय बच्चा पैदा हो जाय—तो वह कुछ देर श्वास ले सकता है, किन्तु ज़िन्दा (जीवित) नहीं रह सकता।

छठा महीना।

सातवें महीने में, बच्चे के सब शारीरिक भाग बन चुकते हैं। इस समय बच्चे का सिर नीचे और पैर ऊपर हो जाते हैं। आंखकी पलकें खुलने लगती हैं। चरबी बढ़ जाने के कारण सब

सातवां महीना।

अवयव ठीक प्रकार बनने लगते हैं। लम्बाई लगभग १४ इञ्च और वज़न २ पौण्ड हो जाता है। और बच्चा बाहर निकलने के रास्ते पर आ जाता है।

आठवें महीने में बच्चा लम्बाई तथा मोटाई में यकसां बढ़ता है। और

आठवां महीना।
चित्र नं० (१३)

इस महीने में स्वयम् ज़िन्दगी गुज़ार सकता है। नख, पसली, हाथ, पैर और शरीर के सारे अवयव पूर्ण रूप से बन चुकते हैं। लम्बाई १६ इञ्च और वज़न ४ पौण्ड (२ सेर) से ज़ियादा हो जाता है।

नवें महीने में साधारण तौर पर लम्बाई में १८ से २० इञ्च तक और वज़न

नवां महीना।

में ६ से ८ पौण्ड तक बढ़ जाता है, और सब प्रकार परिपूर्ण हो कर बच्चे का जन्मसमय निकट आ जाता है।

बच्चे के इस क्रमविकास की प्रत्येक बात विद्वानों की जांची हुई है। विद्वानों ने इस क्रमविकास की प्रत्येक बात को सैकड़ों बार तजरबा करके—प्रयोग कर के—पूर्ण रूप से जांच लेने पर ही सर्वसाधारण के सामने रक्खा है—अतएव इस में शंका करने की आवश्यकता नहीं। डाक्टरों ने बच्चों को पैदा होते ही नापा और तौला है कि जिस में बच्चे की लम्बाई २४ इञ्च और वज़न १४ पौण्ड (७ सेर) तक पाया गया है। इस से साबित होता है कि यदि बच्चे की माता का स्वास्थ्य अच्छा हो, बच्चे की शारीरिक रचना होते समय, उस को उत्तम बनाने के लिये अच्छे प्रकार ध्यान दिया जाय और बच्चे को अच्छे प्रकार पोषण मिले तो बच्चा बहुत नीरोग और हट्टा कट्टा पैदा हो सकता है।

उत्तम सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण पाठकों को, यह क्रमविकास अच्छे प्रकार ध्यान में रखना चाहिये; क्योंकि आगे चल कर जहां यह बतलाया जावेगा कि—बच्चे के किस २ अंग को इच्छानुसार बनाने के लिये किस २ समय क्या २ कार्य्य करना चाहिये, कि जिस से सन्तान का इच्छानुसार शारीरिक संगठन किया जा सके; इस क्रमविकास के ध्यान में रखने से बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

पाठक ! मेरे चित्त में इस जगह तीन चार सवाल और उठते हैं।

भी ये सवाल इतने आवश्यकीय नहीं हैं और न इन का

कुछ फुटकर बातें।

इस विषय से इतना सम्बन्ध भी नहीं है कि पाठकों को इन्हें जान ही लेना चाहिये; तथापि पाठकों के मनोरञ्जनार्थ हम इन का यहां उल्लेख करते हैं। और यह भी बहुत सम्भव है कि इन में से कोई बात किसी ग्रंथ में हमारे विषय में उपयोगी भी निकल आवे। ये सवाल इस प्रकार हैं :—(१) सातवें महीने में बच्चे का सिर नीचे और पैर ऊपर क्यों हो जाते हैं ?; (२) बच्चा गर्भ में रोता क्यों नहीं ? (३) गर्भवास के दिनों में बच्चा मल मूत्रादि क्यों नहीं करता ? (४) और गर्भस्थ बच्चा श्वास कैसे लेता है ? कृपया इसी क्रम से इन के उत्तर भी देख लीजिये।

(१) सातवें महीने में सिर नीचे और पैर ऊपर क्यों हो जाते हैं ?

पहिले छः महीने तक बच्चे के सारे शारीरिक अवयवों की रचना होती है; और पिछले तीन महीने में, मस्तक में जो जुदी २ शक्तियां हैं उन का विकास और पुष्टि होती है। यह प्रायः मानी हुई बात है कि एक वस्तु की पुष्टि होने पर उस का वजन (बोझ) बढ़ जाता है और भारी चीज़ हमेशा नीचे की ओर खिंचती है। इसी लिये बच्चे का सिर नीचे की ओर आ जाता है।

ईश्वरीय लीला वैचित्र्य के नियमानुसार न जानें इस में क्या २ भेद हैं, किन्तु उपर्युक्त बात बुद्धिग्राह्य मालूम पड़ती है; अतएव मान लेना चाहिये कि और २ कारणों में यह भी एक कारण अवश्य है। इस के अतिरिक्त मेरे विचारानुसार दो एक बातें और भी हो सकती हैं :—(१) प्रकृति का प्रत्येक कार्य्य, प्रकृति की अनुकूलता को लिये हुए होता है। सातवें महीने से प्रकृति अपने नियमानुसार, बच्चे के मस्तक में जो शक्तियां और उन शक्तियों के जो स्थान हैं उन को पुष्ट करना चाहती है और प्राकृतिक नियमानुसार उसे इस कार्य्य में सुगमता होनी चाहिये; अतएव बहुत सम्भव है कि बच्चे का सिर नीचे हो जाता हो। क्योंकि सिर नीचे हो जाने से, जो शक्तियां उस में पुष्ट होनेवाली हैं उन्हें अपनी पुष्टि के लिये अधिक पोषण मिलने पर, उसमें प्रकार के विकसित होने में सुगमता रहे।

किन्तु शंका होती है कि सिर नीचे होने से अधिक पोषण मिलने का कारण क्या? उत्तर में इतना कह देना काफ़ी होगा कि बच्चे का पोषण नाल से होता है कि जो उस की नाभी में लगा होता है; इसी के द्वारा माता के शरीर से रस, बच्चे के शरीर में पहुंच कर बच्चे का पोषण करता है (जैसा कि आगे इसी प्रकरण में स्पष्टतापूर्वक बतलाया जावेगा)। अब ख़याल कीजिये कि बच्चे का सिर ऊपर और पैर नीचे हैं. ऐसी हालत में, गो, पोषणतत्त्व बच्चे के सिर तक पहुंचता है तथापि एक चीज़ के नीचे उतरने की अपेक्षा, ऊपर चढ़ने में कुछ तो त्रुटि आती ही है। अतएव बच्चे का सिर नीचे हो जाने से उस के पोषण में अवश्य ही अधिक सुगमता हो जाती है और इसी लिये ऊपर ऐसा कहा गया। (२) यह कि सिर नीचे की ओर आजाने से प्रसव होते समय पहिले सिर ही बाहर निकलता है—और प्रसव होने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती, किन्तु इस से विपरीत होने पर प्रायः बच्चा फस जाता है और प्रसव होने में कठिनाई होती है—बल्कि कभी २ तो यहां तक होता है कि बच्चे को काट कर निकालना पड़ता है।

(२) गर्भ में बच्चा रोता क्यों नहीं?

विद्वानों के मतानुसार इस का कारण यह है कि गर्भ में बच्चे का मुंह जरायु (झिल्ली) से ढका हुआ होता है; और कण्ठ के कफाच्छादित होने (कफ़ से घिरे रहने) के कारण वायु के अधिक आने जाने का मार्ग रुका हुआ होता है, अतएव गर्भस्थ बच्चा नहीं रो सकता।

(३) मलमूत्र न करने का क्या कारण?

इस का कारण यह है कि बच्चे का पोषण नाल द्वारा माता के रुधिर से होता है। माता जो कुछ भोजन करती है उस का रस बनने पर, उस में जो कुछ मल होता है वह तो पहिले ही निकल जाता है; और उस शुद्ध रस से रक्त बन कर उस रक्त द्वारा बच्चे का पोषण होता है—अतएव, बच्चे के मल उत्पन्न ही नहीं होता, इस के अतिरिक्त पक्वाशय की वायु का योग (अति योग) न होने से गर्भस्थ बच्चा अधोवायु भी नहीं करता।

गर्भवती स्त्री जिन २ कार्यों को करती है, गर्भस्थ बच्चे के वे २ कार्य्य स्वतः ही हो जाते हैं। जैसे गर्भवती स्त्री के सोने पर गर्भस्थ बच्चा स्वतः निद्रित, और जागने पर स्वतः जाग्रत हो जाता है। इसी प्रकार माता के श्वास में

गर्भस्थ बच्चा श्वास कैसे लेता है ?

लिये हुए वायु से बच्चा श्वास लेता है और माता के श्वास निकालने पर बच्चा भी पीछा श्वास छोड़ देता है। इसी प्रकार शरीरोपयोगी जो २ व्यवहार माता करती है बच्चा भी स्वतः उन्हीं को करता है। प्रिय पाठक ! इस बात को अच्छे प्रकार ध्यान में रखिये कि माता के कार्य्यों का सन्तान पर ठीक वैसा का वैसा प्रभाव होता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि बच्चे का बीज १/.. इञ्च जितना छोटा होता है और इसी की वृद्धि होकर बच्चे के अंगप्रत्यंग और शरीर बनता है और गर्भ में बच्चा बढ़ता है।

बच्चे का पोषण।

जब बढ़ता है तो उसे पोषण भी अवश्य मिलना चाहिये; क्योंकि बिना पोषण मिले कोई चीज बढ़ती नहीं; और बढ़ने के लिये पोषण मिलना बहुत ज़रूरी है, अतएव साबित हुआ कि बच्चे को भी गर्भ में पोषण मिलता है। वह पोषण किस से, किस के द्वारा और किस प्रकार मिलता है ?

इस बात को हर कोई कह सकता है कि बच्चे को माता के शरीर से पोषण मिलता है। बच्चा माता के रुधिर से पोषण पाता है। वह पोषण बच्चे को दो अवयवों द्वारा मिलता है। एक "ओर" (औल = Placenta) और दूसरा एक रस्सी के समान अवयव कि जिसे "नालू" (Umbilical Cord) कहते हैं। "ओर" एक नरम, स्पञ्ज के समान गोलाकार अवयव है, कि जो, छः इञ्च लम्बा, मध्य में १॥ इञ्च मोटा और वज़न में १॥ पौण्ड (तीन पाव के क़रीब) होता है। इसी के द्वारा बच्चा माता के शरीर से पोषण प्राप्त करता है। इस का एक सिरा गर्भाशय से मिला रहता है और दूसरा सिरा बच्चे की तरफ़ रहता है। इसी से "नालू" उत्पन्न होकर बच्चे की नाभी में आता है। और जिस प्रकार वृक्षों से मूल (जड़) द्वारा पोषण-

तना (वृक्ष) सारे वृक्ष में पहुंचता है उसी प्रकार " ओर " जो मूल (जड़) के समान है, माता के शरीर से पोषणतत्त्व खींच लेता है; और यही पोषणतत्त्व " नालू " द्वारा बच्चे की नाभी में होकर, बच्चे के सारे शरीर में पहुंचता है और बच्चे का पोषण करता है।

किन्तु गर्भाधान होने के प्राय: दो मास बाद नालू बनता है; अब जब तक गर्भ के अंग प्रत्यंग नहीं बनते और " नालू " भी गर्भ रहने के दो मास बाद बनता है तो नालू द्वारा भी दो मास बाद ही पोषण हो सकता है; अतएव नालू उत्पन्न होने तक, बच्चे का पोषण किस प्रकार होता है? इस के विषय में विद्वानों का कथन है कि—गर्भ रहने से नालू बनने तक माता के शरीर को रस बहनेवाली, और सारे शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली " धमनी " नामक नाड़ियों के, सार रूप द्रव पदार्थ से बच्चे का पोषण होता है।

ऊपर कहा तदनुसार, गर्भ रहने के दो मास बाद " नालू " बनता है। " नालू " दो रक्तवाहिनी और एक साधारण नाड़ी का बना हुआ होता है। " नालू " की लम्बाई प्राय: बच्चे की लम्बाई के बराबर होती है। माता के शरीर से रुधिर, बच्चे का पोषण करने के लिये, " ओर " में हो कर " नालू " की साधारण नाड़ी द्वारा, बच्चे के शरीर में पहुंचता है और बच्चे के शरीर का दूषित रक्त (ख़राब ख़ून) रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा होकर " ओर " में चला जाता है। जिस प्रकार मनुष्यशरीर में, दूषित रक्त को शुद्ध करने का, श्वासोच्छ्वास करने का और अन्न से जो रक्त बनता है, उस का रुधिर बना कर सारे शरीर में पहुचाने का कार्य्य फेफड़ा करता है; उसी प्रकार माता के शरीर से पोषणतत्त्व खींच कर बच्चे का पोषण करना, दूषित रक्त को शुद्ध करना, आदि कार्य्य यही " ओर " नामक अवयव करता है। किन्तु ऐसा नहीं है कि * " नालू " और " ओर " के बन जाने पर और उन के द्वारा बच्चे का पोषण शुरू हो जाने पर बच्चे को " धमनी " नामक नाड़ियों से सार रूप द्रव पदार्थ मिलना

---

* पण्डित महादेव " झा "।

बन्द हो जाता हो; "नालु" और "ओर" द्वारा बच्चे का पोषण होने के अतिरिक्त इन से (इन धमनी नामक नाड़ियों से) भी पोषकतत्व बच्चे को बराबर मिलता रहता है *।"

उपर्युक्त वर्णन से पाठकों को पूरे तौर पर विदित हो गया होगा कि गर्भस्थ बच्चे का माता के शरीर और प्रत्येक कार्य्य के साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है; माता और बच्चे का रुधिर इस प्रकार मिला हुआ है कि उसे अलग २ न मान कर एक ही मानना पड़ता है। ऐसी अवस्था में यदि माता का स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ है या माता के रक्त में कुछ विकार है—दूषण है—तो वह बच्चे को भी अवश्यमेव, रोगी, और जिन २ कारणों से माता का रक्त दूषित है; दूषित बना देगा। माता के निरोग होने—रक्त के किसी प्रकार दूषित न होने—से, बच्चा भी सब प्रकार निरोग और निर्दोष उत्पन्न होगा। वंशपरम्परागत बीमारियों के बच्चे में आने का कारण यही रक्तसम्बन्ध है। किन्तु पाठक! इस विषय का भी यथासमय सविस्तर उल्लेख हो जायगा। अतएव जिस प्रकार बच्चे के वृद्धिक्रम को ध्यान में रखना आवश्यकीय है, उसी प्रकार बच्चे के इस पोषणक्रम को भी ध्यान में रखना—स्मरण रखना—आवश्यकीय है।

---

* वे कहते हैं कि यह बात मेरे खुद के अनुभव से प्रमाणित हुई है। वह इस प्रकार कि मेरी पहिली सन्तान के नष्ट हो जाने और दुर्बल उत्पन्न होने के कारण मैं ने अपनी स्त्री को "वंशलोचन" और दूध का सेवन कराना शुरू किया, परिणाम में सन्तान हृष्टपुष्ट और बलिष्ट उत्पन्न हुई; किन्तु दूसरी सन्तान के समय—पहिली सन्तान के हृष्टपुष्ट होने के कारण प्रसवपीड़ा अधिक होने से—दूध का सेवन बन्द किया गया और केवल "वंशलोचन" का सेवन जारी रक्खा। सन्तानोत्पत्ति समय—प्रसव समय—"वंशलोचन" उस के शरीर पर (कुछ रूपान्तर हो कर) बराबर जमा हुआ पाया गया। इन्हीं पण्डित जी महोदय का अभिप्राय—स्वयम् सिद्ध अभिप्राय है कि जिस की सन्तान नष्ट हो जाती हो उस स्त्री को रजोदर्शन के समय से प्रसव पर्य्यन्त "वंशलोचन" का सेवन करना चाहिये।

(वंशलोचनसेवन करने की रीति इसी पुस्तक में अन्यत्र मिलेगी।)

गर्भ में विक्षेप होने से गर्भवती को हानि होने का कारण।

जिस प्रकार माता के स्वास्थ्यादि का गर्भ पर प्रभाव होता (और गर्भ और माता का घनिष्ठ सम्बन्ध) है, दैववश (संयोग वश) उसी प्रकार गर्भ में किसी प्रकार का विक्षेप होने से माता पर भी उस का अखंड प्रभाव होता है और कभी हानि पहुंचती है; अतएव गर्भ को पूरे तौर पर संभाल रखने में माता (गर्भवती) और सन्तान (गर्भ) दोनों का लाभ है।

प्रकरण पांचवाँ।

"पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करना मनुष्याधीन है—
ईश्वराधीन नहीं।"

बहुत प्राचीन काल से इस रहस्य के जानने की चेष्टा की जा रही है कि—"उत्पत्तिक्रिया एक ही प्रकार से किये जाने पर भी—कभी पुत्र और कभी पुत्री उत्पन्न होती है इस का क्या कारण? थोड़ा विचार करने से इस प्रश्न की यथार्थता अवश्य स्वीकार करनी पड़ती है। क्योंकि जिस प्रकार जो क्रिया पुत्रोत्पत्ति के समय की जाती है, ठीक उसी प्रकार, वही क्रिया पुत्री की उत्पत्ति के समय भी की जाती है। क्रियाएं दोनों समान हैं—क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं, किन्तु फिर भी—कभी पुत्र और कभी पुत्री उत्पन्न होती है; अतएव इस उत्पत्तिभेद का कोई कारण अवश्य होना चाहिये। क्योंकि बिना कोई कारण हुए, एक ही रीति से क्रिया किये जाने पर—ऐसा परिवर्तन नहीं हो सकता। इसी लिये मानना पड़ता है कि इस में कोई ईश्वरीय गुप्त भेद अवश्य है कि जो अब तक हमारी समझ में न आ सका।

ऐसा निश्चित रूप से मालूम हो जाने पर इस विषय का कारण जानने की ओर विद्वानों का ध्यान गए बिना न रहा। उन्हों ने इस रहस्य को जान लेने के लिये प्रयत्न करना आरम्भ किया कि जिस का अग्रेसरत्व आर्य्य जाति ही के हिस्से में आया और उस के मालूम कर लेने का गौरव भी यही जाति प्राप्त कर चुकी। इस विषय में जो २ आविष्कार आर्य्य जाति ने किये हैं, आज कल के सारे आविष्कार उसी के अन्तर्गत साबित होते हैं।

आज सभ्य और प्रत्येक बात में सब जातियों की मुकुटमणि बनने का दावा करनेवाली जातियां कि जो खण्डों में घर बना कर रहते २ और

मिट्टी कीचड़ी आदि से अपने शरीर को चित्रित कर आनन्द मनाते २ प्राकृत नियमों की अनन्य भक्त बन जाने के कारण अमृत बनने का चमत्कार और गौरव करने लगी हैं * जिस समय पाशवी अवस्था में थीं; उस समय से भी बहुत काल पहिले—हज़ारों वर्ष पहिले—जिस जाति के विद्वानों का ध्यान इस ओर गया पहिले उसी जाति के—उसी आर्य्य जाति के—विद्वानों का अभिप्राय देखना चाहिये कि पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करने के विषय में उन का क्या अभिप्राय है ?

(१) भारतवर्षीय विद्वानों और आचार्य्यों के सिद्धान्त।

(१) † गर्भाधान के समय यदि पिता का वीर्य्य अधिक बलवान है तो पुत्र और माता का वीर्य्य अधिक बलवान है तो पुत्री उत्पन्न होती है। (गर्भाधान के समय जिस की मनःशक्ति अधिक बलवान होती है उसी का वीर्य्य भी अधिक बलवान होता है।)

(२) ‡ स्त्री के मासिक धर्म होने के समय से १६ रात्रि पर्य्यन्त गर्भाधान हो सकता है। इन रात्रियों में से सम रात्रियों (सम ४,६,८,१०,१२, १४, १६) में गर्भाधान होने से पुत्र और विषम (५, ७, ९, ११, १३, १५,) रात्रियों में गर्भाधान होने से कन्या उत्पन्न होती है।

(३) + स्त्री तथा पुरुष के दाहिने अंग से पुत्र और बाएं अंग से पुत्री उत्पन्न होती है।

---

* पाठक ! देखी, आप ने प्राकृतिक नियमों को जानने, उन का आदर करने—उन का पालन करने—की महिमा ! किन्तु कैसी विचित्रता ! प्रियआर्य्य जाति ! तेरा वह गौरव कहां नष्ट हो गया ? हा ! प्राकृतिक नियमों का निरादर करने से, तेरा सर्वस्व—बलात्कार पूर्वक—छीन लिया गया और तत्काल के दासत्व ने तेरी यह दीन, हीन, मलीन और कंगाल दशा बना दी, तब भी तुझे इस अवस्था से ऊब न आई—क्या रहा सहा जो कुछ है वह भी नष्ट कर देने की अभिलाषा है ?

† शुक्ल यजुर्वेद, गर्भोपनिषद्।

‡ सुश्रुत।

+ वाग्भट्ट।

(४) * नाक द्वारा श्वासोच्छ्वास क्रिया होती है, किन्तु श्वास कभी दाहिने नाक से और कभी बाएं नाक से चलता है। दाहिने नाक से यदि श्वास चलता हो और गर्भाधान किया जाय, तो पुत्र ; और बाएं स्वर के चलते रहने की हालत में यदि गर्भाधान किया जाय, तो कन्या का जन्म होता है। सम स्वर में या तो गर्भाधान ही नहीं होता और यदि हो भी गया तो नपुंसक उत्पन्न होता है।

(५) † पुरुषवीर्य्य का अधिक भाग होने से पुत्र और स्त्रीवीर्य्य का अधिक भाग होने से कन्या उत्पन्न होती है। सम होने से—बराबर होने से—नपुंसक।

(६) ‡ स्त्रीयोनि में (१) समीरणा, (२) चान्द्रमसी और (३) गौरी नामक तीन प्रकार की नाड़ियां होती हैं। पहिली में वीर्य्य गिरने से वृथा जाता है, दूसरी में गिरने से कन्या और तीसरी में गिरने से पुत्र उत्पन्न होता है। दूसरी नाड़ी का मुख थोड़े रतिसेवन से खुलता है और तीसरी का, स्त्री को अधिक कामोत्तेजना होने पर।

(७) + वटशुंग और सुलक्षणा, को नखून से छीलकर और उस में से निकले हुए दूध को—अथवा उसी दूध को प्रथम व्याही बछड़ेवाली गौ के दूध में मिला कर गर्भाधान के निमित्त पति के समीप जाने से पहिले तीन चार बूंद नाक में डालकर श्वास द्वारा ऊपर को चढ़ाना चाहिये। दाहिने

---

* स्वरोदय।

† भावमिश्र। इसी सिद्धान्त को दूसरे विद्वानों ने बलवान और निर्बल के रूप में लिया है और यही विशेष रूप से मान्य भी हो सकता है। सम्भव है कि सिद्धान्तकार का यही आशय हो और छपने आदि में या किसी और कारण से ग़लती हुई हो।

‡ भाव मिश्र।

+ वाग्भट्ट।

नाक में चढ़ाने पर पुत्र और बाएं नाक में चढ़ाने पर पुत्री उत्पन्न होती है। *

(२) यूनानी विद्वानों के सिद्धान्त।

(१) † वीर्य्य के प्रबल होने से पुत्र और रज के प्रबल होने से कन्या उत्पन्न होती है।

(२) ‡ पुत्र अथवा पुत्री की उत्पत्ति दाहिने तथा बाएं अवयव (अण्डकोष) पर निर्भर है। दाहिना अवयव (अण्डकोष) पुत्र और बायां पुत्री उत्पन्न करता है।

(३) यूरोपियन विद्वानों के अभिप्राय।

(१) + पुत्र अथवा पुत्री का उत्पन्न होना स्त्रीवीर्य्य की परिपक्वता पर आधार रखता है। मासिक धर्म होने पर स्त्री-वीर्य्य उत्पन्न होता है; कुछ दिन बाद वह बलवान बनता है—परिपक्व होता है—यदि मासिक धर्म होने के सात आठ दिन बाद गर्भाधान किया जाय तो पुत्र; और मासिक धर्म से शुद्ध होने पर, उसी दिन, या दूसरे, तीसरे दिन ही संयोग किया जाय—गर्भाधान किया जाय—तो कन्या उत्पन्न होती है।

(२) × मासिक धर्म होने पर स्त्रीवीर्य्य उत्पन्न होता है। मासिक धर्म से शुद्ध होने पर उसी दिन अथवा दूसरे, तीसरे दिन संयोग किया जाय, तो कन्या उत्पन्न होती है; क्योंकि उस समय स्त्रीवीर्य्य बहुत बलवान होता है और पोषणतत्त्व भी उस में बहुत होता है। ज्यों २ मासिक धर्म

---

* इन के अतिरिक्त और भी अनेकों उपाय हैं, किन्तु उन का औषधि आदि से सम्बन्ध होने के कारण हम उन का यहां उल्लेख करना नहीं चाहते। क्योंकि इस पुस्तक में वे ही बातें ली गई हैं कि जिन का क्रिया मात्र से सम्बन्ध है और प्रत्येक मनुष्य सुगमतापूर्वक कर सकता है।

† हिप्पोक्रेटिस।

‡ एरिस्टोटल, एनेक्टेगोरास।

+ मान्सप्यूरी।

× मेयर।

को दिन व्यतीत होते जाते हैं त्यों २ स्त्रीवीर्य्य निर्बल होता जाता है; और मासिक धर्म से दसवें दिन प्रायः निर्बल हो जाता है। यदि इस समय स्त्री संयोग किया जाय तो स्त्रीवीर्य्य के निर्बल और पुरुषवीर्य्य के बलवान होने से पुत्र उत्पन्न होता है।

(३) कितने ही विद्वानों का अभिप्राय है कि मासिक धर्म से शुद्ध होते ही स्त्री की संयोगइच्छा बहुत प्रबल होती है; इस समय गर्भाधान करने पर, स्त्रीइच्छा प्रबल होने से कन्या उत्पन्न होती है किन्तु ज्यों २ मासिक धर्म को दिन गुज़रते जाते हैं त्यों २ उस की संयोगइच्छा कम होती जाती है और आठ दस दिन में प्रायः निर्बल हो जाती है। यदि इस समय गर्भाधान किया जाय तो पुरुषइच्छा प्रबल और स्त्रीइच्छा निर्बल होने से पुत्र उत्पन्न होता है।

(४) * प्रत्येक जाति अपनी जाति की वृद्धि करती है। यदि पुरुष की आयु जियादा है तो वह प्राकृतिक नियमानुसार अपनी जाति की रक्षा करने के लिये पुत्र उत्पन्न करेगा, अतएव पुत्र की कामना रखनेवाले को कम उमर की स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना चाहिये।

(५) † (१) स्त्रीवीर्य्य पूरा परिपक्व होने से पुत्र उत्पन्न करता है और पुत्र की अपेक्षा पुत्री के अवयव निर्बल (कोमल) होते हैं अतएव अपरिपक्व वीर्य्य पुत्री उत्पन्न करता है। (२) प्रत्येक जाति अपने प्रतिकूल जाति उत्पन्न करती है, इस नियम (Cross Heredity) के अनुसार स्त्री पुत्र और पुरुष कन्या को उत्पन्न करता है।

(६) ‡ (१) स्त्री तथा पुरुष दोनों में दोनों जाति को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। (२) + पुरुष के दाहिने अण्डकोष में पुत्र, बाएं में

---

* चार्ल्स डार्विन।

† सेरड।

‡ डाक्टर पी० एच० "सिक्स्यु" एम० डी।

" +१७६० में " "प्रिन्स ऑफ़ विल्सन के एक मुसाहिब की मृत्यु हुई।" "इस ने एक स्त्री के साथ कि जिस के दो कन्याएं थीं विवाह किया था;" "विवाह होने के बाद इस के पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हुए। विवाह करने से"

" पुत्री का वीर्य होता है। (३) * इसी प्रकार स्त्री के दाहिने अण्डकोष में पुत्र और बाएं में पुत्री का वीर्य्य होता है। (४) पुरुष के दाहिने अण्ड-कोष से निकला हुआ वीर्य्य, स्त्री के दाहिने अण्डकोष से निकले हुए वीर्य्य के साथ मिश्रित होता है और बाएं का बाएं के साथ। (५) दाहिने " का बाएं के साथ और बाएं का दाहिने के साथ कदापि मिश्रित नहीं होता †।

" पहिले, गिर जाने के कारण इस के अण्डकोष मे चोट लगी थी और "
" डाकृर " रूलमेन " के ज़ेर इलाज रहा था। डाकृर को यह बात स्मरण "
" थी, और उसे विश्वास था कि उस का अण्डकोष बिगड़ जाना चाहिये। "
" इसी आधार पर " रूलमेन " की सम्मति से, मृत्यु होने पर डाकृर "थीलो"
" ने उस के अण्डकोष को चीर कर परीक्षा की तो मालूम हुआ कि वास्तव "
" में उस का वह (बायां) अण्डकोष सर्वथा बेकार हो गया था इसी लिये "
" उस के पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हुए और कनया नाम को भी न हुई ." (डाकृर "
" सिक्स्ट)।

* डाकृर " वेलहिंग " कहता है कि :—" मैंने एक स्त्री को देखा कि "
" जिस के ६ पुत्र हुए और कन्या नाम मात्र को भी नहीं हुई। अन्तिम "
" सन्तानोत्पत्ति के समय इस की मृत्यु हुई। मुझे इस का गर्भाशय देखने "
" की उत्कट जिज्ञासा हुई। देखने पर मालूम हुआ कि इस का दाहिना "
" अण्डकोष बिलकुल अच्छी हालत में था, किन्तु बायां अण्डकोष निर्जीव "
" और सूखे चमड़े के समान हो गया था। इस से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि "
" जब कन्या के बीज को उत्पन्न करनेवाला अवयव ही निर्जीव था तो "
" कन्या उत्पन्न होती कहां से। पुत्र उत्पन्न करनेवाले अवयव के सम्पूर्ण और "
" निरोग होने से केवल पुत्र ही पुत्र उत्पन्न हुए।" पाठक ! ये, डाकृर सिक्स्ट जिस समय इस विषय की खोज में लगे हुए थे, उस समय, उन के मित्रों की आई हुई चिट्ठियों के आधार पर दिये हुए उदाहरण हैं। अब देखिये कि खुद डाकृर "सिक्स्ट" इस विषय में क्या कहते हैं।)

† वे अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि :—"स्त्री
" तथा पुरुष के दो २ अण्डकोष होते हैं ; यदि दोनों में एक ही प्रकार "
" का पदार्थ होता है तो इन के दो २ होने का कारण क्या ? जब "

किन्तु पाठक! "उपर्युक्त सिद्धान्तों में कौन सिद्धान्त, युक्तियुक्त, बुद्धिग्राह्य और मान्य हो सकता है और किस सिद्धान्त के अनुसार नारी चाहने से अपनी इच्छानुसार पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न की जा सकती है"

"दोनों में एक ही प्रकार का पदार्थ है तो एक ही से काम चल सकता था।"
"दो २ अवयव अलहदा २ बनाने की आवश्यकता क्या थी? क्या! इस"
"को प्रकृति (Nature) की भूल नहीं समझना चाहिये कि उस ने निर-"
"र्थक दो जुदे २ अवयव उत्पन्न किये? किन्तु प्रकृति का कोई काम निरर्थक"
"नहीं होता; उस में कोई न कोई रहस्य अवश्य होता है। अतएव इन के दो २"
"होने में भी कोई रहस्य अवश्य होना चाहिये और है। मेरे ख़याल में—"
"मेरे विचार में—इन दोनों में जुदा २ पदार्थ होना चाहिये—इन में जुदी २"
"शक्ति होनी चाहिये। किन्तु ऐसी महत्व की बात को मान लेने के लिये"
"केवल तर्क और दलीलों से साबित होने पर ही आधार नहीं रखना"
"चाहियें; और केवल तर्क और दलीलों के आधार पर ही यह सिद्धान्त"
"सर्वमान्य भी नहीं हो सकता। और जब तक कोई प्रयोग इत्यादि कर के"
"इस को पूर्णतया प्रमाणित नहीं कर दिया जाय, तब तक, यह सिद्धान्त"
"सर्वथा अपूर्ण है।"

"मैं इसी विचार में था कि कोई प्रयोग कर के इस का पूर्ण रूप से"
"प्रतिपादन करूं कि मैंने सन् १७८२ में, २ ख़स्सी किये हुए "सूअर" शूकर"
"के बच्चे—इस अभिप्राय से कि इन को खूब मोटा ताज़ा कर के आगामी"
"शीत ऋतु में खाने के काम में लिया जाय—ख़रीदे। उन के बड़े होने"
"पर एक दिन मैं ने देखा कि उन में से एक पूरा ख़स्सी नहीं है, ग़लती से—"
भूल से—उस का बायां अवयव (अण्डकोष) काटने से रह गया है।"
"मुझे यह देख कर क्रोध होने की अपेक्षा—अपने प्रयोग करने के इरादे का"
स्मरण आया और उस के करने में स्वतः सुविधा मिलने के कारण—"
"हर्ष हुआ।"

"मैं ने उसी जाति की मादीन ख़रीदी और उस दायें अण्डकोष कटे"
"हुए पशु को, उस मादीन के साथ रक्खा। दिसम्बर मास में उस से ८ बच्चे"
"हुए कि जो सब की सब मादीनें थीं। इस पर ही सन्तोष न कर, मैं ने"
"इन से और बच्चे लेने चाहे। पूरी अहतयात (संभाल) और निगरानी"

इस की विचार करने से पहिले; इन बातों का कि "(१) बच्चे की जाति किस से उत्पन्न होती है, माता से या पिता से ? (२) और बच्चे की जाति गर्भ रहते समय, या गर्भ में तीसरे महीने जब कि स्त्री पुरुष में भेद बतलाने वाले अवयव की रचना होती है उत्पन्न होती है।" जान लेना ज़रूरी है; क्योंकि उपर्युक्त सिद्धान्तों से ही ये प्रश्न उठते हैं और सबब

"रक्खी और उक्त मादीन को दूसरे पशुओं के संसर्ग से बचाया। जुलाई"
"मास में इस जोड़े से फिर ११ बच्चे हुए, किन्तु ये भी सारे के सारे नारी"
"जाति के थे।"

"अब मुझे अपने सिद्धान्त के सत्य होने के विषय में पूर्ण रूप से"
"विश्वास हो गया। इस सफलता से मेरी हिम्मत और बढ़ी; मैं ने इन"
"प्रयोगों को बन्द न कर, बराबर जारी रक्खा और अपने (डाक्टर) मित्रों"
"को भी इस के सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये इसी प्रकार से प्रयोग"
"करने का अनुरोध किया। इस से मेरा यह भी अभिप्राय था कि इस प्रयोग"
"को कोई दूसरा भी कर के देख ले तो लोगों को अविश्वास करने को स्थान"
"न रहे। मेरे अनुरोध से मेरे मित्रों ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये और"
"सत्य पाये।"

"अब मैं ने इन को छोड़ दूसरे पशुओं को लिया; और कुत्तों पर प्रयोग"
"करना आरम्भ किया। दो कुत्तों का दाहिना अण्डकोष २ सितम्बर"
"सन् १७८६ को काटा गया और इन दोनों कुत्तों और दो कुत्तियों को एक"
"कमरे में बन्द किया, इन को, खाने को, मैं स्वयम् अपने हाथ से देता, अपने"
"अतिरिक्त किसी दूसरे को उस कमरे में आने न देता और कहीं जाने की"
"हालत में ताला बन्द कर कुञ्जी अपने पास रखता। ८ जनवरी सन् १७८७"
"को एक कुतिया के ८ बच्चे हुए कि जो सब मादीनें थीं।"

"इस के साथ ही साथ मैं ने ख़रगोशों पर भी प्रयोग करना शुरू"
"किया। तीन ख़रगोशों के दाहिने अवयव को काट कर उन को तीन"
"मादीनों के साथ एक मकान में रक्खा। प्रत्येक जोड़े ने प्रति पांचवें छठे"
"सप्ताह एक २ बच्चा देना शुरू किया; किन्तु बच्चे जितने होते थे सब"
"मादीन। मैं ने अपने मित्र मिस्टर होज़्लर को इस प्रयोग के करने का अनु-"
"रोध किया। उन्हों ने भी इस प्रयोग को कर के इस की परीक्षा की और"

है कि इन के ज्ञान होने से उक्त सिद्धान्तों के निर्णय करने में—स्थिर करने में—कुछ न कुछ सुविधा अवश्य हो।

बच्चे की जाति किस से उत्पन्न होती है ?

इस विषय में उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर तीन बातें स्थिर होती हैं। (१) * दोनों जातियां स्त्री ही उत्पन्न करती है, पुरुष जाति उत्पन्न नहीं करता। (२) † प्रत्येक जाति अपने प्रतिकूल जाति को उत्पन्न करती है; अर्थात् पुरुष कन्या को, और स्त्री पुत्र को जाति प्रदान करती है। (३) ‡ दोनों जाति (स्त्री पुरुष दोनों) में (मिल कर) दोनों जाति को उत्पन्न करने की शक्ति होती

" इस के सत्य होने के विषय में अपनी दृढ़ सम्मति दी—इस से मेरे उत्साह "
" की और वृद्धि हुई। "

" अब मैं ने नर को छोड़ यही प्रयोग नारी जाति पर करना चाहा ; "
" किन्तु नर की अपेक्षा नारी जाति पर प्रयोग करने में कठिनाई बहुत हुई। "
" नर के अवयव बाहर होते हैं, किन्तु नारी जाति के अवयव (गर्भाशय के "
" दोनों ओर) पेट के अन्दर होते हैं; अतएव पहिले पेट चीरना, तत्पश्चात् "
" उक्त अवयव को काटना पड़ा। इस प्रकार चीर फाड़ करते हुए कई "
" प्राणियों की हानि हुई, अन्त में कठिनाई से दो कुतियें जीवित रहीं, उन को "
" पूर्वानुसार अहतयात और सावधानी के साथ रक्खा गया। १७ अगस्त "
" सन् १७८८ के दिन उक्त कुतियों का दाहिना अवयव काटा गया, १६ दिस- "
" म्बर सन् १७८८ को कुत्ते के सम्बन्ध में आई और १८ फरवरी सन् १७८९ "
" को उस के पांच बच्चे हुए कि जो सब नारी जाति के थे। इस प्रकार मैं "
" अपने सिद्धान्त के निश्चित रूप से—पूर्णतया—सिद्ध होने में कृतकार्य "
" हुआ। " (Mystries of Nature by Dr. P. H. Sixt. M. D.)

पाठक ! हम भी आशा करते हैं कि आप को भी इस सिद्धान्त की सत्यता के विषय में पूर्ण रूप से निश्चय हो गया होगा।

* आन्सब्यूरी और सेएड के सिद्धान्तानुसार।

† सेएड के सिद्धान्तानुसार।

‡ " सिक्स्ट " के सिद्धान्तानुसार।

है। किन्तु पाठक ! उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों में पिछला सिद्धान्त—तीसरा सिद्धान्त—ही विशेष रूप से मान्य हो सकता है। देखिये !—

पहिला सिद्धान्त तो सर्वथा भ्रान्तिमूलक मालूम होता है, क्योंकि कुक्षि इसे ग्रहण नहीं करती। जब स्त्री ही दोनों जातियों को उत्पन्न करती है और पुरुष केवल उस की वृत्तियों को उत्तेजित कर वीर्य्य उत्पन्न करा देने ही के निमित्त है तो स्त्री को यदि दूसरे प्रकार उत्तेजित कर वीर्य्य उत्पन्न करा दिया जाय तो क्या वह बच्चे को जातिप्रदान कर सकती है ? यदि स्त्री में यह गुण मान लिया जाय तो डाक्टर सिक्स के सिद्धान्तानुसार पुरुष के भी दो अण्डकोष उत्पन्न—वृथा उत्पन्न—कर देने में प्रकृति की भूल ही समझना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं है—बिना पुरुषसम्सर्ग के ऐसा होना सर्वथा असम्भव है *।

दूसरा सिद्धान्त किसी अंश में मान्य अवश्य हो सकता है और वह उतने अंश में तीसरे सिद्धान्त के अन्तर्गत आ जाता है। (सिद्धान्तों का निर्णय करते हुए इस के विषय में आगे चल कर सविस्तर विवेचन किया जायगा) अब रहा तीसरा सिद्धान्त—सो उस के विषय में यह है और :—

प्रायः देखने में भी यही आता है कि—कभी तो पुत्री में पिता के गुण विशेष पाते हैं; कभी माता के; और कभी दोनों के गुण समान रूप से पाये जाते हैं; इसी प्रकार पुत्र में कभी पिता के, कभी माता के, और कभी दोनों के गुण पाये जाते हैं। अतएव यही निश्चित होता है कि दोनों जातियों में दोनों जाति को उत्पन्न करने की शक्ति होती है। हमारे भारतवर्षीय विद्वानों का भी यही अभिप्राय देखने में आया है कि दोनों जातियां बच्चे को जाति प्रदान करने में समान शक्ति रखती हैं; किन्तु एक दूसरे की सहायता बिना—एक दूसरे से मिले बिना—अपनी शक्ति को काम

---

* क्या ही अच्छा होता कि डाक्टर सिक्स एक ऐसा भी प्रयोग कर लेते कि—दाहिने अवयव कटे हुए नर को बाएं अवयव कटी हुई मादीन के साथ रख कर बच्चे लेने का प्रयत्न कर लेते—कि जो उस समय वे बहुत आसानी के साथ कर सकते थे। और !

में नहीं कर सकतीं, अर्थात् दोनों मिल कर बच्चे की जाति उत्पन्न करती हैं। और यही बात वर्तमान काल में डाक्टर "सिक्स" के प्रयोगों से पूर्ण रूप से सिद्ध होती है कि प्रत्येक जाति में दोनों जाति को उत्पन्न करने की शक्ति होती है और दोनों मिल कर बच्चे की जाति उत्पन्न करती हैं।

बच्चे की जाति किस समय उत्पन्न होती है ?

अब देखना यह है कि बच्चे की जाति किस समय निश्चित होती है, गर्भाधान होने के समय या कि तीसरे महीने में स्त्री पुरुष में भेद बतलाने वाले अवयव की रचना होते समय ? इस विषय में प्रायः सारे विद्वानों का अभिप्राय यही है कि गर्भोत्पत्ति के समय—बच्चे के बीज की उत्पत्ति के साथ—ही बच्चे की जाति निश्चित हो जाती है। उदाहरणार्थ डाक्टर सिक्स के प्रयोगों को ही देखिये कि जिन से साफ़ साबित होता है कि बीज की उत्पत्ति के साथ ही बच्चे की जाति भी उत्पन्न हो जाती है।

अतएव निश्चित हुआ कि बच्चे की जाति उत्पन्न करने की शक्ति स्त्री और पुरुष दोनों में समान है; और, गर्भोत्पत्ति के समय ही बच्चे की जाति निश्चित हो जाती है; बच्चे की शारीरिक रचना होते हुए तीसरे महीने में केवल वे अवयव कि जो स्त्री पुरुष के चिन्हरूप हैं, उत्पन्न होते हैं।

पाठक ! अब इच्छानुसार पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न कर लेने के विषय में विद्वानों के जो अभिप्राय और सिद्धान्त ऊपर दिये जा चुके हैं उन का विचार कीजिये; किन्तु देखिये तो ऊपर जिस क्रम से जो सिद्धान्त दिये गये हैं उस क्रम से उन का निर्णय करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि निर्णय करने के लिये यह क्रम अधिक सुगम और उपयोगी होगा कि जिन सिद्धान्तों में मतभेद अथवा विशेष मतभेद नहीं है उन को पहिले लिया जाय और जिन में—जिन के विषय में—मतभेद है उन को बाद में।

देखिये :—

(१)......पहिला सिद्धान्त अष्टाकोष का लीजिये—दाहिने "अण्ड-

"कोष से निकला हुआ वीर्य पुत्र उत्पन्न करता है और बाएं से निकला"
"हुआ पुत्री। स्त्री और पुरुष दोनों के दाहिने अण्डकोष से निकले"
"हुए पदार्थ में पुत्र को, और बाएं अण्डकोष से निकले हुए पदार्थ"
"में पुत्री को उत्पन्न करने की शक्ति है। पुरुष के दाहिने अण्डकोष"
"से निकला हुआ पदार्थ स्त्री के दाहिने अण्डकोष से निकले हुए"
"पदार्थ के साथ और बाएं से निकला हुआ पदार्थ बाएं के साथ ही"
"सम्मिलित होता—मिलता—है। दाहिने का बाएं के साथ और बाएं"
"का दाहिने के साथ न मिलता है और न मिल ही सकता है।"
ऐसा दलीलों और प्रमाणों द्वारा ऊपर प्रमाणित किया जा चुका है। इस के अतिरिक्त यह सिद्धान्त प्राय: सर्वमान्य है—इस के विषय में मतभेद नहीं है; क्या भारतीय ¦, क्या यूनानी ¦, और क्या यूरोपियन ¦, सब ही इस की यथार्थता के विषय में सहमत हैं; अतएव हमारा पहिला सिद्धान्त सर्वानुमति से—सब की राय से—"पास" (Pass) होता है। किन्तु इस के अमल में लाने के विषय में—इस के अनुसार कार्य करने के विषय में—प्रश्न होता है कि क्या डाक्टर "सिक्स्ट" के प्रयोगों के अनुसार पुत्रोत्पत्ति के लिये बांया अण्डकोष कटवाकर पुत्री की आशा ही को त्याग देना चाहिये? या पुत्री की आकांक्षा में पुत्र प्राप्ति की आशा को सदा के लिये तिलाञ्जलि देने को बद्धकटि हो जाना चाहिये? पाठक! यदि ऐसा ही करना पड़े तब तो मेरी राय में इस विषय में कुछ भी प्रयत्न न कर इस सिद्धान्त ही को अपनी लिस्ट से निकाल देना चाहिये। किन्तु देखिये तो, अधीर न हूजिये—यह केवल तर्क मात्र है—डाक्टर "सिक्स्ट" इस के विषय में भी कहते हैं कि "वीर्य निकलते समय जिस"
"अण्डकोष से वीर्य निकलता है, वह अण्डकोष ऊपर की ओर उठ"
"जाता है; अतएव पुत्र की प्राप्ति के अर्थ (संयोग करने पर) दाहिने"
"अण्डकोष से और पुत्री की प्राप्ति के अर्थ (संयोग करने पर) बाएं"
"अण्डकोष से वीर्य निकलना चाहिये"। इस युक्ति के अनुसार करने के लिये अण्डकोष को ऊपर की ओर उठाने की रीति मालूम होनी

चाहिये; क्योंकि बिना रीति मालूम हुए यह बात कठिन मालूम होती है कि किसी अण्डकोष से—इच्छित अण्डकोष से वीर्य्य निकाला जा सके। इस का समाधान करते हुए "डाक्टर क्लिफ्ट" तो विशेष रीति से सोचा नहीं बतलाते हैं; किन्तु "डाक्टर ब्रौन" इसी पर सन्तोष न कर कहते हैं कि "सम्भव है कि इस प्रकार करने से इच्छित अण्डकोष के स्थान में" "विपरीत अण्डकोष से वीर्य्य निकल जाय? अतएव उत्तम बात तो यह है" "कि जिस अण्डकोष से वीर्य्य निकालना है उस को जान बूझ कर" "ऊपर को उठाया जाय—जब ऊपर को उठा दिया जायगा तो ऊपर को" "उठे होने के कारण उस ही से वीर्य्य निकलेगा।" इस की रीति वे इस प्रकार बतलाते हैं कि "एक पेटी को जो लंगोट की तरह बनी हुई" "हो व्यवहार करना चाहिये। इस पेटी के द्वारा जिस अण्डकोष से" "वीर्य्य निकालना हो उसी को ऊपर की ओर उठा कर उस पेटी से" "दबा लेना चाहिये।" किन्तु दूसरा अण्डकोष बन्धनरहित होने के कारण सम्भव है कि ऊपर उठे और उसी से वीर्य्य निकल इतना परिश्रम सुफ्त जाने का समय आवे? इस अरिष्ट निवृत्ति के लिये उचित तो यह मालूम होता है कि जिस अण्डकोष से वीर्य्य निकालना अभिष्ट है उसे स्वतन्त्र छोड़, जिस से निकालना मंजूर नहीं है, उसी को ऊपर उठने से क्यों न रोका जावे? उसे रोक देने से, उस से वीर्य्य निकलना तो सर्वथा असम्भव हो ही जायगा; अब रहा दूसरा अवयव कि जो स्वतन्त्र होने के कारण यथा समय स्वयम् ऊपर को उठेगा और उसी से वीर्य्य निकल जायगा। इस के रोक लेने की बहुत सुगम रीति यह है कि जिस अण्ड-कोष को ऊपर उठने से रोक लेना अभिष्ट हो उस में एक रबर का छल्ला (Ring) कि जो प्रायः बाज़ार में बहुत मिलते हैं—पहना देना चाहिये, इस प्रकार वह ऊपर उठने में सर्वथा असमर्थ रहेगा और हमारी साधना * पूर्ण रूप से यशस्वी होगी।

---

* पण्डित महादेव "मत" कि जिन्हों ने स्वयम् इस विषय का अनुभव प्राप्त किया है; इस सम्पूर्ण सिद्धान्त की सत्यता में अपनी दृढ़ सम्मति देते हैं।

ऊपर जो कुछ रीति बतलाई गई वह ठीक है और यथासाध्य उस के अनुसार करना भी चाहिये, किन्तु इस से सुगम और स्वतः होनेवाली रीति भी हम को मिलती है। हम अपने पाठकों को शास्त्र विधानों के बतलाए हुए श्वास के सिद्धान्त का कारण दिखाते हैं कि " (:) दाहिना, " श्वास चलते समय यदि गर्भाधान किया जाय तो पुत्र और बायां श्वास " " चलते समय यदि गर्भाधान किया जाय तो पुत्री उत्पन्न होती है।" यह सिद्धान्त उपर्युक्त अण्डकोष के सिद्धान्त को ध्यान में रख कर बांधा गया मालूम होता है। क्योंकि :—

दाहिना श्वास चलते समय, हमेशा दाहिना अण्डकोष ऊपर को उठता है और बायां श्वास चलते समय बायां अण्डकोष (पाठक स्वयम् अनुभव कर इस की सत्यता के विषय में निश्चय कर सकते हैं)। गर्भाधान के समय इस सिद्धान्त का ख़याल रख कर उस के अनुसार चलने से बिना कोई पट्टी बांधे या कल का व्यवहार किये ही दाहिना श्वास चलता होने से दाहिना अण्डकोष ऊपर को उठेगा और दाहिने अण्डकोष ही से वीर्य्य निकलेगा; और बायां श्वास चलता होने से बायां अण्डकोष ऊपरको उठेगा और उसी से वीर्य्य निकलेगा · इस में किसी प्रकार का संदेह नहीं।

हमारे शास्त्रकारों ने स्त्री को पुरुष के बांई ओर स्थान दिया है; यह भी युक्ति से खाली नहीं है; इस में भी श्वास के सिद्धान्त की पूर्ति ही का विशेष ध्यान रक्खा गया है। पाठक यदि आप स्वयम् इस विषय पर कुछ विचारेंगे तो आप को विदित हो जायगा कि यह केवल रूढ़ि मात्र नहीं है, बल्कि इस में कई एक रहस्यों का समावेश किया गया है कि जिन में से यह भी एक है।

इस बात के सत्य होने के विषय में शंका करने का कोई कारण नहीं, मालूम होता। फिर भी इस को और दृढ़ करने के लिये, हम एक यूरोपियन पादरी के वाक्य यहां उद्धृत करते हैं। वह कहता है कि " मैं हमेशा " " अपनी स्त्री से दाहिनी ओर सोया करता था; इस समय मेरे तीन "

"सन्तान हुई कि जो तीनों पुत्र थे; किन्तु कारणवश मुझे [illegible]" "कुछ काल प्रवास में रहना और अपनी स्त्री के बाईं ओर सोना पड़ा।" "इस समय में मुझे दो सन्तान की और प्राप्ति हुई कि जो दोनों कन्याएं" "थीं।" पाठक! इस का कारण हमारा यही स्वर का नियम है। दाहिनी करवट से सोने पर बायां स्वर (श्वास) और बाईं करवट से सोने पर, हमेशा दाहिना स्वर चलता पाइयेगा।

अतएव निश्चय हुआ कि दाहिने अण्डकोष से वीर्य्य उत्पन्न करने के लिये दाहिना स्वर चलने की, और दाहिना स्वर चलने के लिये बाईं करवट से सोने की आवश्यकता है। अथवा इसी को दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि बाईं करवट सोने से दाहिना श्वास चलता है, दाहिना श्वास चलने से दाहिना अण्डकोष ऊपर को उठता है और दाहिने अण्डकोष के ऊपर उठने से उस के द्वारा (पुत्र को उत्पन्न करने वाला) वीर्य्य निकलता है। कन्या के लिये इस से उलटा समझना चाहिये।

किन्तु इस में एक शंका और होती है कि जब स्त्री, पुरुष के बाईं ओर है, तो उस के दाहिनी करवट सोने से बायां श्वास चलेगा और ऊपर कहे अनुसार, बायां श्वास चलने से बाएं अण्डकोष से वीर्य्य उत्पन्न होगा। बाएं अण्डकोष से निकला हुआ स्त्रीवीर्य्य पुरुष के दाहिने अण्डकोष से निकले हुए वीर्य्य के साथ एक दूसरे से विपरीत होने के कारण न तो एक दूसरे में मिश्रित होगा और न गर्भोत्पत्ति ही कर सकेगा।

गो ज़ाहिरा देखने में यह आपत्ति अवश्य आती है, किन्तु इस में कुछ महत्व नहीं; यह शंका सर्वथा निरर्थक है। देखिये :—पुरुष के सदृश स्त्री के भी दो अण्डकोष होते हैं, एक गर्भाशय के दाहिनी तरफ़ और दूसरा बाईं तरफ़। योनि और अण्डकोष को जोड़ने वाली एक और नली (फ़ेलोपियन नली) होती है। "* यह नली प्रायः अण्डकोष से जुदी" "रहती है और गर्भोत्पत्तिक्रिया के समय स्त्री अवयव के रतिसेवन द्वारा" "उत्तेजित होने पर अण्डकोष से मिलती है और वीर्य्य को उत्पन्न कर" "योनि में पहुंचाती है।"

---

* डाक्टर शिवप्रसाद।

जिस प्रकार दाहिना श्वास पुरुष के दाहिने अण्डकोष को ऊपर चढ़ाता है और बायां बायें को, उसी प्रकार स्त्री का दाहिना श्वास चलते समय, दाहिनी ओर की नली ऊपर उठी हुई रहती है; ऊपर उठी हुई रहने के कारण अण्डकोष से नहीं मिलने पाती और इसी लिये उस से वीर्य्य नहीं निकल सकता, इसी प्रकार बायां श्वास चलते समय बाईं ओर की नली ऊपर उठी रहने के कारण अण्डकोष से नहीं मिलने पाती; जब नहीं मिलती तो उस अण्डकोष से वीर्य्य कैसे निकल सकता है। अतएव सिद्ध हुआ कि जो नली श्वास द्वारा ऊपर खिंची हुई रहती है, तत्सम्बन्धी अण्डकोष से न मिल सकने के कारण, वीर्य्य उत्पन्न कर योनि तक लाने में असमर्थ रहती है और जो नली खिंची हुई नहीं है—स्वतन्त्र है वह उस से सम्बन्ध रखने वाले अण्डकोष से मिलती है और उसी से वीर्य्य उत्पन्न कर योनि में पहुंचा देती है।

अतएव स्त्री के बाईं करवट सोने और बायां स्वर चलने से हमारे सिद्धान्त को हानि नहीं पहुंचती, वरन् कार्य्यसिद्धि में और सहायता मिलती है, कारण कि इस प्रकार जिस जाति को उत्पन्न करने वाला पुरुष वीर्य्य निकलता है उसी जाति को उत्पन्न करने वाले स्त्रीवीर्य्य की उत्पत्ति होती है और दोनों एक ही प्रकार के होने से सरलता पूर्वक मिश्रित हो पुत्र का बीज बनाते हैं।

पाठक! मैं आशा करता हूं कि आप "पुत्र अथवा पुत्री किस प्रकार उत्पन्न करना" इस का यह पहिला सिद्धान्त अच्छे प्रकार समझ गये होंगे और इस के सत्य होने में किसी प्रकार की शङ्का नहीं रही होगी। (ऊपर दिये हुए नियमों में से १, २, ३, और ४ नियमों का, तो इस पहिले सिद्धान्त में समावेश हो गया; शेष का आगे विचार कीजिये)।

(२) दूसरा सिद्धान्त यह है कि "पुरुषवीर्य्य के बलवान होने" "से पुत्र और स्त्रीवीर्य्य के बलवान होने से पुत्री उत्पन्न होती है।" इस सिद्धान्त में भारतवर्षीय (१) और यूनानी (२) विद्वान् एक मत हैं, किन्तु यूरोपियन विद्वान् प्रायः इस के विरुद्ध हैं। यूरोपियन विद्वान् केवल

"(१, २, ३) स्त्री ही पुत्र और पुत्री दोनों को उत्पन्न करती है।"
"पुंवीर्य्य के बलवान होने से पुत्र और निर्बल होने से पुत्री का उत्पन्न होना" मानते हैं। पुरुष को, स्त्रीअवयवों को उत्तेजन देकर बीज में जीवनशक्ति उत्पन्न करा देने मात्र में उपयोगी समझते हैं; किन्तु यह सिद्धान्त बुद्धिग्राह्य नहीं होता। इस के अतिरिक्त पहिले जो यह निश्चित हो चुका है, कि—दोनों जाति में दोनों जाति को जातिप्रदान करने की शक्ति बराबर है—इस के भी विपरीत ठहरता है।

जिन विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि केवल स्त्री ही जाति उत्पन्न करती है, वे न तो कोई प्रयोग और न तो कोई बुद्धिग्राह्य और युक्तिसंगत दलील ही से अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। ऐसी हालत में आंख बन्द कर इन के सिद्धान्त—सिद्धान्त? सिद्धान्त नहीं—अनुमान—को मान लेना कोई लाज़मी (आवश्यकीय) बात नहीं है।

इन नियमों का इतना अंश कि बलवान वीर्य्य पुत्र और निर्बल वीर्य्य पुत्री उत्पन्न करता है—मान लेने में कोई हानि नहीं मालूम होती—और विचारने पर यही ठीक भी प्रतीत होता है। क्योंकि पुरुष के अवयव मज़बूत और सबल होते हैं, किन्तु स्त्री के अवयव कोमल और नाज़ुक होते हैं। अतएव पुरुष के अवयव और शारीरिक संगठन के लिये बलवान वीर्य्य की और स्त्री के लिये—स्त्री की शरीररचना के लिये निर्बल वीर्य्य की आवश्यकता है। रज और वीर्य्य का परिपक्व और शुद्ध होना तो आवश्यकीय है ही; जैसा कि इस पुस्तक में अन्यत्र बतलाया जा चुका है।

संयोग समय जिस की मनोवृत्ति (मनःशक्ति) अधिक प्रबल होती है उसी का वीर्य्य अधिक बलवान माना जाता है। अतएव आर्य्यग्रन्थों में जगह २ इस बात का प्रमाण मिलता है कि पुत्रप्राप्ति के लिये, संयोग-समय पुरुष की मनःशक्ति प्रबल होनी चाहिये और स्त्री की कामोत्तेजना। कामोत्तेजना अधिक होने से (१) सबीरथा, चान्द्रमती और गौरी आदि नाड़ियों का सिद्धान्त भी इसी के अन्तर्गत आजाता है। (और सम्भव है कि स्त्री को अधिक उत्तेजित करने के लिये ही ऐसा लिखा गया हो। इस

विषय में यदि पाठक भी थोड़ा विचार करेंगे तो उन्हें भी इस में कुछ सम्बन्ध अवश्य मालूम होगा।) स्त्रीवीर्य्य पूरा परिपक्व और बलवान होने पर भी, यदि पुरुष की मनःशक्ति प्रबल है और उस में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है तो पुरुषवीर्य्य से कदापि बलवान नहीं हो सकता, अतएव वीर्य्य-प्रबल मनःशक्ति के समय उत्पन्न हुआ पुरुषवीर्य्य, स्त्रीवीर्य्य की अपेक्षा अधिक बलवान होने के कारण अवश्यमेव पुत्रोत्पत्ति करेगा। पुरुष की इच्छाशक्ति को प्रबल रखने और विशेष कामासक्त होने से रोकने के लिये धर्मशास्त्र में बहुत से धार्मिक बन्धन लगाए हैं।

किन्तु प्रश्न होता है कि पुरुष के कामासक्त होने में हानि क्या? विचारपूर्वक देखाजाय तो यह मालूम हुए बिना कदापि न रहेगा कि कामासक्त होने से हानि अवश्य है। हानि का कारण भी प्रत्यक्ष ही है; कि जब मनुष्य विशेष कामासक्त हो जाता है तो बिना किसी विशेष क्रिया से उस का वीर्य्य पतला और निर्बल हो कर बिना कारण स्खलित हो जाता है। यदि वीर्य्य पूर्ण रूप से बलवान रहे तो बिना आवश्यकीय क्रिया किये कदापि स्खलित नहीं हो सकता। वीर्य्य चाहे कैसा ही परिपक्व, पुष्ट और बलवान क्यों न हो, काम में आसक्त और लीन हो जाने से उस में निर्बलता अवश्य आजाती है।

इस सब का नतीजा यही निकलता है कि पुरुष के विशेष कामासक्त न होने और मनःशक्ति को बलवान रखने से पुरुषवीर्य्य बलवान और स्त्री को पूर्णरूप से कामोत्तेजना कर देने से स्त्रीवीर्य्य (परिपक्व होने पर भी) निर्बल उत्पन्न हो कर पुत्र का बीज बनाता है। किन्तु परिपक्व वीर्य्य की हर हालत में आवश्यकता है, क्योंकि वीर्य्य के अपरिपक्व होने से सन्तान रोगी, अल्पायु और क्षीणकाय उत्पन्न होती है।

स्त्रीवीर्य्य मासिक धर्म होने पर उत्पन्न होता है, किन्तु उत्पन्न होते ही पूरा परिपक्व नहीं होता। मासिक धर्म के प्रायः आठ नौ दिन बाद परिपक्व दशा में आता है। इसी लिये ज्यों २ मासिक धर्म से दिन गुज़रते जाते हैं त्यों ही त्यों सन्तान की उत्तमता भी बढ़ती जाती है, अर्थात्

वीर्य की परिपक्वता के साथ २ सन्तान का बल, बुद्धि और ओजस्विता आदि भी बढ़ती जाती है।

अतएव स्थिर हुआ कि पुत्रोत्पत्ति के लिये मासिक धर्म से आठ वें दिन बाद स्त्रीसंयोग किया जाय और पुरुष को कामासक्त हो अपनी मनःशक्ति को स्त्री की मनःशक्ति के सामने निर्बल नहीं होने देना चाहिये, बल्कि स्त्री को अधिक कामोत्तेजना देकर उस की मनःशक्ति की मात्रा को न्यून कर देना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक समझ गये होंगे कि इस में विचारभेद अवश्य है, पर एक अपना २ सिद्धान्त जुदी २ रीति से प्रतिपादन करता है; किन्तु वास्तव में देखा जाय तो भेद कुछ नहीं, क्योंकि क्रिया का क्रम यकसां स्थिर होता है। अतएव यूरोपियन विद्वानों के सिद्धान्तों का भी पालन करना कहा जा सकता है; और इस क्रम से यह सिद्धान्त उन के सिद्धान्तों से प्रतिकूल भी नहीं कहा जा सकता। पाठक! आप के शेष नियमों में से १/१, २/१, ३/१, ४/६, १/२ और ३/१/५ नियमों का इस दूसरे सिद्धान्त में समावेश हो गया; अब शेष नियमों का आगे विचार कीजिये।

(३) तीसरा सिद्धान्त है कि " (३/१ नियम) सम राशियों " " में संयोग करने से पुत्र और विषम में संयोग करने से कन्या उत्पन्न " " होती है और * ज्यों २ रजस्राव को दिन गुज़रते जाते हैं त्यों २ सन्तान " " की उत्तमता बढ़ती जाती है।" मेरे पास इस समय तक कोई ऐसा प्रमाण अथवा दलील इस प्रकार की नहीं है कि जिस से इस की सार्थकता के विषय में पाठकों को समाधान कर निश्चय करा सकूं कि इस सिद्धान्त को मानना ही चाहिये। किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूं कि इस का भी रजस्राव से अवश्य सम्बन्ध है। इन दिनों में स्त्री की प्रकृति

---

* अर्थात् चौथे दिन से पांचवें दिन, पांचवें से छठे दिन, छठे से सातवें, सातवें से आठवें, आठवें से नवें, नवें से दसवें, दसवें से ग्यारहवें, ग्यारहवें से बारहवें, बारहवें से तेरहवें, तेरहवें से चौदहवें और चौदहवें से पन्द्रहवें, दिन संयोग करने से क्रमानुसार सन्तान में अधिकाधिक उत्तमता आती है।

आदि में चमत्कार अवश्य होता है, और यह सिद्धान्त वैद्यक के प्रायः सब ग्रन्थों में, कि जो अब तक मेरे देखने में आये, समान रूप से पाया जाता है। किन्तु परम्परागत मेलों के अनुसार इस के विषय में निर्णय आदि कुछ नहीं पाया गया—हमारे शास्त्रों में जो बात मिलती है प्रायः सिद्धान्त के स्वरूप में मिलती है। अतएव मेरे विचारानुसार इस तिथिक्रम का भी अवश्य ध्यान रक्खा जावे। यदि इस में कुछ सत्यता है तो सोना और सुगन्ध का मामला है, वरन् इस के पालन करने से उपर्युक्त नियमों में, अथवा किसी और प्रकार से हानि की तो सम्भावना हो नहीं है।

(४) चौथा सिद्धान्त है "(३ नियम) रजस्राव से निवृत्त हो," "गर्भाधान के निमित्त पति के समीप जाते समय बड़ के तन्तु आदि को" "जल से छोल कर उस के दूध को पुत्र की कामना हो तो दक्षिण" "नासिकारंध्र में और पुत्री की कामना हो तो वाम नासिकाछिद्र में" "दो चार बून्द डालने आदि की क्रिया करे।" ऐसा वैद्यक के महाप्रभु आचार्य्य वाग्भट्ट का सिद्धान्त है और सम्भव है कि इस में वैद्यक के सिद्धान्तानुसार कुछ प्रभाव होता हो। किन्तु हम इसे दो कारणों से मानने को तय्यार नहीं हैं—प्रथम तो यह कि हम क्रियाओं की सीमा से अतिरेक कर के औषध आदि के प्रयोग करने की सीमा में पहुंच जाते हैं; दूसरे यदि इस के लिये तय्यार भी हो जायं तो हमारे पास इस को प्रमाणित करने के लिये कि यह सर्वथा उचित है कोई सबूत नहीं। अतएव इसे त्याग देना ही उचित समझते हैं।

(५) पांचवां सिद्धान्त "(३/१ नियम) प्रत्येक जाति अपने प्रतिकूल जाति को उत्पन्न करती (Cross Heredity) है।" इस सिद्धान्त में कुछ सत्य अवश्य मालूम होता है; और इस का प्रभाव भी किसी अंश में मानना पड़ता है; क्योंकि प्रायः देखने में आया है और आता भी है कि पिता के बहुत से गुण पुत्री द्वारा नवासे (दोहित्र) में जाते हैं और माता के गुण पुत्र द्वारा पौत्री (पोती) में जाते हैं। गुण जाते हैं यह अवश्य मानना पड़ता है; किन्तु मेरे विचारानुसार जाति उत्पन्न करने से इन का क्या

सम्बन्ध ? हां ! यह कहा जा सकता है कि जब बीज में पुत्रसम्बन्धी गुण आयेंगे तो, और पुत्री सम्बन्धी गुण आयेंगे तो, क्रमशः उन्हीं के अनुसार जाति उत्पन्न होगी; किन्तु देखिये तो पुरुष में स्त्री के और स्त्री में पुरुष के भी लक्षण देखने में आते हैं इस का क्या कारण ? पाठक ! इस विषय में इसी प्रकार तर्क वितर्क बहुत उठते हैं और पूर्ण रूप से कुछ निश्चय नहीं होता। अतएव विशेष झगड़ा न बढ़ा ऊपर कहे अनुसार इस में कुछ सत्य मान कर इसे ऐसी सूरत में मान लेना चाहिये कि जिस से हमारे अब तक के निर्णय में कुछ बाधा न आती हो और साथ ही यह भी न कहा जा सके कि इस नियम की अवहेलना की गई। अतएव हम इसे इस प्रकार मान लेते हैं कि—"जब स्त्री पुत्र को उत्पन्न करती है तो गर्भाधान के समय स्त्री को इस बात का दृढ़ विचार रखना चाहिये कि मेरे गर्भ से पुत्र ही उत्पन्न होगा, और इसी प्रकार कन्या की प्राप्ति के अर्थ पुरुष को कन्या का विचार विशेष रूप से रखना चाहिये।" इस प्रकार मानते हुए हमारे उपर्युक्त सिद्धान्तों में से किसी में कोई बाधा नहीं आती, वरन् दूसरे सिद्धान्त की और पुष्टि होती है।

(६) छठां सिद्धान्त (६ नियम) मिस्टर "चार्ल्स डार्विन" का है। वे कहते हैं कि "स्त्री की अपेक्षा पुरुष की आयु विशेष अधिक होने से स्वजाति-" "रक्षा के लिये प्राकृतिक नियमानुसार पुरुष पुत्र ही को उत्पन्न करेगा।" किन्तु हम इस सिद्धान्त के मानने में सहमत नहीं हैं। इस के मानने में बहुत सी बाधाएं उपस्थित होती हैं; अतएव समझ में नहीं आता कि इस विद्वान् ने किस युक्ति और नियम के आधार पर अपना सिद्धान्त कायम किया है। क्या बड़ी उमर का पुरुष छोटी उमर की स्त्री के साथ संयोग करे तब ही पुत्र उत्पन्न हो सकता है अन्यथा नहीं ? यदि ऐसा ही है तो बड़ी उमर के पुरुष के छोटी उमर की स्त्री से कन्या उत्पन्न होनी ही नहीं चाहिये ? किन्तु प्रायः यही देखने में आया है कि स्त्री के पुरुष की अपेक्षा छोटी उमर की होने पर भी कन्या उत्पन्न होती है; इस का क्या कारण ? इसी सिद्धान्त के अनुसार यह भी मानना पड़ेगा कि कन्या की उत्पत्ति

के लिये बड़ी उमर की स्त्री और छोटी उमर का पुरुष होना चाहिये, किन्तु ऐसा बहुत कम, बल्कि होता ही नहीं; आम तौर पर पुरुष की अपेक्षा स्त्री की उमर कम होती है; अतएव कन्याओं का नामोनिशान उठ जाने—निर्वंश हो जाने—में क्या शेष रह गया। यदि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की उमर अधिक मान भी ली जाय तो क्या पुत्र का उत्पन्न होना सम्भव ही नहीं? अब रही यह बात कि पुरुष और स्त्री अपनी २ जाति को उत्पन्न करते हैं—प्रत्येक जाति अपनी जाति की वृद्धि करती है—सो यह भी ठीक नहीं मालूम होता। न अकेला पुरुष और न अकेली स्त्री ही जाति उत्पन्न कर सकती है—जाति उत्पन्न करने में दोनों समान हैं—जाति उत्पन्न करने की शक्ति दोनों में बराबर है—और दोनों की संयुक्त शक्ति—दोनों की शक्ति मिल कर—जाति उत्पन्न करती है; दोनों के मिले बिना जाति तो जाति किन्तु, बच्चे का बीज भी उत्पन्न नहीं हो सकता।

यहां मनुष्यगणना (मरदुमशुमारी = Census) का आधार ले कर यह कहा जा सकता है कि जब संसार में पुरुषजाति कम होने लगती है तो पुरुषजाति के बच्चे ज़ियादा उत्पन्न होने लगते हैं और स्त्रीजाति की कमी होने पर कन्याओं का जन्म अधिक होने लगता है। अब यदि प्रत्येक जाति अपनी जाति की वृद्धि करने के लिये अपने सदृश जाति उत्पन्न न करती होती तो ऐसा होने का और क्या कारण हो सकता है? किन्तु मुझे इस का कारण भी और ही मालूम होता है। और वह यही है कि:—मान लीजिये कि जब एक जाति में कन्याएं कम पैदा होने के कारण स्त्रीजाति की कमी आने लगती है तो उस जातिवालों को वह कमी खटकने लगती है और वे चाहने लगते हैं कि स्त्रीजाति की वृद्धि हो। इस इच्छा होने के साथ ही उन की मनःशक्ति उस की पूर्ति के लिये उस ओर लग जाती है और परिणाम में स्त्रीजाति की वृद्धि होने लगती है।

इस के अलावा इस सिद्धान्त से एक और भयवान् बाधा उपस्थित होने की सम्भावना है कि जो हमारे समाज के लिये बहुत ही हानिकारक है।

आन्दोलन न करें कि इस सिद्धान्त की, सन्तानविषयक, अन्य भी कई विद्वानों और कामासक्त लोगों तक पहुंचे कि जो वैवाहिक काल की उचित सीमा (समय) से अतिक्रमण कर कब्र में पांव लटकाने की तय्यारी कर रहे हैं। वरना अंधे को बिछौना मिलने की कहावत हो और वे बेचारी अबोध और अबला बालिकाओं के सुखमय जीवन के रमणीय कण्ठ पर वैवाहिक सम्बन्ध रूपी विषमय कुण्ठित कुठार चलाने और सन्तानप्राप्ति रूपी टट्टी की ओट में (शिव! शिव!! कामवासना की तृप्ति के लिये) रमणीय ललनाओं की ललित इच्छाओं का खून कर उन के आनन्दमय जीवन का नाश करने को कटिबद्ध हो जायं और इस अनर्थकारी — अनर्थकारी नहीं! नाशकारी कार्य्य की संख्या में आज की अपेक्षा कहीं वृद्धि हो जाय।

पाठक! पुत्र अथवा पुत्री उत्पन्न करने के विषय में ऊपर जो आर्य्य-ऋषियों के ७, यूनानी विद्वानों के २, और यूरोपियन विद्वानों के ६, कुल १५, नियम दिये गये हैं—उन सब पर यथामति विचार किया जा चुका; अतएव उन को सिद्धान्तरूप में एक बार और देख लेना चाहिये ताकि उन के विषय में किसी प्रकार का भ्रम अथवा सन्देह न रह जाय:—

(नीचे दिये हुए सिद्धान्त पुत्रोत्पत्ति के लिये हैं; पुत्री के लिये इन से उलटा समझना चाहिये।)

पहिला सिद्धान्त—दाहिने अण्डकोष से वीर्य्य उत्पन्न होना चाहिये।

(" " " " " करने के लिये—उपाय।

(१) जिस अण्डकोष से वीर्य्य निकालना है उस को ऊपर उठाया जाय।

(२) जिस अण्डकोष से वीर्य्य नहीं निकालना है उसे ऊपर उठने से रोका जाय।

(३) पुरुष का दाहिना और स्त्री का बायां स्वर चलना चाहिये।

दूसरा " " —पुरुष की मनःशक्ति प्रबल और स्त्री को कामोत्तेजना अधिक होनी चाहिये, और ऋतुस्नान होने के आठवें नवें दिन बाद गर्भाधान करना चाहिये।

तीसरा " " —सम और विषम रात्रियों के नियमानुसार, समरात्रियों (१०—१२—१४) में गर्भाधान करना चाहिये। १६ वीं रात्रि त्याग देना चाहिये।

चौथा " " —स्त्री को पुत्रप्राप्ति की इच्छा विशेष रूप से होनी चाहिये *। (इस से यह न समझ लिया जाय कि पुरुष को पुत्रप्राप्ति की प्रबल इच्छा न होनी चाहिये)

गर्भ में जातिसूचक अवयव के विकसित होते समय सावधान रहने की आवश्यकता।

किन्तु साथ ही एक बात यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि गर्भ में, बच्चे की जाति का भेद बतलाने वाले अवयव की तीसरे महीने में रचना होती है (देखो प्रकरण ४)। बच्चे की जाति तो गर्भाधान के समय ही निश्चित हो जाती है, ऐसा ऊपर सिद्ध किया जाचुका है; किन्तु तीसरे महीने में—रचनाक्रम के अनुसार—गर्भाधान के समय, जिस प्रकार की जाति निश्चित हो चुकी है (स्त्रीजाति अथवा पुरुषजाति) उसी प्रकार की जाति से सम्बन्ध रखनेवाले अवयव की रचना होती है; अतएव गर्भाधान के समय जिस जाति को उत्पन्न किया गया है तीसरे महीने में भी उसी जाति के अवयव को बनने में सहायता देना चाहिये—अर्थात् यदि पुत्र के निमित्त गर्भाधान किया गया हो तो पुत्र के अवयव का और पुत्री के निमित्त गर्भाधान किया गया हो तो पुत्री के अवयव का, उस के विकास-काल में बलपूर्वक ध्यान रखना चाहिये; इस प्रकार मानसिक सहायता मिलने से उन अवयवों का उचित रूप से विकास होता है; और वह अवयव सरलतापूर्वक विकास पा जाते हैं।

स्त्री की इच्छाशक्ति सुदृढ़ और प्रबल होने की अवस्था में यह भी

---

* क्रॉस हेरिडिटी (Cross Heridity) के सिद्धान्तानुसार।

संभव है कि यदि कन्या का गर्भ है तो तीसरे महीने में—जब कि तत्सम्बन्धी अवयवों की रचना होती है—उस को बदल कर पुत्र का और यदि पुत्र का गर्भ है तो उस को बदल कर कन्या का, गर्भ बनाया जा सकता है। किन्तु ऊपर कहे अनुसार यह उसी हालत में सम्भव हो सकता है कि गर्भ स्त्री की इच्छाशक्ति पूर्ण रूप से विकास * पाये हुई और बलवान हो, अन्यथा ऐसा होना सर्वथा असम्भव है। इच्छाशक्ति के पूर्ण रूप से बलवान होते हुए भी यदि पूरी सावधानी से काम न लिया जाय तो एक तीसरी ही सूरत पैदा हो जाने का भय है। और कभी २ तो इस प्रकार होने से बड़े आश्चर्यकारक परिणाम की सम्भावना रहती है। उदाहरणार्थ यहां इसी प्रकार की एक विचित्रता का उल्लेख किया जाता है :—

मेरे परम मित्र डाक्टर शिवप्रसाद, जिस समय कोटा हास्पिटल में थे (अब आप ने स्वतन्त्र मेडिकल हाल खोलने के इरादे से नौकरी छोड़ दी है), अपनी आंखों देखा हाल इस प्रकार बयान करते हैं कि "डाक्टर †" "मैकवॉट साहब के ज़माने में (कि जो उस समय कोटे में चीफ़ मेडिकल" "आफ़िसर थे)........एक व्यक्ति पर मूर्छावस्था (अण्डर क्लोरोफ़ार्म) में" "शस्त्रचिकित्सा (ओपरेशन) करनी थी, अतएव उसे मूर्छित किया गया;" "किन्तु ज्योंही उस का शरीर खोला गया हमें बड़ा आश्चर्य हुआ; देखते" "क्या हैं कि उस के शरीर में स्त्री और पुरुष दोनों के चिन्ह विद्यमान" हैं। ये दोनों अवयव पूर्ण रूप से विकास पाए हुए थे। शस्त्रचिकित्सा" "किये जाने पर उसे होश में लाया गया, होश में आने पर उस से पूछने" "पर मालूम हुआ कि उस ने इन दोनों अवयवों से पृथक् २ उन का" "कार्य लिया है, किन्तु गर्भोत्पादक शंका के कारण उस ने स्त्री विष-" "यक अवयव से कार्य लेना छोड़ दिया है।" यह व्यक्ति अब तक जीवित है।

इसी प्रकार एक दूसरी सूरत भी पैदा हो सकती है, जिस को पाठकों को

---

* Develope—

† यह आज से कोई पांच वर्ष पहिले का ज़िक्र है।

निम्नलिखित घटना से स्पष्ट हो जायगी :—सुनने में आया है और प्रायः सत्य है कि "मेरवाड़ा डिस्ट्रिक्ट (Merwara District) में एक व्यक्ति के "
" लड़का हुआ। उस ने वयस्क होने पर एण्ट्रेन्स पास किया। इसी वर्ष में "
" मातापिता ने उस का विवाह भी कर दिया, क्योंकि उस के पुरुष होने "
" में किसी प्रकार की शंका तो थी ही नहीं; किन्तु विवाह होने "
" पर मालूम हुआ कि वह पुरुषत्व के विचार से सर्वथा अयोग्य है। "
" अतएव डाक्टरी जांच करवाने पर मालूम हुआ कि वह वास्तव में स्त्री "
" है और स्त्रीचिन्ह के ऊपर पुरुषचिन्ह नाम मात्र को बन गया है—इसी "
" कारण वह चिन्ह निरर्थक है—अतएव डाक्टर के उस कृत्रिम चिन्ह को "
" दूर कर देने पर उस का शुद्ध स्त्रीस्वरूप प्रकट हो गया और उन दोनों "
" स्त्रियों (पुरुषरूपधारी स्त्री और उस की विवाहिता स्त्री) की एक "
" ही व्यक्ति से शादी कर दी गई।" यह स्त्री कुछ समय पहिले तक जीवित बतलाई जाती है। इन्हीं बातों के आधार पर कहना पड़ता है कि जब तक स्त्री की मनःशक्ति में उक्त अवयव को पूर्ण रूप से बदल देने की शक्ति नहीं है तब तक इस प्रकार की चेष्टा सर्वथा अनधिकार चेष्टा कही जायगी और इसी कारण हम इस ग्रन्थ में, इसे—स्वतन्त्र रीति के स्वरूप में—स्थान देने में असमर्थ हैं।

गर्भ में पुत्र है अथवा पुत्री इस के जानने की रीति।

गर्भवती स्त्री के गर्भ में पुत्र है अथवा पुत्री? इस के जान लेने के लिये भारतवर्षीय आचार्यों ने जो रीति बतलाई है—पाठकों के विदितार्थ यहां दी जाती है। उन का अभिप्राय है कि "गर्भवती को (१) बाईं आंख की अपेक्षा दाहिनी आंख कुछ बड़ी और भारी मालूम हो, (२) दाहिनी जंघा में भारीपन अधिक प्रतीत हो, (३) पुरुषवाची वस्तु की अधिक इच्छा हो, (४) स्वप्न में भी पुरुषवाची वस्तुओं ही को अधिक देखे, (५) पहिले दाहिने स्तन में दूध प्रकट हो, (६) मुख की कान्ति, श्रेष्ठ, सुन्दर और प्रसन्न हो तो समझ लेना चाहिये कि पुत्र उत्पन्न होगा; विपरीत लक्षण होने पर कन्या।

प्रकरण छठा।

मनःशक्ति।

अब देखना यह है कि अपनी सन्तान में इच्छानुसार वर्ण शारीरिक सौन्दर्य और उत्तम गुणों का किस प्रकार विकास किया जा सकता है, और इन में जो परिवर्त्तन होता है उस का वास्तविक कारण क्या है? किन्तु इन बातों के समझ लेने के लिये पहिले इस बात के ज्ञान होने की बहुत ही आवश्यकता है कि "मनःशक्ति अथवा इच्छाशक्ति क्या है? और उस का प्रभाव क्यों और किस प्रकार होता है? और इच्छा-शक्ति कितनी उपयोगी और प्रबल शक्ति है? अतएव पहिले इसी का उल्लेख किया जाता है।

मनःशक्ति और उस के अपूर्व प्रभाव को समझ लेने के लिये निम्न लिखित बातों का ज्ञान होना आवश्यकीय है। यदि पाठक इन्हें ध्यान-पूर्वक अवलोकन करेंगे तो आशा है कि मनःशक्ति के विषय में उन्हें साधारण ज्ञान तो अवश्य ही हो जायगा।

(१) मनःशक्ति क्या है और वह कितनी उपयोगी है?

(२) मनःशक्ति का प्रभाव :—

(क) वाह्य प्रभाव और उस का कारण।

(ख) आन्तरिक प्रभाव और उस का कारण।

(३) मनःशक्ति को दृढ़ और उपयोगी कैसे बनाया जा सकता है?

(१) मनःशक्ति क्या है और वह कितनी उपयोगी है?

वास्तव में देखा जाय तो, मनःशक्ति की व्याख्या करना कठिन—कठिन ही नहीं बहुत कठिन—कार्य है, और बहुत सम्भव है कि मुझ अल्पज्ञ के लिये ऐसे कठिन विषय में हस्तक्षेप करना अनधिकार चेष्टा भी कही जा सके;

किन्तु कठिनाई के ;भय से अथवा किसी और कारण से इसे त्याग देना भी एक प्रकार अपनी इच्छाशक्ति का घात करना है, उसे निर्बल बनाना है ; अतएव निरुत्साह न हो उस ज्ञान के आधार पर कि जो विद्वानों के ग्रन्थावलोकन और अभ्यास द्वारा किञ्चित् प्राप्त हो गया है, इस विषय को यथाशक्ति पाठकों के समक्ष रखने की चेष्टा करता हूं। देखिये :—

मनःशक्ति एक प्रकार की शक्ति है कि जो प्रत्येक कार्य्य में प्राणी के प्रमाण है। प्राणी मात्र के लिये यह शक्ति बहुत ही आवश्यकीय और उपयोगी है। इस शक्ति के बिना साधारण से साधारण कार्य्य भी कठिन मालूम होने लगता है; और कठिन से कठिन कार्य्य भी, इस की सहायता द्वारा सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। इसी लिये उस परम पिता जगदीश्वर ने प्राणी मात्र को यह शक्ति प्रदान की है। अतएव इस शक्ति की सहायता से कर जो कार्य्य किया जाता है उस में अवश्यमेव कृतकार्य्यता होती है।

इसी शक्ति को विद्वानों ने पृथक् २ नामों से बतलाया है। कोई इसे आत्मशक्ति, कोई आत्मबल, कोई हृदयबल, कोई इच्छाशक्ति, कोई चिन्ताशक्ति, कोई मनोबल और कोई मनःशक्ति कहते हैं; किन्तु पृथक् २ होने पर भी ये सब नाम एक ही शक्ति का बोध कराते हैं।

मनःशक्ति का शब्दार्थ " मन की शक्ति " है ; किन्तु इसे मन की शक्ति मान लेना उचित नहीं मालूम होता; क्योंकि मन विचारों की एक विशेष अवस्था का नाम है। विचार के विद्वानों ने तीन भाग किये हैं—अर्थात् विचार को विद्वानों ने तीन भागों में विभक्त किया है ; मन, चित्त, और बुद्धि। अतएव देखना चाहिये कि ये तीनों नाम पृथक् २ रूप से विचार की किस २ अवस्था का बोध कराते हैं। देखिये :—

मनुष्य स्वभाव ही से विचारशील है। वह हर समय कुछ न कुछ विचारा ही करता है। कोई क्षण ऐसा नहीं आता कि जिस समय उस के हृदय में अथवा मस्तिष्क में कोई विचार न हो। क्षण २ में नये २ विचार उत्पन्न होते हैं, और " बायस्कोप " की तरह अपना रूप दिखलाते

हुए पीछे न मालूम किस अन्तरिक्ष के परदे में विलीन हो जाते हैं। एक विचार उत्पन्न हुआ न हुआ कि दूसरा विचार तय्यार है। अभी दूसरा विचार समाप्त नहीं होने पाया था कि तीसरा आ मौजूद हुआ। इसी प्रकार नये २ विचार उत्पन्न और पुराने विलीन होते रहते हैं। इसी विचार-परम्परा को—इसी विचारसंस्था को—मन कहते हैं—इसी का नाम मन है। अतएव निश्चित हुआ कि विचारों को उत्पन्न करना मात्र, मन का काम है। विचारों को उत्पन्न करना मन का धर्म है, किन्तु मन के द्वारा जो विचार उत्पन्न होते हैं वे मन में ठहरने नहीं पाते—वे स्थाई नहीं होते—उन में कुछ मज़बूती या पायदारी नहीं होती। इधर कोई विचार उत्पन्न हुआ कि मन तत्काल उस का परित्याग कर दूसरा विचार ग्रहण कर लेता है। अतएव मानना पड़ता है कि इस अवस्था में विचारों को स्थिरता नहीं होती, और जिस वस्तु में स्थिरता नहीं होती वह चिर-स्थाई अथवा समर्थ कदापि नहीं हो सकती; और जब यह मान लिया गया कि स्थिरता बिना शक्ति नहीं आ सकती तो विचारों के चिर स्थाई न होने के कारण उन में शक्ति का होना कैसे माना जा सकता है। जब शक्ति का होना ही नहीं माना जा सकता तो फिर इस शक्ति को "मन की शक्ति" अथवा "मनःशक्ति" कैसे कहा जा सकता है, इस का पाठक ही विचार करें।

मन के बाद विचारों की दूसरी अवस्था का नाम चित्त है। जिस प्रकार मन का काम विचारों को उत्पन्न करना है, उसी प्रकार मन के द्वारा उत्पन्न हुए विचारों पर मनन करना और तर्कवितर्क कर के उन के सत्या-सत्य का निर्णय करना चित्त का काम है; अथवा यों कहिये कि जो विचार मन ने उत्पन्न कर के छोड़ दिया है, किन्तु वह विस्मृति के परदे में छिपने नहीं पाया है, बल्कि वही विचार फिर २ कर बार २ आता है; उसी—उस विचार—के विषय में तर्कना होता है; कभी उस में सार्थकता और कभी किसी विशेष कारण से उसी में निरर्थकता प्रतीत होती है; इस प्रकार से जो आत्म-हृदय में उत्पन्न हो एक विचार का निर्णय करते हैं; इसी निर्णयात्मकता का

नाम चित्त है—इसी को चित्त कहते हैं। इस अवस्था में आने पर मन की अपेक्षा विचारों को किसी अंश में स्थिरता अवश्य प्राप्त हो जाती है; और इसी लिये मन की अपेक्षा चित्त का काम किसी अंश में स्थाई अवश्य है और जब विचारों को इस अवस्था में स्थिरता—मन की अपेक्षा स्थिरता—मान ली गई तो इस में शक्ति का अस्तित्व भी मानना ही पड़ेगा। किन्तु देखिये तो हम इस अवस्था में शक्ति—शक्ति का अस्तित्व और वह भी कुछ ही अंश में मानेंगे तो कुछ हानि नहीं, किन्तु यदि पूर्ण शक्ति मान लेंगे तो उस के मान लेने में अवश्य ग़लती करेंगे और वह अवश्यमेव हमारी भूल कही जाने के योग्य होगी। कारण यह कि ज्यों ही कोई विचार चित्त द्वारा तर्क वितर्क कर के निश्चित हुआ नहीं कि—वह चित्त का कार्य्य न रह कर बुद्धि का कार्य्य बन जाता है—बुद्धि उसे ग्रहण कर अपना कार्य्य बना लेती है और चित्त का उस पर कोई अधिकार नहीं रहता, वह सर्वथा बुद्धि के अधिकार में चला जाता है। अतएव जब तक विचार पूर्ण रूप से निश्चित और दृढ़ नहीं होने पाते तभी तक चित्त के कार्य्य रहते हैं। जब विचार पूर्ण रूप से निश्चित और दृढ़ नहीं हो पाते तो यह अवस्था भी ऐसी नहीं है कि जिस में पूर्ण रूप से शक्ति मान ली जाय और जब पूर्ण रूप से शक्ति नहीं मानी जा सकती तो यह किस आधार पर कहा जा सकता है कि यह शक्ति चित्त की है।

अब रही विचारों की तीसरी अवस्था कि जिसे बुद्धि कहते हैं। बुद्धि विचारों की उस उच्च और अन्तिम अवस्था का नाम है कि जब विचार पूर्ण रूप से संस्कृत हो कर पूर्णता की सीमा को—निश्चित सिद्धान्त—सत्य सिद्धान्त—की सीमा को—पहुंच जाते हैं; उन में किसी प्रकार की न्यूनता—किसी प्रकार की बनावट अथवा कमज़ोरी नहीं रह जाती—और वे मन द्वारा उत्पन्न और चित्त द्वारा निश्चित हो कर सब प्रकार दृढ़ हो जाते हैं। इसी लिये हमारे शास्त्रकारों ने बुद्धि को निश्चयात्मिका माना है। ऐसा मानने का कारण भी प्रत्यक्ष ही है; कि जब एक विचार चित्त रूपी कसौटी पर अच्छे प्रकार परख कर और जांच कर देख लिया जाता है—उस को

शुद्धि, सारगर्भिता और सत्यता के विषय में विश्वास कर लिया जाता है—तभी वह इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है, अन्यथा वह पहिले ही निकाल बाहर किया जाता है। इस के अतिरिक्त बुद्धि में भी यह स्वाभाविक गुण है कि वह पूर्ण रूप से दृढ़ हुए सिद्धान्त ही को ग्रहण करती है, लेश मात्र भी न्यूनता—लेश मात्र भी त्रुटि—लेश मात्र भी कचावट—होने से बुद्धि उसे कदापि ग्रहण नहीं करती।

अतएव जब एक विचार इस प्रकार पूर्वापर देख कर—उस के सत्यासत्य का निर्णय किया जा कर—पूर्ण रूप से दृढ़ बना लिया जाता है तो उस के सत्य होने में किसी प्रकार की शंका नहीं रह जाती। इस प्रकार निश्चित हुए सिद्धान्तानुसार जब कोई कार्य्य किया जाता है तो क्या उस के निष्फल होने की—उस में असफलता होने की—अथवा—नाकामी होने की—कभी संभावना हो आ सकती है? उत्तर में कहना होगा कदापि नहीं। और जब निष्फल होने की सम्भावना नहीं तो मानना पड़ेगा कि विचार के बुद्धि का कार्य्य बन जाने पर उस में एक विशेष प्रकार की संजीवनी शक्ति आ जाती है कि जो उसे कदापि निष्फल नहीं होने देती। पाठक! इसी शक्ति को मनःशक्ति कहते हैं। लीजिये, मैं आप को इस शक्ति का परिचय कराए देता हूं! देखिये, इसे कदापि न भूलियेगा; यह आप के बड़े काम आयगी!!

इसी शक्ति के विषय में दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि—आत्मा, परमात्मा का अंश है और परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। जब आत्मा, परमात्मा का अंश और परमात्मा सर्वशक्तिमान् है तो उस को उस सर्वशक्तिमत्ता का कुछ अंश आत्मा में भी अवश्य होना चाहिये? पाठक! वह अंश आत्मा में विद्यमान है; क्या आप बतला सकते हैं कि वह अंश क्या है? लीजिये, आप को सोचने का परिश्रम न दे हम ही बतलाये देते हैं कि आप जिसे बुद्धि कहते हैं वह क्या है? वह उसी सर्वशक्तिमत्ता के अंश का नाम है। अर्थात्, बुद्धि ही उस सर्वशक्तिमत्ता का अंश है। इसी लिये बुद्धि में वह शक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान है कि जो

प्रत्येक कार्य को सम्पादन कर सकती है; चाहिये संकल्प की दृढ़ता। यदि संकल्प दृढ़ है तो बुद्धि संकल्प सम्बन्धी कार्य्य को सम्पादन करने में कदापि असमर्थ नहीं रहेगी। अतएव इस प्रकार भी निर्विवाद सिद्ध हो गया कि बुद्धि में वह शक्ति मौजूद है कि जो प्रत्येक कार्य में प्राणों के समान है और प्राणीमात्र के लिये उपयोगी और आवश्यकीय है।

उस सर्वशक्तिमान् सच्चिदानन्द आनन्दमय जगदीश्वर ने एक मनुष्य जाति ही को यह शक्ति प्रदान की हो ऐसा नहीं है; उस ने यह शक्ति प्रत्येक प्राणधारी को प्रदान की है कि जिस से वह उसे अपने आवश्यकीय कार्य में उपयोगी बना सके। मनुष्य के सब प्राणधारियों में श्रेष्ठ माने जाने का कारण मात्र यही है कि परमात्मा ने उस के शरीर का इन शक्तियों के विशेष विकास पाने योग्य रचनाक्रम स्थिर किया है।

मनुष्य इस शक्ति की सहायता से प्रत्येक कार्य को अपने इच्छानुसार सम्पादन कर महान् आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। जिस मनुष्य में यह शक्ति पूर्ण रूप से विकास पाई हुई है, उस के लिये संसार में कोई कार्य कठिन—बल्कि असम्भव—नहीं है। वह जिस कार्य्य को करना चाहे कर सकता है—जिस से चाहे अपने इच्छानुसार कार्य्य ले सकता है।

मनुष्य इस शक्ति को अभ्यास और परिश्रम कर के बहुत कुछ बढ़ा सकता है और बढ़ी हुई मनःशक्ति होने पर क्या नहीं किया जा सकता? हमारे ऋषि, महर्षि और आचार्य्य आदि; बढ़ी हुई मनःशक्ति के ज्वलन्त और उत्तम उदाहरण हैं। उन में यह शक्ति पूर्ण रूप से विकास पाई हुई होती थी कि जिस के द्वारा वे जगत् का कल्याण और भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल को जानने में सर्वथा समर्थ होते थे। यह शक्ति उन में इतनी विकास पा जाती थी कि वे ईश्वर में और अपने में कोई भेद नहीं समझते थे और सर्वथा उसी में तन्मय हो कर उसी के अनुरूप बन जाया करते थे।

संसार का इतिहास उठा कर देखने से पग पग पर इस शक्ति की विलक्षणता नज़र आती है और ऐसे असंख्य उदाहरण मिलते हैं कि जिन से

इस शक्ति की अपूर्व महिमा का पूरे तौर पर अनुभव होता है। संसार में इधर से उधर कार्य्य भी इसी शक्ति द्वारा किये गये हैं। हम भी दो एक उदाहरण ऐसे देना चाहते हैं कि जिन से इस शक्ति का प्रभाव पाठकों को अच्छे प्रकार ध्यान में आ जाय।

(२) मनःशक्ति का प्रभावः—

जिस प्रकार मनःशक्ति एक अपूर्व और प्रबल शक्ति है उसी प्रकार उस का प्रभाव—उस के द्वारा होने वाला प्रभाव—भी अपूर्व और विलक्षण ही है; इस प्रभाव को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है; यथा :—(१) बाह्य * प्रभाव और (२) आन्तरिक † प्रभाव।

प्रसंगानुसार देखा जाय तो, हमारे इस ग्रन्थ के साथ आन्तरिक प्रभाव ही का सम्बन्ध है; किन्तु इस जगह बाह्य प्रभाव के विषय में कुछ कह देना भी अनुचित न होगा, अतएव पहिले बाह्य प्रभाव के विषय में और तत्पश्चात् आन्तरिक प्रभाव के विषय में कहा जायगा।

मनःशक्ति के बाह्य प्रभाव के विषय में कुछ कहने की अपेक्षा यही

बाह्य प्रभाव।

अधिक उचित मालूम होता है कि कुछ ऐसे उदाहरण दिये जावें कि जिन से पाठकों को इस प्रभाव का अच्छे प्रकार ज्ञान हो जाय और वे समझ जायं कि यह प्रभाव कितना विलक्षण, अपूर्व और उपयोगी होता है।

मनःशक्तिविषय उदाहरण देते हुए मुझे पहिला, ज्वलंत और प्रभाव शाली उदाहरण, "इटली" के प्रख्यात देशभक्त महात्मा "जोसफ़ मेज़िनी" का स्मरण आता है; और इतिहासज्ञ पाठकों से छिपा हुआ नहीं है कि अकेले इस विलक्षण शक्तिशाली पुरुष ने गले तक गुलामी के भयानक दलदल में फंसे हुए "इटली" प्रदेश को "दास्य मुक्त और स्वतंत्र करने

* बाह्य प्रभाव में उन सब वस्तु अथवा व्यक्तियों का समावेश होता है कि जो शरीर से भिन्न हैं।

† आन्तरिक प्रभाव, उस प्रभाव से अभिप्राय है कि जो शारीरिक अवयवों, शारीरिक इन्द्रियों और प्रत्येक प्रकार की शारीरिक शक्ति पर होता है।

के दृढ़ संकल्प और समस्त "इटली" देश में—इस सिरे से उस सिरे तक—"एक जातीयपताका फहरा देने" की अभिलाषा—उत्कट अभिलाषा—ने अपने उत्साहवाक्यों और कार्य्यों द्वारा "इटली" निवासियों के मृतप्राय शरीर में शक्तिरूपी प्राण फूंक—उन्हें मोहनिद्रा से जाग्रत कर—उन के शरीर में नवीन जीवन का पुनः संचार कर स्वदेश हितसाधन करने के लिये "प्राण देने को" तय्यार कर दिया; और प्रत्येक स्वदेशवासी के हृदय में अपनी आत्मशक्ति द्वारा वह शक्ति उत्पन्न कर दी कि हरएक "इटली" निवासी सर हथेली पर रक्खे हुए, अपने प्यारे देश को दास्यमुक्त करने के इरादे से; "आस्ट्रियनों" के रक्त का प्यासा बन, स्वजातीय-पताका के नीचे आ खड़ा हुआ और अपने उष्ण रक्त से माता जन्मभूमि को मंगलस्नान करा और विपक्षियों के सिरों की जयमाल पहिना, सदा के लिये परतन्त्रता से मुक्त कर लिया। पाठक! ध्यान दीजिये कि इतने बड़े लोकसमुदाय के विचारों को एक केन्द्र में ला उन से कार्य्यसाधन करा लेना क्या छोटी मोटी बात है? क्या यह साधारण मनःशक्ति का काम है? क्या यह शक्ति सामान्य शक्ति है? और क्या यह प्रभाव सामान्य प्रभाव है?

दृढ़ मनःशक्ति का दूसरा उदाहरण मुझे महाराणा संग्राम सिंह का स्मरण आता है:—"बाबर अपनी अपार सेना ले, भारत को गारत कर अपना राज्य स्थापित करने के लिये आया है। इधर से अपने देश की स्वाधीनता अपहरण होती देख, स्वदेशहितैषी और स्वातंत्र्यप्रिय महाराणा संग्राम सिंह, उस की रक्षा करने के लिये, अपनी वीर राजपूतसेना को साथ ले, उस के सामने आये हैं। दोनों सेनाओं का पानीपत में घोर युद्ध हुआ। मुसल्मानों का सर्वनाश होने की तय्यारी ही थी कि अकस्मात् देशद्रोही भरतपुर का राजा—कि जो उस समय महाराणा का अधिकृत होने से समरभूमि में महाराणा के साथ आया था—अपनी तीस हज़ार सेना सहित बाबर के पक्ष में जा मिला। इस घटना से महाराणा की सेना का उत्साह न्यून होने लगा, किन्तु ज्यों ही महाराणा को यह समाचार मिला, वे तुरन्त सेना के आगे आये और शब्दोंद्वारा अपने दृढ़

संकल्प का प्रभाव सैनिकों के दिलों पर डाल कर उन के हृदय की क्षणिक निर्बलता को दूर किया । सेना ने—पुन: नवीन शक्ति का बल पाया जो— इस प्रकार दूने उत्साह से कठिन आक्रमण किया ; इस आक्रमण को शत्रु की सेना न रोक सकी । उस के पैर उखड़ने लगे—वह भागना ही चाहती थी कि हतभाग्य भारत के दुर्भाग्य—महान् दुर्भाग्य—के कारण एकाएक (अकस्मात) एक तीर महाराणा के कपाल में आकर लगा और वे मूर्छित हो गिर पड़े। यह समाचार कि " महाराणा का शरीर पात हुआ " त्वरित गति से समस्त सेना में फैल गया और वही विजयी सेना कि जो शत्रुओं को भगा देना ही चाहती थी, स्वयम् युद्धभूमि से भाग खड़ी हुई ; और भारत माता के पैरों में मुग़लों के दासत्व की बेड़ियां खड़खड़ाने लगीं ।"

किन्तु पाठक ! मुझे इस बात का अचरज होता है कि अकेले महा-राणा के मारे जाने से ऐसा परिवर्त्तन क्यों होगया ? जिस प्रकार अनेकों वीर सैनिक मारे गये और मारे जा रहे थे ; उसी प्रकार एक महाराणा भी मारे गये ; ऐसा समझ कर उक्त सेना ने कि जो विजय प्राप्त कर ही चुकी थी ; युद्ध क्यों नहीं किया ? महाराणा के मरते ही युद्धभूमि का रंग क्यों बदल गया ? इस का कोई कारण अवश्य होना चाहिये और है, क्योंकि कारण बिना कार्य्य नहीं हो सकता। थोड़ा विचारने से इस का कारण सुगमतापूर्वक समझ में आ जायगा। महाराणा की इस उत्कृष्ट मन:शक्ति का आधिपत्य कि जो प्रत्येक सैनिक को दृढ़ संकल्प बनाये हुए था, उन के हृदय से उठ गया और इस आधिपत्य का अभाव ही इस शोचनीय परिणाम का कारण हुआ। अतएव मानना पड़ता है कि यह उसी वीर चूड़ामणि की अतुल मन:शक्ति का प्रभाव था कि जिस ने अपनी समस्त सेना को दृढ़ संकल्प बना रक्खा था। इस के अतिरिक्त बाबर की उस मन:शक्ति से कि " भारत को विजय करूंगा " उन की भारत को स्वतन्त्र रखने की मन:शक्ति भी बढ़ी हुई थी कि जिस ने शत्रु की उस मन:शक्ति को दबा कर कमज़ोर कर दिया और इसी लिये शत्रुसेना उन की सेना से दब गई।

तीसरा उदाहरण "नादिर शाह" की अत्यंत मन:शक्ति का वर्णन आता है। "एक बार का ज़िक्र है कि नादिर शाह युद्धभूमि से हार कर भागा। उस की समस्त सेना तितर बितर (अस्तव्यस्त) हो गई; अगत्या उसे भी युद्धभूमि से भागना पड़ा। शत्रुसेना के दो सवार कि जो उसे पहिचानते थे, इनाम के लालच से, उस का घात करने को उस के पीछे पड़े। उन सवारों के नज़दीक (पास) आने पर नादिर शाह ने उन्हें देखा; किन्तु वह अपने विचारों में इतना मग्न था कि उस ने इन की कुछ परवाह न की। किन्तु सवार जब बहुत पास आगये तो उसे इस आपत्ति से निस्तार पाने की चिन्ता हुई और साथ ही उसे अपनी आज्ञाशक्ति का स्मरण आया। वह सोचने लगा कि आज तक मेरी आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं हुआ और न किसी को उस का उल्लंघन करने की हिम्मत ही हुई; क्या मेरी आज्ञा का आज वह प्रभाव जाता रहा है? किन्तु मेरा ऐसी शंका करना ही वृथा है, मेरी आज्ञा में आज भी वही शक्ति मौजूद है। अतएव मुझे इस संकट के समय उसी से काम लेना चाहिये और परीक्षा कर लेना चाहिये कि मुझ में वह शक्ति अब भी विद्यमान है या नहीं? यह विचार दृढ़ कर उस ने अपने घोड़े की चाल धीमी कर ली और उन दोनों शत्रु अश्वारोहियों (सवारों) को पास आने दे एकदम उन की ओर फिरा और उन में से एक को हुक्म दिया कि अपने साथी का सिर काट ले। उस ने उस की (नादिर शाह की) शक्ति के प्रभाव से दब कर बिना आगा पीछा सोचे, तत्काल उसी तलवार से—कि जो नादिर शाह का सिर काटने के लिये चला आ रहा था—अपने साथी का सिर काट लिया। तत्पश्चात् उस ने अपनी भागी हुई सेना को फिर से एकत्रित कर युद्ध किया और विजय प्राप्त की।

पाठक मैं आशा करता हूं कि आप मन:शक्ति के प्रभाव को भली भांति समझ गये होंगे। ऐसे असंख्य उदाहरण हैं कि जिन से मन:शक्ति की प्रबलता पाई जाती है। उपर्युक्त उदाहरणों से पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि मन:शक्ति और कुछ नहीं केवल सच्ची इच्छा है, किन्तु दृढ़

बात (जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है) आवश्यकीय है कि उस में किसी प्रकार की न्यूनता, भ्रम, सन्देह, अथवा कचापन नहीं होना चाहिये। कचापन अथवा न्यूनता ही उस की सिद्धि में बाधक है। जितने अंश में यह कचापन अथवा न्यूनता होती है उतने ही अंश में उस की सिद्धि में कमी रह जाती है, और किसी प्रकार की क्षति न होने से—त्रुटि न होने से—इच्छित परिणाम में किसी प्रकार निष्फलता नहीं होती, जैसा कि पाठक उपर्युक्त उदाहरणों में देख चुके हैं। मिसाल के तौर पर नादिरशाह के उदाहरण ही को ले लीजिये कि उस ने अपने दृढ़ संकल्प के प्रभाव से उस सवार से उस के साथी का सिर कटवा ही लिया। आज्ञा देते समय उसे इस बात की लेश मात्र भी शंका नहीं थी कि वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं करेगा, बल्कि उसे दृढ़ विश्वास था कि वह इच्छा न होते हुए भी मेरी आज्ञा का पालन करेगा उसे विवश हो आज्ञा पालन करना पड़ेगा और पाठकों ने देखा कि वैसाही हुआ भी।

अतएव मानना पड़ता है कि जिस प्रकार मनःप्रकृति एक अपूर्व प्रकृति है उसी प्रकार उस का प्रभाव भी अपूर्व ही है। किन्तु पाठकों को इस जगह यह उत्कंठा होना बहुत सम्भव है कि यह प्रभाव क्यों और किस प्रकार होता है; और हम पाठकों को उत्कंठित रख आगे बढ़ना उचित भी नहीं समझते।

यह प्रभाव क्यों और किस प्रकार होता है।

इस बात के जानने के लिये कि "यह प्रभाव क्यों और किस प्रकार होता है?" वायु में जो कम्पन (Vibrations) होते हैं, उन का ज्ञान प्राप्त कर लेना जरूरी है। कम्पन का ज्ञान हो जाने पर यह बात बहुत सुगमतापूर्वक समझ में आ जायगी। अतएव इन का ज्ञान लेना जरूरी है।

जिस प्रकार पानी में कंकड़ डालने से लहरें उठने लगती हैं, कुछ अंश में उसी प्रकार की लहरें शब्द द्वारा वायु में उत्पन्न हो जाती हैं। पानी और वायु में होने वाली लहरों के क्रम में अन्तर इतना ही है कि

पानी की लहरें एक ही दिशा में होती हैं, किन्तु वायु में होने वाले कम्पन (लहरें) न्यूनाधिक सब दिशाओं में होते हैं, क्योंकि शब्द न्यूनाधिक सब दिशाओं में सुनाई देता है।

किन्तु पानी में जो लहरें पैदा होती हैं वे पानी में कंकड़ के डालते ही नज़र आने लगती हैं; फिर क्या कारण कि शब्द द्वारा जो वायु में कम्पन होते हैं वे नज़र नहीं आते, अतएव क्योंकर मान लिया जाय कि पानी के सदृश वायु में भी कम्पन—लहरें—होते हैं ?

विचारपूर्वक देखने पर हमें इस का उत्तर स्वतः मिल जायगा कि पानी एक ऐसा पदार्थ है कि जिस को हम देख सकते हैं, वह हमें नज़र आता है; और इसी लिये उस में होनेवाली हरकतें अथवा लहरें भी हमें नज़र आती हैं। किन्तु वायु ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसे हमारी आंखें देख सकती हों—वह हमारी दृष्टिमर्यादा से बाहर है—वह हमें नज़र नहीं आता; इसी लिये उस में होने वाले असंख्य कम्पन भी हमें नज़र नहीं आते।

जिस प्रकार वृक्षों को हिलता हुआ देख कर हमें वायु के अस्तित्व का बोध होता है और विश्वास हो जाता है कि वायु कोई पदार्थ अवश्य है। इसी प्रकार वायु में होने वाले कम्पन के विषय में—उन के अस्तित्व के विषय में—भी मालूम किया जा सकता है। यही वृक्षावली कि जो हमें वायु के अस्तित्व का बोध कराती है, उस में होने वाले कम्पन का भी बोध कराती है—उस में होने वाले कम्पन का भी परिचय देती है। इन का हिलना ही साबित करता है कि वायु में कम्पन होता है। यदि वायु में कम्पित होने का गुण न होता तो क्या इन का हिलना सम्भव था ? यही क्यों यदि वायु में यह गुण न होता तो क्या हमारी श्वासोच्छ्वास क्रिया न रुक जाती ? वृक्षों की अपेक्षा हमें हमारी श्वासोच्छ्वासक्रिया, वायु में होने वाले कम्पन के अस्तित्व का अधिक और दृढ़ रूप से प्रमाण देती है। वायु में जो कम्पन होते हैं वे ही हमें हमारे प्रत्येक कार्य में सहायता देते हैं—संसार का प्रत्येक कार्य हम इन्हीं कम्पन की सहायता

से कर सकते हैं—यदि वायु में यह गुण न होता तो हमारा प्रत्येक सांसारिक कार्य यकायक रुक जाता। अतएव मानना होगा कि वायु में भी कम्पन होते हैं।

अब शब्द ही से कम्पन को ले लीजिये:—मनुष्य जिस समय कुछ बोलता है, हम तत्काल उसे सुन लेते हैं। यह सुन लेना ही साबित करता है कि वायु में कम्पन होते हैं—अर्थात् हम शब्द सुन लेते हैं इस का कारण भी यही कम्पन हैं; पाठक! कारण ही नहीं वरन ये कम्पन ही स्वयम् शब्द हैं, और जब शब्द स्वयम् कम्पन हैं तो कम्पन के अभाव में शब्द का अभाव स्वतः ही हो जाता है।

मनुष्य जिस समय कुछ बोलता है, तो बोलने के साथ ही, उस के मुख से निकली हुई वायु बाहर की वायु में धक्का लगा कर कम्पन उत्पन्न करती है और वे वायु उत्पन्न हुए कम्पन स्वाभाविक गति (क्योंकि कम्पन के साथ गति है—जहां कम्पन हैं वहां गति है और जहां गति है वहां कम्पन हैं।) के कारण हमारे कान के परदे पर—कि जिस में इन कम्पन को ग्रहण करने का स्वाभाविक गुण है—टकरा कर उस में भी उसी प्रकार के कम्पन उत्पन्न करते हैं—अर्थात् जिस प्रकार के कम्पन हैं उसी प्रकार के आघात से कान का परदा भी उसी प्रकार कम्पित होता है, और कान के परदे के कम्पित होने से ज्ञान तन्तुओं द्वारा उसी प्रकार का ज्ञानाशय (ज्ञानशक्ति) में आभास होता है और वे कम्पन हमें सुनाई देते हैं ऐसा हमें प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अतएव साबित (प्रमाणित) हुआ कि शब्द वास्तव में कोई वस्तु नहीं है, वरन् इन कम्पन ही को शब्द कहते हैं।

"मनुष्य के बोलने से वायु में कम्पन उत्पन्न होते हैं" ऐसा ऊपर कहा गया है; किन्तु हमें अभी थोड़ा और गहरा उतरना है। देखिये! मनुष्य के बोलने के साथ ही वायु में कम्पन उत्पन्न होने हों ऐसा ही नहीं है; वरन् बोलने की इच्छा करने के साथ ही वायु में कम्पन उत्पन्न होने लग जाते हैं। क्योंकि इच्छा के साथ गति और गति के साथ कम्पन हैं।

जिस प्रकार शरीर के बाहर वायु है उसी प्रकार शरीर के भीतर भी

वायु वर्तमान है—मौजूद है। जब शरीर के अन्दर भी वायु मौजूद है तो विचार होने के साथ ही उस वायु में—अथवा शारीरिक ज्ञानतन्तुओं में—कम्पन होने लगते हैं। विचारों के सूक्ष्म होने से ये कम्पन भी सूक्ष्म रूप में होते हैं, किन्तु ज्यों २ विचार स्थूल होते जाते हैं, त्यों ही त्यों कम्पन भी स्थूल रूप ग्रहण करते जाते हैं। इस प्रकार स्थूल होते २ वे इतने सख्त हो जाते हैं कि बाहर की स्थूल वायु में धक्का लगा कर कम्पन उत्पन्न कर देते हैं।

पाठक ! अभी थोड़े और गहरे उतरिये और अब शब्द को छोड़ केवल विचार ही को ले लीजये और देखिये कि केवल विचार ही से कम्पन होते हैं या नहीं ? देखिये, जिस प्रकार शब्द द्वारा वायु में कम्पन होते हैं, उसी प्रकार विचार से भी वायु में कम्पन होते हैं। मनुष्य के विचार अति सूक्ष्म और उन की गति बड़ी तीव्र होती है; अतएव इन विचारों द्वारा जो कम्पन उत्पन्न होते हैं वे इस स्थूल वायु में न हो सकने के कारण, वायु के उस भाग में होते हैं कि जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है; और वायु का ऐसा सूक्ष्म भाग " ईथर " ही हो सकता है कि जिस में इस गुण का समावेश हो सकता और होता है। अतएव विचारों द्वारा जो कम्पन उत्पन्न होते हैं, वे इसी ईथर में होते हैं। (इन्हीं कम्पन को, जरमनी के विद्वान् " ग्रेकुक " ने चित्र (प्लेट) लेकर साबित कर दिखाया है कि मनुष्य के विचारों से इसी ईथर नामक तत्व में विशेष प्रकार के कम्पन उत्पन्न हो कर विशेष प्रकार की (जिस प्रकार के विचार होते हैं उसी प्रकार की) आकृतियां उत्पन्न कर देते हैं। देखो प्रकरण तीसरा।

माना कि विचारों द्वारा भी कम्पन उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म होने के कारण वायु के " ईथर " नामक हिस्से (भाग) में होते हैं, किन्तु ऊपर ऐसा कहा जा चुका है कि कम्पन ही शब्द हैं, अर्थात् इन कम्पन के कान के परदे पर टकराने से शब्द सुनाई देता है और कान के परदे में इन को ग्रहण करने का स्वाभाविक गुण है, परन्तु विचारों द्वारा जो कम्पन उत्पन्न होते हैं वे सुनने में नहीं आते; फिर क्योंकर मान लिया जाय कि ईथर में विचारों से कम्पन उत्पन्न होते हैं।

विचारों द्वारा जो कम्पन उत्पन्न होते हैं उन के न सुने जाने का कारण है; जिस प्रकार आंख होते हुए भी बहुत निकट—(जैसे पलकों के बाल) और बहुत दूर की वस्तु—(जैसे उड़ता हुआ पक्षी)—देखने में नहीं आसकती; अतएव साफ़ साबित होता है कि आंख जितने अन्तर पर देखने के लिये निर्माण हुई है, उस से ज़्यादा नहीं देख सकती; इसी प्रकार कान भी जितने कम्पन को सुनने के लिये बने हुए हैं; उस से न्यूनाधिक कम्पन को नहीं सुन सकते।

कान कितने कम्पन को सुन सकता है अथवा ग्रहण कर सकता है, यह भी मालूम कर लिया गया है। विद्वानों का अनुमान—निश्चित किया हुआ अनुमान—है कि वायु में, जब तक एक सेकण्ड में १२ से ३२७६८ तक कम्पन उत्पन्न होते हैं तब तक कान का परदा उन्हें ग्रहण कर सकता है और हम शब्द सुनने को समर्थ होते हैं। एक सेकण्ड (अनुमान २॥ विपल) में १२ कम्पन से कम और ३२७६८ कम्पन से अधिक उत्पन्न होने की हालत में हमारा कानरूपी यन्त्र उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ रहता है। १२ कम्पन से कम होने की हालत में वे इतने निर्बल होते हैं कि कान के परदे तक पहुंच कर उसे नहीं हिला सकते और ३२७६८ कम्पन से अधिक होने पर उन की गति इतनी शीघ्र हो जाती है कि इतनी शीघ्रता से कान का परदा नहीं हिल सकता, और जब नहीं हिल सकता तो वे कम्पन बिना कान के परदे को हिलाये बराबर से निकल जाते हैं; अतएव दोनों अवस्था में—शब्द का अस्तित्व होते हुए भी—कम्पन का अस्तित्व होते हुए भी—हम उन्हें नहीं सुन सकते, क्योंकि हमारा कानरूपी यन्त्र केवल १२ से ३२७६८ कम्पन तक ग्रहण करने योग्य बना हुआ साबित होता है।

जब साधारण वायु में होने वाले कम्पन को सुनने के लिये भी हमारा कर्णयन्त्र असमर्थ है, तो विचारों द्वारा होने वाले कम्पन कि जो "ईथर" नामक वायु के हिस्से में होने,के कारण अत्यन्त सूक्ष्म और तीव्र गति होते हैं, कैसे सुने जा सकते हैं।

वायु का पृथक्करण करते हुए विद्वानों ने उसे "ऑक्सीजन", "नाइट्रो-

जीन" आदि कई भागों में विभक्त किया है। इसी प्रकार विभक्त करते २ एक बहुत ही आवश्यकीय भाग का पता लगा है कि जो सब जगह व्याप्त है, अथवा सर्वव्यापी है। इसी भाग का नाम "ईथर" है। इस के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं (देखो प्रकरण तीसरा)। इस में होनेवाले कम्पन की संख्या, वायु में होने वाले कम्पन की संख्या से आश्चर्यकारक सीमा तक बढ़ी हुई है। "ईथर" में एक सेकण्ड में १०४८५७६ से ३४३५९७३८३६८, बल्कि २३०५८४३००९२१३६९३९५२ तक कम्पन उत्पन्न होत हैं। (जब कम्पन की संख्या अन्तिम सीमा पर पहुंचती है तब इन्हीं कम्पन से "एक्सरेज़" नामक प्रकाश—अलक्ष्य प्रकाश की किरणें निकलने लगती हैं।) अब, जब कि ईथर में एक सेकण्ड में इतने अधिक कम्पन उत्पन्न होते हैं तो इन की गति (रफ़्तार Speed) भी विलक्षण ही होनी चाहिये; और होती है। ये कम्पन आनन् फ़ानन् में सैकड़ों बल्कि हज़ारों मीलों का सफ़र तै कर लेते हैं, और अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इन की गति कहीं रुकती भी नहीं। (देखो प्रकरण तीसरा)।

वायु में उत्पन्न हुए कम्पन नाश हो जाते हैं, किन्तु "ईथर" में उत्पन्न हुए कम्पन का नाश नहीं होता; वे अमर रहते हैं। इन कम्पन में एक विशेष प्रकार का गुण यह भी है कि जहां अपने समान कम्पन पाते हैं उन्हीं की ओर आकर्षित हो जाते हैं। ये कम्पन मनुष्य के बड़े काम की चीज़ हैं, और उसे उस के प्रत्येक विचार में सहायता देते हैं, क्योंकि आज पर्यन्त जितने भी मनुष्य इस संसार में हो गए हैं उन के विचारों (फिर वे भले हों वा बुरे) द्वारा उत्पन्न हुए कम्पन विद्यमान हैं और जहां अपने समान कम्पन पाते हैं वहीं आकर्षित होते और उन विचारों में वृद्धि कर उस मनुष्य पर (विचारक पर) अपना प्रभाव डालते हैं।

इस प्रभाव को अच्छे प्रकार समझने के लिये यों कीजिये कि एक मनुष्य सच बोलना अच्छा समझता है; अब जिस मनुष्य का यह विचार है, उस मनुष्य के विचार से जो कम्पन उत्पन्न हुए, उन की ओर उसी प्रकार के और २ कम्पन कि जो ईथर में पहिले से मौजद हैं, आकर्षित

होने लगते हैं, और उस मनुष्य को उस के उस विचार में सहायता देते हैं; इस सहायता द्वारा ज्यों २ उस मनुष्य का वह विचार संस्कृत और दृढ़ होता जाता है, त्यों त्यों उस से सम्बन्ध रखने वाले उत्तमोत्तम कम्पन, उस की ओर अधिक से अधिक आकर्षित होते जाते हैं और अपने प्रभाव द्वारा उस को उस विषय में नई २ खूबियां सुझाते जाते हैं; यहां तक कि—यदि उस ने इस प्रयत्न को जारी रक्खा तो—उसे उस विषय में अद्वितीय बना देते हैं। इस से विपरीत ज्यों २ मनुष्य इन से विरक्तता के विचार को हृदय में स्थान देता जाता है त्यों २ उस विरक्त भाव से सम्बन्ध रखने वाले कम्पन उस की ओर आकर्षित होने लगते हैं और वे कम्पन कि जो पहिले उस की ओर आकर्षित होते थे, पीछे हटना शुरू हो जाते हैं और यदि यह विरक्त भाव बराबर जारी रहा तो, उन पहिले कम्पन का उस के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता; बल्कि उन के स्थान में विरक्त भाव के कम्पन अपना प्रभाव अवश्य रूप से जमा लेते हैं और वह उस विषय की सर्वथा उपेक्षा करने लगता है।

"ये कम्पन अमर हैं और अपने समान कम्पन की ओर आकर्षित होने का जो इन में गुण है उस के प्रमाण स्वरूप मुझे एक बात याद आई है:—कि एक मनुष्य किसी विषय में कुछ सोचता है और सोचते सोचते कोई नई बात उस के ध्यान में आती है, कि जिस का उसे स्वप्न—स्मरण क्या ख़्याल तक नहीं था। उस की स्मरणशक्ति तत्काल ही इस बात की साक्षी देती है कि यह बात पहिले उस में नहीं थी। जब नहीं थी तो आई कहां से? यदि स्मरणशक्ति में होती तो वह स्वयम् इस बात की साक्षी क्यों बनती कि यह पहिले से उस में मौजूद नहीं थी? अतएव मानना पड़ेगा कि विचारने पर अवश्य कहीं से आई।

जिन ईथर के कम्पन के विषय में ऊपर कहा जा चुका है "कि जिस विषय में कुछ सोचा जाता है, उस से सम्बन्ध रखने वाले कम्पन सोचने वाले की ओर आकर्षित होते हैं और उस पर अपना प्रभाव डाल कर, उस को उस विषय में कोई नई बात सुझा देते हैं" इसी के अनुसार यह भी

मालूम पड़ता है कि वह बात भी इन ही कम्पन द्वारा हमारे विचार में आई; क्योंकि ईथर में प्रत्येक प्रकार के विचारों के कम्पन कि जो उन व्यक्तियों के विचारों से कि जो हम से पहिले इस विषय में सोच गए हैं—उत्पन्न हो कर—मौजूद हैं। ये कम्पन अनादि होने के कारण सदैव विचारने वाले को उस की योग्यतानुसार सहायता देते और उस के द्वारा प्रकट होते हैं और होते रहेंगे।

ईथर के कम्पन मनुष्य पर दो प्रकार से अपना प्रभाव करते हैं; या तो स्वयम् अपने विचारों से आकर्षित हो कर या विचारक के विचारों से प्रेरित हो कर—उस के विचारों द्वारा उत्पन्न हुए कम्पन के साथ मिल-कर—जिस व्यक्ति के निमित्त विचार किया जाता है उस पर अपना प्रभाव डालते हैं। यदि विचारक और प्रेरक दोनों का लक्ष्य एक है तो प्रभाव के होने में अधिक सुगमता होती है—वह प्रभाव द्विगुणित हो जाता है—प्रभाव की न्यूनाधिकता प्रेरक और आकर्षक की शक्ति पर निर्भर है, और एक व्यक्ति पर अथवा हजारों व्यक्तियों पर एक ही साथ एक ही प्रभाव डाल कर उन सब को अपना अनुयायी बना लेना यह भी प्रेरक की शक्ति ही पर अवलम्बित है। पाठक! मैं आशा करता हूं कि आप मनः-शक्ति और उस के प्रभाव—बाह्य प्रभाव—को अच्छे प्रकार समझ गये होंगे; किन्तु देखिये तो! हमें अपना प्रस्तुत विषय छोड़े बहुत समय हुआ, आइये अब उस के विषय में भी तो कुछ लाभदायक बात इस मनःशक्ति से मालूम कर लें।

आन्तरिक प्रभाव।

आन्तरिक प्रभाव के विषय में कुछ कहने से पहिले मुझे अमेरिका के मानसिक शास्त्रियों का किया हुआ एक प्रयोग स्मरण आ गया है कि जिसे पहिले कह देना उचित समझता हूं और बहुत सम्भव है कि पाठक उस ही से मनःशक्ति के आन्तरिक प्रभाव के विषय में बहुत कुछ समझ जायं।

उक्त विद्वानों ने इस बात को मालूम करने के अभिप्राय से " कि मनुष्य पर विचारों का प्रभाव कितना होता है और हो सकता है " और " मनुष्य

को जिस बात का दृढ़ निश्चय हो जाता है, उस का वैसा ही प्रभाव भी होता है या नहीं ?" एक ऐसे व्यक्ति को, कि जो न्यायालय (अदालत) से प्राणदण्ड की (सजाय मौत) शिक्षा (सज़ा) पा चुका था; न्यायालय को इस बात का विश्वास दिला कर कि "न तो इसे छोड़ा जायगा और न ज़िन्दा (जीवित) ही रक्खा जायगा, वरन् एक विशेष रीति से बिना इसे कष्ट पहुंचाए मारडाला जायगा", ले लिया। न्यायाधीश (जज) आदि को भी आश्चर्य हुआ कि ऐसी रीति क्या है? और साथ ही उस रीति के जानने की जिज्ञासा भी हुई। वे भी जिस जगह यह प्रयोग किया जाने वाला था गये। दूसरे विद्वान् और डाक्टर भी इस प्रयोग को देखने आये। इन सब दर्शकों को बिना कुछ बोले चाले शान्ति पूर्वक देखने का अनुरोध कर उक्त विद्वानों ने सब के देखते हुए अपना प्रयोग आरम्भ किया :—"प्रथम उस मनुष्य को एक मेज़ पर लिटा कर उस के हाथ उलटे बांध दिये गये कि वह अपने शरीर को टटोल न सके; साथ ही उस की आंखों पर भी पट्टी बांध दी गई कि वह जो कुछ क्रिया की जावे उसे भी न देख सके; इस प्रकार कानों के अतिरिक्त, उस के अपनी सत्य स्थिति जान लेने के सब प्रकार के मार्ग रोक दिये गये। तदनन्तर उक्त प्रयोग करने वालों में से एक व्यक्ति ने दूसरे को सम्बोधन कर के कहा कि "मैं इस की गरदन की मुख्य रक्तवाहिनी नस (नाड़ी) में नश्तर लगाए देता हूं कि जिस से इस के शरीर का सारा खून निकल जायगा और यह अत्यन्त क्षीण और कमज़ोर होकर मर जायगा"। दूसरों ने उस के इस कथन की पुष्टि की और उस ने उस की गरदन की रग को टटोल कर उस पर बल पूर्वक एक चुमटी ली, कि जिस से उक्त मनुष्य को अब तक की बातों, हाथ तथा आंखें बंधी होने, और अब इस प्रकार चुमटी लेने से विश्वास हो गया कि "वास्तव में मेरे नश्तर लगा दिया गया"। पास ही एक रबर की नली तय्यार थी, उस से नीचे रक्खे हुए बरतन में क़तरे २ (एक २ बूंद) पानी गिराया जाने लगा और उसे सुना २ कर कहा जाने लगा कि "खून निकलना शुरू हो गया"। उक्त विद्वानों में से एक इस प्रकार कहता और शेष उस के

कथन की साक्षी देते थे। इधर जो पानी बरतन में गिर रहा था उस का शब्द बराबर सुनाई दे रहा था। अतएव उस के इस विचार को, कि "मेरी गरदन में नश्तर लगा दिया गया", पुष्टि हो कर उसे निश्चय हो गया कि मेरे शरीर से रक्त निकलना शुरू हो गया (वास्तव में देखा जाय तो उस के शरीर से रक्त नाम मात्र को भी नहीं निकलता था)। थोड़ी देर इसी तरह हो २ चार २ बूंद रुधिर गिरने दे कर, एक ने कहा कि इस तरह धीरे २ रुधिर निकलने से बड़ी देर लगेगी, (दूसरों को सम्बोधन कर) यदि आप लोगों की राय हो तो मैं इस रग का मुंह और खोल दूं ? सब ने इस राय को पसन्द किया, अतएव उसी रग पर पूर्वानुसार फिर एक चुमटी लीगयी और कह दिया गया कि "अब इस रग का मुंह काफ़ी खुल गया है और थोड़ी देर में इस के शरीर का सारा रुधिर निकल जायगा"। साथ ही उस रबर की नली से—शनैः २ पानी भी अधिक गिराया जाने लगा और उस की मात्रा को यहां तक बढ़ाया कि उस से अखण्ड धार गिरने लगी। पानी रूपी रक्त से भरा हुआ एक बरतन खाली हुआ, दूसरा खाली हुआ, अब तो तीसरे की बारी आगई। ये सारी बातें शब्द द्वारा उस के विचार में लाई जाती रहीं, और अन्य उपाय न होने से क्रमशः उसे उन के विषय में निश्चय होता गया। दूसरा व्यक्ति उस की नब्ज़ (नाड़ी) और हृदय की गति (दिल की रफ़्तार) को देख कर कहने लगा कि "इस की नब्ज़ और दिल की हरकत बहुत मन्द हो गई है और यह भी थोड़ी देर में बन्द होने वाली है"। उस बिचारे को सुन कर मालूम कर लेने के अतिरिक्त अपनी वास्तविक स्थिति को जान लेने का कोई मार्ग नहीं रह गया था ; अतएव उसे जो कुछ सुनता गया उसी पर विश्वास होता गया, और ज्यों २ यह विश्वास दृढ़ होता गया त्यों २ वह अपने को उस स्थिति में समझता गया और उस की शारीरिक चेष्टाएं शिथिल और शून्य होती गईं। क्रमशः हाथ पैरों और समस्त शारीरिक अवयवों में कल्पित (नहीं पाठक, अब वह निर्बलता कल्पित निर्बलता के बजाय वास्तविक निर्बलता में बदल गई थी और वह वास्तव में उसी स्थिति में आ गया था) निर्बलता

में मानो घबराहट शुरू हुई, नब्ज़ और हृदय की गति में पूर्वापेक्षा असाधारण प्रकार का अन्तर हो गया। इस प्रकार विचारों में मग्न होते २ वह प्रायः ज्ञानरहित अवस्था में आ गया ; अतएव प्रयोग करनेवाले विद्वानों ने क्रमशः रक्तस्राव को बन्द कर कह दिया कि अब इस के शरीर से रक्त सर्वथा निकल गया। कुछ देर बाद दर्शक डाक्टरों से प्रार्थना की कि वे उस की परीक्षा कर उस की अवस्था के विषय में अपनी सम्मति दें। डाक्टरों ने कौतूहल पूर्वक उस की नब्ज़ और हृदय की गति को देखा, किन्तु उसे वास्तव ही में शोचनीय दशा में पा कर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और बारी २ से सब ने नब्ज़ और हृदय की गति को पूरे तौर पर परीक्षा कर यह राय दे दी कि " अब यह पांच मिनट से ज़्यादा ज़िन्दा नहीं रह सकता "। वह बिचारा विचारों ही विचारों से, शोचनीय दशा में तो पहिले ही आ चुका था, उस पर भी रहे सहे औसान इस राय ने खो दिये। उस के हृदयादि की गति क्रमशः शान्त होती गई और ठीक पांच मिनट बाद, डाक्टरों ने नब्ज़ और दिल पर हाथ रखा तो उसे बिलकुल ठंडा पाया।

इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। उस की मृत्यु का कारण स्पष्ट है। डाक्टरों की कही हुई सब बात पर उसे निरुपाय विश्वास करना पड़ा। सब तरफ़ से उस के विचार हट कर उसी एक विषय में आ गए, और निश्चय होता गया कि जो कुछ कहा जा रहा है यथार्थ है। यथार्थ मानने के लिये इस से सबल कारण और क्या हो सकता था कि वह न्यायालय से प्राणदण्ड की शिक्षा पाया हुआ था, और प्राण लेने का वचन दे कर ही प्रयोगस्थान में लाया गया था। उस ने इन सब बातों को सत्य माना। उस की बुद्धि उन्हें सत्य मानती और स्वीकार करती गई और अन्त में यही (सत्य मानना) उस की मृत्यु का कारण हुआ।

मानसिक शास्त्रियों का किया हुआ प्रयोग पाठकों ने देखा। अब थोड़ा मानसिक शास्त्र का अभिप्राय भी देख लीजिये, क्योंकि हमें उस से इस विषय में बहुत कुछ प्रमाण मिल जाने की सम्भावना है।

मानसिक शक्तियों का अभिप्राय है कि किसी प्राणी अथवा सजीव जन्तु का आकार बनना अथवा किसी अवयव का उत्पन्न होना अथवा जाता रहना, सर्वथा उस की मनःशक्ति पर अवलंबित है। प्रत्येक प्राणी का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर मालूम हुए बिना नहीं रहता कि उक्त प्राणी का आकार उस के स्वभाव और इच्छा के अनुसार बना हुआ होता है।

सिंह और रीछ की डरावनी सूरत उस के विकराल और उग्र स्वभाव, तथा गौ (गाय) की शान्त मूर्ति उस के शान्ति पूर्वक आयु क्रमण करने ही के कारण हैं। एक पाली हुई गौ के सींग एक जंगली गौ के सींग की अपेक्षा छोटे होते हैं; कारण यही कि एक पाली हुई गौ को भय कम होने के कारण अपनी रक्षा की इतनी चिन्ता नहीं होती जितनी कि एक जंगली गौ को अपनी जीवनरक्षा के लिये होती है। इस के अतिरिक्त उन के दिखावे और डील डौल में भी बहुत अन्तर होता है। यदि इसी पाली हुई गौ को पीछा जङ्गल में छोड़ दिया जाय तो कुछ काल में उस के सींग पीछे बड़े होने लगेंगे और उस के दिखाव और डील डौल में भी परिवर्तन हो जायगा।

अमेरिका में "इलॉप्स" नामक जाति का सर्प, बड़े ही चित्ताकर्षक रङ्ग का होता है; सर्पभक्षी पशु इसे अधिक ज़हरी होने के कारण नहीं खाते, वरन एक दूसरी जाति का सर्प कि जो कम ज़हरी होता है, उसे अधिक खाते हैं; अतएव इस ने अपने बचाव के लिये—अपनी जीवन रक्षा के लिये—उक्त जाति के सर्प के रङ्ग की नकल करनी शुरू की और कुछ अरसे में अपने वर्ण में बहुत कुछ परिवर्तन कर लिया।

कितने ही पेट के बल चलनेवाले प्राणी अपनी रक्षा के लिये पैर उत्पन्न कर लिया करते हैं; तो कितने ही हिंसक जन्तु दूसरे प्राणियों का चित्ताकर्षण कर भक्षण करने के लिये फूलों का आकार धारण करते हैं।

"कोलिमा पेरिलेक्टा" नामक जाति के पतंगों को दूसरे पक्षी बहुत

खाते हैं ; अतएव उस ने अपने बचाव के लिये एक वृक्ष के पत्ते की नकल करनी शुरू की, और अपने आप को उस वृक्ष के पत्ते के इतना अनुरूप बना लिया कि उस के उस वृक्ष पर बैठ जाने पर यह मालूम कर लेना कठिन हो जाता है कि इन में वह जन्तु कौन सा है। उस वृक्ष पर बैठने के बाद यह जन्तु भी पत्ता ही प्रतीत होता है। उस वृक्ष के पत्ते और इस जन्तु के पर को बराबर रख कर मुकाबला कीजिये :—पत्ते में जितनी और जिस प्रकार की नसें हैं, ठीक उतनी और उसी प्रकार की रगें इस के परों में हैं ; रंग भी प्रायः समान है। इस जन्तु ने ऐसी हूबहू उस वृक्ष के पत्ते की नकल कर और उसी वृक्ष पर बैठ कर अपनी जीवनरक्षा करने में कुछ कमी नहीं की, किन्तु फिर भी उस का वह मनोरथ सफल न हुआ। क्योंकि कितने ही पक्षियों ने इसे ढूंढ़ निकालने के लिये अपनी दृष्टि को और बढ़ा लिया कि जिस की सहायता से वे इस जन्तु को ढूंढ़ निकालते और अपना पोषण करते हैं।

कितनी ही मछलियों ने हिंसक जलचरों से अपने प्राण बचाने के लिये अपनी शरीररचना में परों की वृद्धि कर ली है और भी अनेकों जन्तुओं ने पर पैदा कर लिये हैं कि जिन की सहायता से वे हिंसक जन्तुओं से अपनी प्राणरक्षा करते हैं।

इसी प्रकार लता वृक्ष और पुष्प आदि भी अपनी आकृति में इच्छानुसार परिवर्तन कर लेते हैं। "केरोलास" नाम के पुष्प ने, इस इच्छा से कि मधु खानेवाले प्राणी उस का मधु न खा सकें, अपनी नली (Tube) को लम्बा बना लिया ; किन्तु मधु चूसनेवाले प्राणी उसे इतना सहज छोड़ देने वाले नहीं थे। उन्हों ने भी अपनी जिह्वा को बढ़ाना शुरू किया और उस को मधु चसने योग्य बना लिया। पहिले इस पुष्प की नली इतनी लम्बी नहीं थी और मधु बाहर ही रहता था और सरलता पूर्वक चूसा जा सकता था, पश्चात् इस ने अपनी नली को बढ़ा लिया कि जिस से मधु सुरक्षित रहने लगा।

उपरोक्त वर्णन से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि जब २ किसी प्राणी को अथवा जीवधारी को अपने रक्षण के लिये जिस २ अवयव की

आवश्यकता होती है तब २ वह उस अवयव को शनैः २ उत्पन्न कर लेती है और जब २ उसे उस अवयव की आवश्यकता नहीं रहती तब २ वह अवयव क्रमशः पीछा लोप हो जाता है।

अब इस बात के मान लेने में कोई हानि नहीं प्रतीत होती कि इच्छाशक्ति अथवा मनःशक्ति द्वारा शारीरिक अवयवों, शारीरिक इन्द्रियों और प्रत्येक प्रकार की शारीरिक रचना में इच्छानुसार परिवर्तन किया जा सकता है और मनःशक्ति इस प्रकार परिवर्तन करने को सर्वथा समर्थ है।

वास्तव में देखा जाय तो मनःशक्ति ही शरीर की रचना करती है। मनःशक्ति ही हमें मनुष्य बनाये हुए है। जुदी २ मनःशक्ति विकास पाई हुई होने पर एक ही मनुष्य की मुखाकृति जुदी २ प्रतीत होती है। अतएव यह कब सम्भव हो सकता है कि गर्भाधान अथवा गर्भवास के समय माता पिता की जैसी मनःशक्ति हो उस का प्रभाव सन्तान पर न पड़े ?

क्या जलचर, स्थलचर, पशु, पक्षी और वनस्पति आदि से भी मनुष्य की इच्छा हीनावस्था में है ? क्या वह इन के समान—नहीं नहीं उन से भी उत्तम प्रकार से—अपनी इच्छानुसार अपनी सन्तान में परिवर्तन नहीं कर सकता ? यदि न कर सके तो क्या वह इस योग्य नहीं है कि इन सब से भी उसे पतित समझ लिया जावे ?

पाठक ! कृपा कर, जिस प्रकार वाह्य प्रभाव का कारण आप देख चुके हैं उसी प्रकार इस आन्तरिक प्रभाव का कारण भी देख लीजिये कि यह प्रभाव क्यों और किस प्रकार होता है और शारीरिक रचना में इस प्रकार परिवर्तन क्यों हो जाया करता है ; क्योंकि प्रस्तुत विषय का मुख्यतः इसी के साथ सम्बन्ध है। आशा है कि पाठक थोड़ा धैर्य से काम के साथ ही साथ इस का भी निर्णय कर लेंगे।

वृक्ष की जड़ें पृथ्वी में और शाखाएं ऊपर को होती हैं, किन्तु मनुष्य शरीर रूपी वृक्ष ऐसा है कि जिस की जड़ें ऊपर (अर्थात् मस्तिष्क में) और शाखाएं (हाथ, पैर, आदि अवयव) नीचे को होते हैं। मनुष्य के शरीर में समस्त

आन्तरिक प्रभाव का कारण।

चित्र नम्बर १४

ज्ञानतन्तु।

शारीरिक अवयवों का मूलस्थान मस्तक है। इसी में प्रत्येक प्रकार की शक्ति है। मस्तक का जो कापालिक शिरा सूल (मेडूला आबूलंगेटा) नामक भाग है कि जिस के ऊपर से मध्यभाग ही को ज्ञानशक्ति का काम कहा जाता है इसी से मिला हुआ पृष्ठवंश (पीठ की हड्डी =Spinal cord) है। इन्हीं दोनों से शरीर में जितने भी चैतन्य वायु अथवा ज्ञान-तन्तु हैं निकलते हैं (देखो चित्र नं० १४)। ये तन्तु बहुत सूक्ष्म होते हैं। शरीर का नख से शिखापर्यन्त कोई भाग ऐसा नहीं है कि जो इन ज्ञान-तन्तुओं से छूटा हुआ हो। ये तन्तु शरीर के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भाग में यत्र तत्र विद्यमान हैं। प्रत्येक शारीरिक अवयव से उस के अधिकारानुसार कार्य्य लेना और शरीर की स्थिति देखते हुए उस की क्षति को पूरा करवाना और प्रत्येक शारीरिक अवयव और इन्द्रियों के काम को ज्ञानाशय में सूचना देना, इन्हीं ज्ञानतन्तु का काम है। जिस भाग के ये ज्ञानतन्तु अपना कार्य्य छोड़ देते हैं वह भाग प्रायः निर्जीव हो जाता है। किन्तु ये ज्ञान-तन्तु स्वतन्त्र नहीं हैं—ये अपनी इच्छानुसार कुछ कर नहीं सकते, ये सर्वथा मनःशक्ति के आधीन हैं। इन्हें मनःशक्ति से जैसी आज्ञा मिलती है उसी के अनुसार ये अपना कार्य्य करते हैं। मनःशक्ति की आज्ञा से किसी अंश में भी न्यूनाधिक नहीं कर सकते।

यदि इस जगह कोई यह शंका करे कि संयोगवश किसी समय हमारी इच्छा होती है कि हम कुछ न सुनें, किन्तु जब कोई बोलता है तब शब्द कान में पड़ कर हमें उस का ज्ञान होता ही है, फिर क्योंकर मान लिया जाय कि मनःशक्ति की आज्ञा बिना ये ज्ञानतन्तु कोई काम नहीं करते? इस के उत्तर में मैं कहूंगा कि यह प्रश्न उतना ही निर्मूल और मिथ्या है कि जितना एक और एक का योग तीन बता देना। ऐसा सम-झना केवल भ्रांति है, क्या आप इतनी जल्दी मनःशक्ति को भूल गये? क्या आप यह नहीं जानते कि मनःशक्ति द्वारा विचार के कितने दृढ़ होने पर प्रभाव होता है? क्या आप के उलटा सीधा विचार कर लेने मात्र ही से मनःशक्ति अपना प्रभाव दिखा देगी? यदि ऐसा ही हो तो कहना ही क्या? पाठक! थोड़ा विचार कीजिये कि आप ने केवल विचार ही तो

लिया है कि हम कुछ सुनेंगे नहीं, किन्तु ऐसा होने के लिये आप ने कुछ प्रयत्न नहीं किया। इस विचार के होने के साथ ही आप को उचित था कि कान से सम्बन्ध रखनेवाले जो ज्ञानतन्तु हैं, उन की ओर से अपनी मनःशक्ति को हटाते, फिर चाहे जितना ही उच्च शब्द क्यों न हुआ होता, आप कदापि नहीं सुन सकते थे।

जिस प्रकार मनःशक्ति को किसी कार्य्य से हटा लिया जा सकता है उसी प्रकार किसी कार्य्य में विशेष रूप से लगाया भी जा सकता है। जैसे किसी ओर दूर पर कोई शब्द हो रहा है, किन्तु स्पष्ट सुनाई नहीं देता, उस समय आप सब ओर से अपने ध्यान को हटा, कान और ध्यान दोनों उसी ओर लगा उस शब्द के सुनने की उत्कण्ठा में एकाग्र हो जाते हैं और परिणाम में आप उस शब्द को सुन लेते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक विषय में समझना चाहिये।

ऊपर हम देख आए तदनुसार शरीर के जुदे २ अवयवों पर इसी मनःशक्ति द्वारा प्रभाव डाला जा सकता, जिस अवयव को सबल बनाना चाहें बना सकते हैं और जिस अवयव को निर्बल करना चाहें कर सकते हैं; इस में शंका करने का कोई कारण नहीं है।

क्योंकि जिस अवयव को हम सबल बनाना चाहते हैं उस से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञानतन्तु उस भाग में पोषणतत्व अधिक पहुंचाते हैं और अधिक पोषण मिलने से वह भाग अधिक पुष्ट होता है। इसी प्रकार जिस अवयव को हम निर्बल बनाना चाहते हैं उस से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञानतन्तु उस भाग में पोषणतत्व का पहुंचाना कम कर देते हैं—और पोषण कम मिलने से वह भाग निर्बल हो शनैः २ जाता रहता है।

गर्भस्थ बच्चे और गर्भवती स्त्री का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है इस के विषय में पहिले विस्तार पूर्वक कहा जा चुका है। वह उस के शारीरिक अवयव ही के समान है; और जितनी सरलता से शारीरिक अवयव पर प्रभाव डाला जा सकता है उतनी ही सरलता से गर्भस्थ बच्चे पर भी प्रभाव डाल कर उसे अपनी इच्छानुसार बनाया जा सकता है।

—०—

(३) मनःशक्ति को दृढ़ और उपयोगी क्योंकर बनाया जा सकता है ?

मनःशक्ति को बलवान और उपयोगी बनाने के लिये संकल्प की दृढ़ता, एकान्त और एकाग्रता की आवश्यकता है। मनःशक्ति को दृढ़ और उपयोगी बनाने की इच्छा रखनेवाले अभ्यासी को सब से पहिले अपने मन को वश में करना चाहिये। उसे निरंकुश और स्वच्छन्द कदापि नहीं रहने देना चाहिये। मन की वृत्तियों को इच्छित विषय में दृढ़ता पूर्वक लगाये रखना चाहिये। चित्त बहुत चंचल है, वह इधर उधर भटकता ही फिरता है; अतएव उसे सब विषयों से खींच कर, केवल उसी विषय में लगा देना चाहिये कि जिस पर मनन् अथवा अभ्यास किया जा रहा है। और जिस विषय में एक बार सोचना शुरू किया जावे, उस का निर्णय किये बिना, उसे त्याग, दूसरा विषय कदापि नहीं लेना चाहिये। ऐसा करने से, अर्थात् बिना निर्णय किये किसी विषय को त्याग देने से, कोई बात कदापि स्थिर नहीं हो सकेगी और मन की चंचलता जैसी की जैसी बनी रहकर विचारों में दृढ़ता नहीं आ सकेगी।

मनःशक्ति को दृढ़ बनाने की इच्छा रखनेवाले को, किसी भय की आशंका से अथवा किसी के अप्रसन्न होने का विचार कर; अपने सिद्धान्त और अपने विचार को रोकना या दबाना नहीं चाहिये। ऐसा करने से वह एक प्रकार अपनी मनःशक्ति का खून करता है, उसे निर्बल समझता और निर्बल कर देता है। अतएव निर्भय होकर अपने विचार को—अपने सिद्धान्त को—स्पष्टता पूर्वक कह देना चाहिये।

अपनी आत्मा पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिये, और हृदय को मलीन और दुखी करने वाले कार्यों से सर्वथा बचाते रहना चाहिये। इस बात का दृढ़ संकल्प कर लेना चाहिये कि जिस समय जो बात मेरे सामने आवेगी उसे बिना अपनी बुद्धि की सम्मति लिये कदापि ग्रहण नहीं करूंगा; ग्रहण कर लेने बाद उस का पूरी तौर पर पालन करूंगा। निर्णय योग्य बात के सामने आने पर—उपस्थित होने पर—बिना

निर्णय किये कदापि नहीं जाऊंगा। मेरा निर्णय सर्वथा न्यायानुकूल और बुद्धिग्राह्य होगा।

अपनी मनःशक्ति को कदापि निर्बल नहीं समझूंगा और नित्य प्रति, इस बात का दृढ़ संकल्प करता रहूंगा कि मेरी मनःशक्ति क्रमशः बढ़ती जा रही है। मैं मनःशक्ति की हानि पहुंचानेवाली प्रत्येक बात से बचाता रहूंगा और उस को दृढ़ करनेवाली प्रत्येक बात का दृढ़तापूर्वक अवलम्बन करूंगा।

मनःशक्ति को बलवान बनाने की इच्छा रखनेवाले को दुष्कर्म से सर्वथा बचते रहना चाहिये; क्योंकि दुष्कर्म का स्मरण—(जिसे अपना हृदय बुरा समझता हो) मन को बहुत निर्बल बना देता है; और जब २ उस कर्म का स्मरण आता है, तब २ दिल में एक चोट सी लगती है—कि जो मनःशक्ति के लिये बहुत ही हानिकारक है। प्रथम तो—इस बात की पूरी सावधानी रक्खी जावे कि ऐसा कर्म ही न करे कि जिस से पछताना पड़े; यदि प्रसंगवश ऐसा कोई कार्य्य हो भी गया तो तत्काल उसे भूल जाने की चेष्टा करनी चाहिये—जैसे वह काम हम से कभी हुआ ही नहीं था—और आगे वैसा न करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिये।

जिस विषय में मनःशक्ति को दृढ़ और बलवान बनाने की इच्छा हो, उसी विषय पर घंटा दो घंटा रोज एकान्त में बैठकर मनन करना चाहिये और इस बात का दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि हमारे संकल्पानुसार हुए बिना कदापि न रहेगा। अपनी मनोवृत्तियों को सब ओर से हटा, उसी एक विषय में लगा देना चाहिये। अभ्यास के लिये एकान्त स्थान की बहुत आवश्यकता है; साथ ही चित्त के एकाग्र होने की भी आवश्यकता है; अतएव अभ्यास के लिये प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहिले, अथवा रात्रि को सोने से पहिले का समय बहुत अच्छा है। इस समय निस्तब्धता के कारण मनोवृत्तियों को एकाग्र करने में बहुत सुगमता होती है।

अभ्यास के समय इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिये कि मस्तिष्क में उस एक विचार के सिवा दूसरा विचार तो नहीं है। जहां कोई दूसरा

विपरीत होता नहीं कि तत्काल उसे निकाल बाहर करना और पुनः अपने पसंदी विषय पर आजाना चाहिये। इस प्रकार ज्यों २ इन मनोवृत्तियों को दूसरे विषयों से खींच कर एकाग्र करने का प्रयत्न किया जावेगा त्यों २ एकाग्रता के साथ २ यह शक्ति भी विकाश पाती और बलिष्ट होती जायगी। योग का सब से पहिला सिद्धान्त भी यही है "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है।

यों इस विषय में शुरू २ में कठिनाई अवश्य मालूम होगी किन्तु कुछ अभ्यास हो जाने पर हृदयबल के साथ २ पाठकों को आनन्द भी अपूर्व ही प्राप्त होगा।

किन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रक्खा जावे और पहिलेपहिल ऐसे कार्य्यों को लिया जावे कि जिन को अभ्यास के शुरू करते समय अपनी बुद्धि असम्भव या कष्टसाध्य न समझती हो। जिस प्रकार मकान की छत पर चढ़ने के लिये सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ना पड़ता है—एकदम उछल कर चढ़ने से चढ़ने के बदले औंधेमुंह गिरना पड़ता है—उसी प्रकार इस के अभ्यासी को भी अपनी योग्यता को—अपनी स्थिति को—ध्यान में रखते हुए, क्रमानुसार सरल से कठिन कार्य्यों को लेना चाहिये, कि जिस से बिना कष्ट और अरिष्ट की सम्भावना के कार्य्यसिद्धि हो सके; अन्यथा कार्य्य सिद्धि न होने से, उत्साह भंग हो कर मनःशक्ति को हानि पहुंचना सम्भव है। क्योंकि जिस समय हम कोई कार्य्य करते हैं और उस में सफलता नहीं होती, उस समय हमें जितना मानसिक कष्ट होता है इस का प्रायः सब को अनुभव होगा।

यह कष्ट मानसिक उन्नति में सब से अधिक बाधक है। अतएव ऐसे प्रसंगों को यथाशक्ति टाला जाय, इस पर भी यदि ऐसा समय आवे तो निराशाजन्य मानसिक कष्ट को स्थान न देकर तत्काल किसी दूसरी रीति से उस की सिद्धि के अर्थ परिश्रम कर उस में सफलता प्राप्त करना चाहिये। सारांश यह कि मनःशक्ति के अभ्यासी को निराश कदापि नहीं होना चाहिये।

पाठक ! मैं आशा करता हूं कि आप इस विषय को समझ गये होंगे। अब थोड़ा अपने प्रधान विषय की ओर ध्यान दीजिये, किन्तु इतना अवश्य स्मरण रखिये कि इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति के लिये इस विषय का पुनः २ मनन कर हृदयंगम् करना और इन बातों का पालन करना आवश्यकीय है। जितने आप इन के पालन करने में कृतकार्य्य होते जायंगे, उतने ही अपनी सन्तान को उत्तम बनाने में समर्थ होते जायंगे। सन्तानोत्पत्ति-विषय का तो मुख्यतः इस से सम्बन्ध है ही; किन्तु इस विषय के अतिरिक्त भी, यह विषय हमें हमारे प्रत्येक सांसारिक कार्य्य में अत्यन्त उपयोगी है। यदि हम इन का पूरे तौर पर पालन करना और काम में लाना सीख जायंगे तो निष्फलता हमारे लिये नाम मात्र को भी नहीं रह जायगी।

अब मैं उदाहरणों द्वारा यह प्रतिपादन करना चाहता हूं कि गर्भस्थ बच्चे पर किन २ बातों से अच्छे और किन २ बातों से बुरे प्रभाव होते हैं। किन्तु पाठक ! मुझे थोड़ी देर के लिये और क्षमा करें; मुझे एक और आवश्यकीय बात स्मरण आई है, अतएव आगामी प्रकरण में उसी का उल्लेख करूंगा।

प्रकरण सातवाँ ।

प्रेम द्वारा उत्तम सन्तति ।

गत प्रकरण में बतलाया जा चुका है कि "सन्तान को इच्छानुसार उत्पन्न करलेना मनुष्य की मनःशक्ति पर अवलंबित है।" किन्तु यह भी निश्चित बात है कि दम्पति की मनःशक्ति को पूर्णरूप से—सन्तानोत्पत्ति के लिये—उत्तम स्थिति में लाने वाला प्रेम के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

यह माना कि दम्पति में परस्पर प्रेम न होने पर भी वे पृथक् २ अपनी मनःशक्ति को विकसित कर सकते हैं; किन्तु पृथक् २ मनःशक्ति में और संयुक्त मनःशक्ति में आकाश पाताल का अन्तर होता है। स्त्री पुरुष दोनों अपनी २ मनःशक्ति को पृथक् २ विकसित करके सन्तान में उतनी उत्तमता का समावेश नहीं कर सकते, जितना कि संयुक्त मनःशक्ति द्वारा समावेश किया जा सकता है। अतएव मानना पड़ता है कि "प्रेम ही दम्पति को उत्तम बना कर और दोनों में उत्तम मनःशक्ति का विकास कर के, उत्तम सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाता है।"

और इस बात को तो पाठक जानते ही हैं कि "आदि में स्त्री और पुरुषजाति पृथक् २ न हो एक ही थी, पश्चात् परमात्मा ने सृष्टि की वृद्धि और प्रेम जैसी पुनीत शक्ति को विकसित करने के लिये इन दोनों जातियों को एक दूसरी से जुदा किया, किन्तु जुदा कर देने पर भी यह नियम निश्चित कर दिया कि जितनी भी तन से और मन से, ये दोनों पृथक् पड़ी हुई जातियां एक दूसरे में लीन हो जाती हैं उतनी ही सन्तान की उत्तमता बढ़ती है।"

इन दोनों पृथक् पड़ी हुई जातियों को (स्त्री पुरुष को) एक दूसरे में

लीन कर देने वाली—तन्मय कर देने वाली—मिला देने वाली—शक्ति और कुछ नहीं, केवल सच्चा और शुद्ध प्रेम है। प्रेम ही दम्पति को योग्य बनाता है और प्रेम ही बच्चे की रचना करनेवाले आवश्यकीय तत्त्व उत्पन्न कर बच्चे को सुन्दर, निरोग और बुद्धिमान् उत्पन्न करता है। अतएव देखना चाहिये कि प्रेम क्या वस्तु है?

प्रेम क्या वस्तु है?

इस की व्याख्या करना सहल बात नहीं है। यदि साधारण तौर पर देखा जाय तो यह एक ऐसी शक्ति है कि जिसे प्रायः सब कोई जानते हैं; तथापि प्रसंगानुसार कुछ कह देने की चेष्टा की जाती है।

प्रेम एक प्रकार की ईश्वरीय विभूति है। ईश्वर और उस की सृष्टि प्रेमरूप अथवा प्रेममय है। मनुष्य में, प्रेम एक उत्तम प्रकार की मनःशक्ति है। संसार का कठिन से कठिन कार्य्य भी, प्रेम द्वारा, सरलतापूर्वक हो जाता है। प्रेम एक ऐसी वृत्ति है कि जिस से मनुष्य का बिना किसी से प्रेम किये छुटकारा नहीं होता। मनुष्य को संसार में इस वृत्ति के अधीन बन कर किसी न किसी से प्रेम करना ही पड़ता है। ऐसा कोई प्राणी नज़र नहीं आता कि जिसे किसी से प्रेम न हो। प्रेमविहीन मनुष्य सर्वथा अनाथ के समान है। संसार में जितने बन्धन हैं सब प्रेमरूपी बन्धन के आगे निरर्थक हैं—अर्थात् संसार में प्रेम से बढ़ कर कोई बन्धन नहीं है।

जिस व्यक्ति को प्रेम है—प्रेम का अनुभव है—प्रेम को जानता है—वह समस्त संसार को प्रेममय देखता है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु उसे आनन्ददायी मालूम होती है। उसे किसी से द्वेष नहीं होता। उसे किसी से वैर नहीं होता। वह सब को भलाई की नज़र से देखता है। प्रत्येक बात उसे रमणीय लगती है। प्रत्येक दृश्य उसे मन को मुग्ध करनेवाला प्रतीत होता है। वृक्ष और लता उसे विनोद दिखानेवाली और आह्लाद-कारक बनती हैं। पक्षियों का शब्द उसे उत्तम संगीत का काम देता है। पानी के बहने और हवा के चलने का शब्द उस के लिये प्रेमवार्त्ता के

अवस्था को चरितार्थ कर दिखाते हैं। वही सच्चे प्रेम को निभाते हैं और ऐसी अवस्था में ही दम्पति आनन्दपूर्वक रहते हुए सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं। किन्तु पाठक! इस पुनीत और अपूर्व शक्ति का हमारे शरीर में स्थान कौन सा है? इसे भी तो देख लेना चाहिये।

प्रेम एक प्रकार की मनःशक्ति है—ऐसा ऊपर कहा जा चुका है, और प्रत्येक प्रकार की शक्ति का स्थान शरीर के सर्वोत्तम भाग मस्तक ही में होता है; अतएव इस शक्ति का स्थान भी मस्तिष्क ही में होना चाहिये।

प्रेम का स्थान।

“शरीर-रचना-शास्त्र” (Physiology) बतलाता है कि मस्तक में जुदे २ भाग हैं; और “मस्तिष्क विद्या” (Phrenology) से साबित होता है कि इन जुदे २ भागों में जुदी शक्तियां हैं—अर्थात् इन जुदे २ भागों में जुदी २ शक्तियों के स्थान हैं।

मस्तक के, भवों (भ्रूप्रदेश) से बालों तक के भाग को “बृहत् मस्तिष्क (Cerbrum)” कहते हैं। इस में दो प्रकार की शक्तियों के दो जुदे २ स्थान हैं। प्रथमार्ध (भवों से आधे ललाट तक) अवलोकनशक्ति, और द्वितीयार्ध (आधे ललाट से बालों तक) आविष्कारिक शक्ति का स्थान है। इन से ऊपर जुदी २ शक्तियों के जुदे २ स्थान हैं।

मस्तक में ठीक पीछे को “कापालिक शिरामूल” (Medula Oblongata) नामक सब में मुख्य और महत्व का भाग है; यही प्राणशक्ति का स्थान है। इसी से मिली हुई रीढ़ की हड्डी (पृष्ठवंश Spinal cord) है। यहीं से समस्त शारीरिक ज्ञानतंतु उत्पन्न होकर शरीर के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भाग में फैले हुए हैं। (विशेष हाल प्रकरण छठे में वर्णन किया जा चुका है)।

इसी कापालिक शिरामूल के दोनों ओर के भाग को—कि जो प्रायः इसी से मिला हुआ किन्तु पृथक् है—“लघु मस्तिष्क” (Cerebellum) कहते हैं। यही प्रेमशक्ति का स्थान है। इस भाग में भी जुदे २ प्रेम के जुदे २ स्थान हैं। ईश्वरप्रेम, देशप्रेम, जातिप्रेम, कुटुम्बप्रेम, माता,

चित्र नम्बर १५

(मस्तिष्क)

चित्र नम्बर १६

(१) कापालिक मूल से निकल कर यही नाड़ी आगे जुदे २ भागों में विभक्त हो आंख नाक कान मुंह आदि में फैल जाती है।

की उपेक्षा कर प्रथम ही को बाधित बनाता है। अन्यथा; कामवासनाओं में लिप्त होकर द्वितीय कारण ही को अपना लक्ष्य बनाते हैं। किन्तु ऐसा होना सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार का प्रेम स्थाई नहीं होता। ज्यों २ यौवन और सौन्दर्य में क्षीणता आती जाती है त्यों २ उन के प्रेम का भी ह्रास होता जाता है। और जिस प्रेम में ह्रास होता है अथवा ह्रास होना सम्भव है, वह सर्वथा प्रेम के नाम से विभूषित किये जाने के योग्य नहीं। प्रथम कारण में इस प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।

किन्तु नैसर्गिक-प्रेम इन दोनों कारणों की परवाह नहीं करता, ऐसी अवस्था में स्वयम्भूवृत्ति से प्रेरित होकर हृदय जिस को प्रेम कर लेता है—जिस को प्रिय समझ लेता है—उसी से प्रेम करने लगता है—उसी के अनुराग में अनुरक्त हो जाता है। ऐसे स्वयम्भू प्रेम का स्वयम् प्रेमी भी कारण बतलाने में असमर्थ रहता है; अतएव पूर्व जन्म के सम्बन्ध अथवा संस्कारों के अतिरिक्त इस का और कोई कारण न तो समझ में आता है और न बतलाया ही जा सकता है। यदि इस में—इस प्रेम में—उपर्युक्त कारण में से किसी एक कारण का अथवा दोनों कारण का योग हो गया तो फिर उस की उत्तमता का तो कहना ही क्या? ऐसी अवस्था में वह प्रेम सर्वथा अतुलनीय और अनुपम हो जाता है। यही प्रेम सब प्रकार के प्रेम में उच्च स्थान पाने के योग्य है। यही प्रेम मनुष्य को सुखी बना सकता है। यह दम्पति को अटूट सम्बन्ध में जोड़ देता है और परस्पर में लीन कर एक रूप बना देता है।

हमारे शास्त्रकारों का सिद्धान्त है—कि जिन दो व्यक्तियों में पूर्व जन्म का संस्कार सम्बन्ध होता है, वे ही (यदि माता पिता सावधानी से काम लें तो) इस जन्म में वैवाहिक सम्बन्ध में जुड़ते हैं और उन्हीं का वैवाहिक सम्बन्ध होता है। अतएव उन कर्मों की—उस सम्बन्ध की—अथवा उस प्रेम की सहायता लेकर इस प्रेम का विकास कर सुगमता पूर्वक वृद्धि की जा सकती है। यही नहीं बल्कि ऐसे दम्पति में, प्रेम का विकास करने में अन्य कारणों—अदृष्ट कारणों—की अपेक्षा, प्रकृति स्वयम् उन को

[illegible] बनाती है। और प्राकृतिक व्याख्या लिखने पर कर्त्ता को जितनी उत्तमता से सम्पादन किया जा सकता है इसे पाठक अच्छे प्रकार समझ सकते हैं। अतएव दम्पति को उपेक्षा न कर इस प्रेम को बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये।

अब देखना यह है कि दम्पति में इस प्रेम का प्रकाश किस प्रकार होता है। पाठक! मुझे किसी कवि का निम्नलिखित वाक्य स्मरण आता है; वह कहता है :—

" दर्शने स्पर्शने वापि, श्रवणे भाषणेपिवा। "

" यत्र हृदय द्रवत्वं, स स्नेह इति कथ्यते॥ "

" अर्थात् देखने से, स्पर्श करने (छूने) से, (प्रेमपात्र के विषय में) सुनने से और (प्रेमपात्र के विषय में) बातचीत करने—अथवा कुछ कहने से यदि हृदय द्रवित हो (पुलकित हो) उसी को स्नेह कहते हैं।"

किन्तु प्रेम-पात्र को देखने से, उस का स्पर्श करने से, उस के विषय में सुनने से और वार्तालाप करने से हृदय द्रवित क्यों होता है? इस का कारण भी देख लीजिये :—

आंख, कान, मुंह और प्रत्येक शारीरिक अवयव के ज्ञानतन्तु का ज्ञानाशय से सम्बन्ध है; शरीर में होनेवाले प्रत्येक कार्य की यही ज्ञान-तन्तु ज्ञानाशय में सूचना देते हैं; और ज्ञानाशय और उस के पार्श्ववर्ती प्रेमाशय का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है यह पाठक जानते ही हैं।

अतएव जब कोई सुन्दर वस्तु—अपनी इच्छित वस्तु—अथवा जिस वस्तु के देखने से चित्त प्रसन्न होता हो, देखने में आती है तो, उस के दृष्टि मर्यादा में आते ही, आंख से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञानतन्तु पर उस का प्रभाव होता है और उन्हीं के द्वारा ज्ञानाशय में प्रभाव होता है और वह प्रभाव ज्ञानाशय से प्रेमाशय को मिलता है—प्रेमाशय उस के बदले में ज्ञानाशय को प्रसन्नता और उत्तेजन देता है। ज्ञानाशय में उत्तेजन होने से उस से सम्बन्ध रखनेवाला प्रत्येक शारीरिक ज्ञानतन्तु उत्तेजित और प्रफुल्लित हो उठता है। चेहरे पर सुर्खी और प्रसन्नता, आंखों में चमक

और समस्त शरीर रोमाञ्चित और पुलकित होकर चेहरे और शारीरिक चेष्टाओं के हावभाव आदि से प्रेम टपकने लगता है।

इसी प्रकार प्रेमपात्र के विषय में, अथवा स्वयम् प्रेमपात्र के मुख से कोई बात सुनने से, उस के विषय में अथवा स्वयम् प्रेमपात्र से कोई बात करने से और उस का स्पर्श करने से भी इसी प्रकार प्रभाव होता है।

प्रेम एक प्रकार की मनःशक्ति है ऐसा हम ऊपर कह आये हैं।

प्रेम की शक्ति।

प्रत्येक मनःशक्ति में एक प्रकार का विशेष बल होता है; अतएव प्रेम में भी एक प्रकार का बल है; कि जो विद्युत्शक्ति (बिजली) से भी अधिक बलवान है।

जिस समय दो प्रेमी एक दूसरे के प्रेम में अनुरक्त होते हैं, उस समय प्रेमशक्ति का पूरा परिचय मिलता है और प्रेम का प्रभाव प्रत्यक्ष मालूम पड़ने लगता है। दोनों में आकर्षणशक्ति बहुत प्रबल हो जाती है और स्पष्ट मालूम होने लगता है कि उन में से हरएक, एक दूसरे की ओर कितना आकर्षित होता है, और जैसे २ वे एक दूसरे से दूर होते जाते हैं वैसे ही वैसे आकर्षण भी अधिक से अधिक बढ़ता जाता है। प्रेमशक्ति कभी जुदा रहना नहीं चाहती, वह सदा एक दूसरी शक्ति से मिल जाना और मिली हुई रहना चाहती है। यदि इस का प्रत्यक्ष अनुभव करने की इच्छा हो तो किसी ऐसे प्रेमी दम्पति को मिलते समय देखना चाहिये कि जब वे कुछ समय तक एक दूसरे से अलग रह कर मिले हों। ऐसे समय वे एक दूसरे को देखते ही सहसा दौड़ कर परस्पर चिपट जायंगे तभी उन के हृदय को सन्तोष होगा अन्यथा नहीं।

पाठक ! आप को इस शक्ति का कुछ न कुछ अनुभव तो अवश्य ही होगा और आप जानते ही होंगे कि प्रेमशक्ति कितनी बलवान होती है। राजा राजलक्ष्मी और राजसिंहासन को तिलाञ्जलि देकर इस शक्ति के आधीन हुए हैं; इसी शक्ति के कारण बड़ी २ लड़ाइयां हुई हैं, और अपनी प्राणप्रिया प्रियतमा की दर्शनाभिलाषा में अनेकों प्रेमियों ने प्राणोत्सर्जन किये हैं। इन दोनों जुदे पड़े हुए शरीरों को फिर से

एक दूसरे में जोड़ देनेवाली शक्ति यही प्रेमशक्ति है। प्रेमशक्ति इस पार्थिव शरीर की परवाह न कर दोनों के आत्मा को एक कर देती है। इसी लिये दो शरीर एक प्राण की कहावत मशहूर है।

प्रेम मनुष्य के शरीर में एक प्रकार की बिजली पैदा कर देता है। जिस प्रकार बिजली के तार को हाथ लगाने पर उस में एक प्रकार की सनसनाहट मालूम होती है उसी प्रकार के प्रभाव का दो सच्चे प्रेमियों को एक दूसरे का स्पर्श करते समय, अनुभव होता है और इस स्पर्श द्वारा उन्हें बिजली का सा प्रवाह अपने शरीर में फैलता हुआ मालूम होता है। अपनी प्रेममूर्ति को देखने के साथ ही इस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। और आलिंगन आदि के द्वारा, हरएक एक दूसरे को यह शक्ति देता और उस की वृद्धि करता है।

प्रेम का प्रभाव।

एक दूसरे के प्रेम में लीन हुए दम्पति की स्थिति को देखने से मालूम होता है कि वे कितने निर्मल, शान्तचित्त और परस्पर मिलेजुले रहते हैं। सच्चा प्रेम उन के हृदय को इतना सुशील बना देता है कि उन में से सारे दुर्गुण निकल जाते हैं और उन का पुनीत प्रेम से पावन हुआ मन दुर्गुण की ओर जाने का विचार तक नहीं करता। पवित्र मनःशक्ति दुर्गुणी शक्तियों को दबा देती है, इसी लिये सच्चा प्रेम उन के हृदय और मन को पवित्र बना देता है।

प्रेमजन्य आनन्द के बढ़ जाने पर वे पर्णकुटी और तृणशय्या पर भी स्वर्गीय सुख और अलौकिक आनन्द अनुभव करते हैं। वे आनन्द के नन्दनवन में विहार करते हुए अपना समय बिताते हैं। कुटिल प्रपञ्च उन के इस आनन्द में बाधा डालने को सर्वथा असमर्थ रहता है। वे इस के लिये उदारहृदय और मुक्तकण्ठ से ईश्वर का आभार मानते हैं।

उन के परस्पर व्यवहार आदि में इतनी सुशीलता आजाती है कि सूर्य उसे देख २ कर अचरज करते हैं। उन के सम्भाषण (बातचीत) में इतनी मधुरता आ जाती है कि जिस का उल्लेख करने के लिये हमें शब्द नहीं मिलते। वे एक दूसरे के लिये इतने उत्तम शब्दों और रुचिर भाषा का

व्यवहार करते हैं कि साधारण अवस्था में उन को मुंह से ऐसे शब्द कदापि
नहीं सुने जा सकते। वे एक चित्रकार के समान एक दूसरे के प्रत्येक
शारीरिक अवयव का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं कि जिस से उन के
प्रेम में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। वे सृष्टिसौन्दर्य का, प्राकृतिक दृश्यों
का, सांसारिक स्थिति का और अपने प्रत्येक व्यवहारिक कार्य्य का योग्यता
पूर्वक अवलोकन करने को भाग्यशाली होते हैं।

प्रेमी दम्पति को अपने गृहसंसार का प्रेम भी बढ़ता है, वे अपनी
कमाई को - अपनी उपार्जित द्रव्य को उचित रूप से व्यय करते हुए अपने
गृह को धन धान्य और सम्पत्ति का निवासस्थान बनाते हैं; ऐसे पुनीत
दम्पति के पवित्र गृह में साक्षात् लक्ष्मी आकर निवास करती है। वे
अपने गृह को उचित रीति से सुसज्जित और साफ़ सुथरा रखते हैं। वे
गृहसंसार और संसारकार्य्य को निर्विघ्न चलाने में कृतकार्य्य होते हैं।
प्रत्येक एक दूसरे को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने के लिये आतुर रहता है।
वे एक दूसरे का दिल दुखाने की चेष्टा! शिव शिव!! चेष्टा क्या, स्वप्न
में भी इस बात का विचार नहीं करते। प्रत्येक अपने साथी को प्रसन्न
रखने के लिये, सन्तुष्ट रखने के लिये और आराम देने के लिये अपना
आराम छोड़ने बल्कि एक दूसरे के लिये जान तक देने को तय्यार
रहता है।

वे अपनी इज़्ज़त और आबरू को कितना बचा कर रखते हैं—अपने घर
की बात कभी किसी दूसरे पर प्रकट नहीं होने देते। वे दुःशील और
दुश्चरित्र व्यक्तियों के पास बैठना तक पसन्द नहीं करते। वे अपने प्रेमी
अथवा प्रेमपात्र की अनुचित निन्दा और अपमान सहन करने में सर्वथा
असमर्थ रहते हैं। उचित निन्दा होने पर वे उस दोष से बचने का प्रयत्न
करते हैं। वे प्रत्येक कार्य्य को दृढ़ता और उत्साहपूर्वक करते हैं। भविष्य
के विषय में ऊंची २ उत्तम भावना करते हैं और उन को पूरा करने के
लिये उमंगसहित उद्योग करते हैं। वे अश्लील और अपवित्र विचारों
को हृदय में कभी स्थान नहीं देते। वे एक दूसरे से कपट और छल
प्रपञ्च नहीं करते। वे एक दूसरे से खुले दिल से बात करते हैं—और

आपस में कोई भेद नहीं रखते—कोई बात एक दूसरे से गुप्त नहीं रखती। पाठक! कहां तक कहूं, मैं तो कहते २ थक गया—यह प्रेम! स्वर्गीय सम्पत्ति! दैवी विभूति!!!' के अनन्य उत्तमोत्तम और अवर्णनीय प्रमाण हैं।

प्रायः ऐसा भी देखने में आता है कि पुरुष अपनी अर्द्धांगिनी नहीं पाठक! नहीं! हृदय की स्वामिनी को प्रेम करता है और हृदय से प्रेम करता है किन्तु अर्द्धांगिनी? ना! हत-भागिनी उस प्रेम के बदले में विरक्त भाव प्रकट करती है। जैसे २ पुरुष प्रेम को बढ़ाता है वैसे ही वैसे वह नाक भौं चढ़ाती और विरक्त भाव दिखाती है और समझती है कि ज्यों २ मैं इस से विरक्त रहूंगी त्यों २ यह मुझ से अधिक प्रेम करेगा और मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करेगा। किन्तु अफसोस! वह मूर्खा यह नहीं समझती कि मेरे इस व्यवहार से—मेरे इस बर्ताव से—मेरे प्रिय पति की मनःशक्ति और स्वास्थ्य को कितनी हानि पहुंचती है? और नारायण न करे कि पुरुष का ऐसा दुष्ट विचार हो और वह इस विरक्तता से क्रोधित हो अपने प्रेम का किसी कुपात्र में दान करे, तो कहो फिर उस का हृदयविदारक कष्ट किसे सहना पड़ेगा; और उस की वह इच्छा किस दिन फलवती होगी?

एकपक्षीय प्रेम से हानि।

देखो! ऐसी बातों से प्रेम का—बढ़ने के बजाय (स्थान में)—उलटा ह्रास होता है। ह्रास होने का कारण यही कि प्रत्येक प्राणजन्तु से सम्बन्ध रखनेवाला प्रेम विद्युत्शक्ति के समान है। जब पुरुष अपनी इस प्रकार की शक्ति स्त्री को देता है और बदले में स्त्री वैसी ही शक्ति पुरुष को नहीं देती तो पुरुष की वह शक्ति अपनी समान शक्ति न मिलने से निराधार रहती है और तथा नष्ट हो जाती है; और ज्यों २ यह शक्ति नष्ट होती जाती है—निर्बल होती जाती है—त्यों २ उस को मनःशक्ति को बहुत हानि पहुंचती है; मनःशक्ति को हानि पहुंचने से उस के शरीर, स्वास्थ्य और आत्मीय शक्तियों को हानि पहुंचती है और वह निर्बल—कमज़ोर—और शरीर से क्षय होता जाता है।

ऊपर जिस व्यवहार का स्त्री की ओर से उल्लेख किया गया यदि वैसा ही व्यवहार पुरुष की ओर से स्त्री के साथ किया जाय तो वह उस की अपेक्षा अधिक हानिकारक है। यदि स्त्री सुशीला और सच्चरित्रा है तो उस के कष्ट की सीमा नहीं रहती। घर में अटूट सम्पत्ति और सब प्रकार के वैभव क्यों न हों, वे उसे सुखी नहीं रख सकते; वह सर्वथा दुःखसागर में डूबी रहती है।

इस के अतिरिक्त यह बात सन्तान के लिये भी अत्यन्त हानिकारक है। ऐसी (एकपक्षीय प्रेम की) अवस्था में उत्पन्न हुई सन्तान सर्वथा अयोग्य और अपूर्ण उत्पन्न होती है। (जन्म लेने में—उत्पन्न होने में—सम्पूर्ण और अपूर्ण क्या? यह पाठकों को अगले प्रकरण में मालूम हो जायगा।)

प्रेम का अभाव और विवाह में सावधानी।

जिन दम्पति (स्त्री पुरुष=पति पत्नी) में परस्पर प्रेम नहीं है उन के लिये निश्चय पूर्वक समझ लेना चाहिये कि वे इसी संसार में रौरव नरक के समान यातना का अनुभव करते हैं। उन के लिये वैवाहिक सम्बन्ध लोहे की कठिन बेड़ियों के सदृश कष्टदायक है और जिस प्रकार बेड़ियों से हृदयविदारक खड़खड़ाहट का शब्द निकलता है उसी प्रकार उन में वैवाहिक सम्बन्धरूपी बेड़ियों से वैमनस्यरूपी अमङ्गलध्वनि का प्रादुर्भाव होता है कि जो उन के सुखमय जीवन को सर्वथा विषमय बना देता है। जो दम्पति परस्पर प्रेम करना नहीं जानते, या परस्पर प्रेम नहीं कर सकते, वे कभी किसी से प्रेम करने के योग्य नहीं हो सकते। उन्हें अपने सम्बन्धियों में किसी से सच्चा प्रेम नहीं हो सकता और न उन के प्रेम का विश्वास ही करना चाहिये। न उन में अपने गृह-संसार का प्रेम होता है और न उन में किसी कार्य ही को सम्पादन करने की शक्ति होती है। संसार उन के लिये दुःखमय है। वे कभी सद्गुणी, सुशील और शुद्ध हृदय नहीं होते। उन को अवश्यमेव कपटी, दुर्गुणी, मलीनात्मा और विश्वासघाती समझ लेना चाहिये।

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने स्त्री तथा पुरुष जाति को—प्रेम जैसी दैवी-शक्ति का परस्पर विकास करके आनन्दपूर्वक गृहस्थाश्रम का निर्वाह करते हुए उत्तम सन्तानोत्पत्ति के लिये एक दूसरे से जुदा पैदा किया है। यह अमोघ शक्ति विवाहितावस्था में ही विकास पाती और अनुभव में आ सकती है। अतएव वैवाहिक सम्बन्ध में जुड़ते समय पूरी सावधानी रखने की आवश्यकता है।

डाक्टर फ़ाउलर का यह कहना कि "Those who love in spirit should unite in person. अर्थात् जो आन्तरिक प्रेमपूर्वक एक दूसरे को प्रेम करते हों उन्हीं को परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध करना चाहिये" कितना अक्षरशः सत्य और यथार्थ है। डाक्टर महाशय के ये शब्द सर्वथा आदर रखने के योग्य हैं। किन्तु हा! हतभाग्य भारतसन्तान! ये शब्द तेरे लिये नहीं हैं, तू पराधीन—सब प्रकार पराधीन—है! तू इन शब्दों के अनुसार कार्य्य करने का अधिकारी नहीं है!! ये शब्द स्वतन्त्रता देवी की परमभक्त यूरोपियन जाति के लिये हैं कि जो सब प्रकार स्वतन्त्र है। वहां के स्त्री पुरुष अपनी पसन्द के अनुसार अपना साथी (अपने से उच्च अथवा अपनी समान श्रेणी में से) चुनते हैं और उसी के साथ अपने जीवन को जोड़ देते हैं।

भारतवर्ष की प्रथा ठीक इस के प्रतिकूल है। यहां के स्त्री पुरुष माता पिता के रहते अपने इच्छानुसार विवाह नहीं कर सकते—वे सर्वथा अपने माता पिता के अधिकार में होते हैं। उन को अपने माता पिता की योजना के वश हो आंख बन्द कर विवाह करना पड़ता है। उन से प्रायः सम्मति तक नहीं ली जाती। (पाठक! क्या गुड़ियों की नाईं शादी करने में सम्मति की आवश्यकता हो सकती है?) अतएव ये शब्द इस प्रकार बदल देने पर कि "* Those who utite in person should love in spirit अर्थात् जो वैवाहिक सम्बन्ध में बंध जायं उन को एक दूसरे से आन्तरिक प्रेमपूर्वक मिल जाना चाहिये।" सर्वथा हमारी स्थिति के

---

* हम उस महान् विद्वान् की स्वर्गीय आत्मा से क्षमा मांगते हैं कि हम ने उस के शब्दों का परिवर्तन कर अनुचित प्रयोग (Misuse) किया!

अनुकूल हो जायँगी। वास्तव में देखा जाय तो यह कथन अस्वाभाविक और विचित्र मालूम होता है—किन्तु भारतवासियों जैसे—युवकों—रूढ़ी के गुलामों के लिये यह कोई नई और अस्वाभाविक बात नहीं है। यहां के स्त्री पुरुषों के बहुत काल से इसी रीति के अनुयायी बने रहने के कारण, प्रकृति ही वैसी बन गई है, अतएव उन्हें इस में कुछ कठिनाई या विचित्रता प्रतीत नहीं हो सकती। किन्तु,

पाठक! इस बात को जानते हुए कि हमारे कहने से इस रूढ़ी को कोई बदलेगा नहीं, और जब तक स्त्रीशिक्षा का पूरे तौर पर प्रचार हो कर हमारा स्त्रीसमाज, अपने हानि लाभ को अच्छे प्रकार समझने के योग्य न हो जाय तब तक उसे इस विषय में कुछ अधिकार देना हम उचित भी नहीं समझते; तथापि विवाह को स्त्री पुरुष के जन्म भर के सुख दुःख का मुख्य कारण समझते हुए हम इस विषय में इतना अवश्य कहेंगे कि माता पिता को इसे सामान्य बात कदापि नहीं समझना चाहिये—बल्कि एक महत्व का कार्य्य समझ कर इस में पूरा ध्यान देना चाहियें। माता पिता को चाहिये कि अपनी सन्तान को वैवाहिक सम्बन्ध में जोड़ देने से पहिले, सौन्दर्य्य को दूसरे नम्बर पर समझ कर उन के आचार, व्यवहार, स्वभाव, और रुचियों आदि की समता पर अच्छे प्रकार ध्यान दे लेना चाहिये—विचार कर लेना चाहिये—उन के शारीरिक संगठन और प्रकृति आदि का मिलान कर लेना चाहिये। किसी प्रकार की भ्रमोत्पादक बातों में फंस कर अपनी आत्मा को—आत्मस्वरूपा सन्तान को—कुपात्र के फन्दे में हरगिज़ नहीं फंसा देना चाहिये। यदि वे अपने इस कर्तव्यपालन में उपेक्षा करेंगे तो वे एक प्रकार अपनी सन्तान का आत्मघात करने के दोषी—ईश्वर के न्यायालय में दोषी—बनेंगे। क्या ही अच्छा हो कि वे इस विषय में परोक्ष रीति से अपनी सन्तान की सम्मति भी लेलें। यदि वह गुलती करती हो तो उस विषय का हानि लाभ समझा कर उस का वह भ्रम दूर करें और अपनी योजना की उपयोगिता का उन के हृदय में विश्वास उत्पन्न करें। क्या मेरे भारतवर्षीय भाई, रूढ़ीजन्य भ्रम को त्याग कर इतना

करने की दया—अपनी सन्तान—प्राणों से भी प्यारी सन्तान—पर दया करेंगे। "ईश्वर उन्हें ऐसा करने में सद्बुद्धि दे" यही मेरी सच्चिदानन्द जगदीश्वर से हार्दिक प्रार्थना है।

प्रेम और—
सन्तानोत्पत्ति।

पाठक! इस बात को हम समय २ पर कहते आए हैं कि गर्भ और गर्भवती का घनिष्ट सम्बन्ध है; वह (गर्भ) भी एक प्रकार उस (गर्भवती) का शारीरिक अवयव ही है; और जिस प्रकार ज्ञानतन्तु द्वारा शारीरिक अवयव पर स्वतः प्रभाव पड़ता है या—इच्छित प्रभाव—डाला जा सकता है उसी प्रकार प्रेमाशय और ज्ञानाशय, ज्ञानाशय और ज्ञानतन्तु का अखण्ड सम्बन्ध होने से—प्रेम का भी सन्तानोत्पत्ति में अखण्ड प्रभाव होता है; अथवा यों कहिये कि प्रेम एक प्रकार की उत्तम मनःशक्ति है और मनःशक्ति का सन्तानोत्पत्ति से कितना सम्बन्ध है यह भी पाठक जानते ही हैं; अतएव साबित होता है कि सन्तानोत्पत्ति में प्रेम एक बहुत ही आवश्यकीय वस्तु है। अब देखना यह है कि (क) प्रेम का संतान पर क्या और कितना उत्तम प्रभाव होता है, और (ख) प्रेम के अभाव में सन्तानोत्पत्ति में अथवा संतान को—क्या हानि पहुंचती है?

(क) प्रेम
से लाभ।

दम्पति में परस्पर प्रेम—सच्चा प्रेम होने की हालत में यदि बच्चे का बीज उत्पन्न होता है और उसी अवस्था (प्रेम होने की हालत) में वह बीज वृद्धि पाता है तो बच्चा सब प्रकार सुन्दर, सुशील, निरोग, भाग्यवान्, बुद्धिमान् और सद्गुणी उत्पन्न होता है; ऐसा विद्वानों का निश्चय किया हुआ सिद्धान्त है।

इसी के समर्थन में हमें डाक्टर "फ़ाउलर" के कुछ शब्द स्मरण आते हैं। वह कहता है कि "Love is a transmitting agent" भावार्थ यह कि प्रेम के द्वारा ही माता पिता का शरीर और गुण आदि बच्चे में उतरते हैं। प्रेम प्रत्येक शारीरिक ज्ञानतन्तु को उत्तेजित कर उन में संजीवनी शक्ति उत्पन्न कर देता है। प्रेम से मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों में उत्तमता आती है और प्रेम मनुष्य के सौन्दर्य की वृद्धि भी कर

देता है; अतएव वे सब गुण सरलतापूर्वक बच्चे में उतरते हैं और इसी लिये प्रेम को " Transmitting agent " कहा गया है। इसी प्रकार का डाक्टर फाउलर का दिया हुआ एक उदाहरण भी पाठकों के विदितार्थ हम यहां उद्धृत करते हैं और आशा करते हैं कि पाठक, उस से अच्छे प्रकार समझ जायंगी कि प्रेम बच्चे को सब प्रकार कितना उत्तम बना देता है।

वह कहता है कि " एक दिन मैं और मेरी स्त्री सैर करते हुए जा "
" रहे थे कि यकायक दो अति सुंदर बच्चों पर हमारी दृष्टि पड़ी; बच्चे "
" बहुत सुन्दर, मधुरभाषी, ओजस्वी और नेत्रसुखद थे। उन के परस्पर "
" के व्यवहार से प्रत्यक्ष मालूम होता था कि उन दोनों बच्चों में परस्पर "
" बहुत प्रेम है। मेरी स्त्री को—उन बच्चों में इतनी उत्तमता का विकास "
" हुआ देख—उन के माता पिता को देखने की उत्कट इच्छा हुई। "
" उस ने उन्हीं बच्चों से उन के माता पिता का नाम और उन के निवास- "
" स्थान का पता पूछा और अपनी जिज्ञासातृप्ति के वश हो उन्हें देखने "
" को गई। उन से (बच्चों के माता पिता से) मिलने पर मालूम हुआ "
" कि वे विशेष सुन्दर नहीं थे, किन्तु उन दोनों (दम्पति) में गाढ़ा प्रेम "
" था, वे अत्यन्त सुशील और सद्गुणी थे, उन्हों ने एक दूसरे को कभी "
" कोई कटु वाक्य (कड़वा शब्द) तक नहीं कहा था और वे सच्चे प्रेम- "
" पूर्वक एक दूसरे में लीन हो रहे थे। " यही कारण था कि उन की सन्तान इतनी उत्तमता प्राप्त कर सकी। अब देखिये कि एक पक्षीय प्रेम बच्चे की कैसी दुर्दशा (मट्टीपलीद) कर देता है।

(ख) अभाव से हानि।

यदि दम्पति में परस्पर प्रेम नहीं होता तो उन की सन्तान में भी प्रेमवृत्ति पूरी विकसित नहीं होती। उन की सन्तान उन से प्रेम नहीं करती; उन की प्रतिष्ठा नहीं करती; उन का आदर नहीं करती; उन की आज्ञा नहीं मानती; सदैव झगड़ा फसाद किया करती है और उस का स्वभाव बड़ा क्रूर और निर्दयी होता है। वह प्रायः सुन्दर, गौर वर्ण और निरोग भी नहीं होती। ऐसे बच्चे सांसारिक कष्ट सहने में सर्वथा असमर्थ रहते हैं

और आपत्ति आने पर उसे दमन करने की शक्ति न होने से प्रायः आत्मघात कर लेते हैं।

"दम्पति में परस्पर प्रेम न होने अथवा एकपक्षीय प्रेम होने से सन्तान कैसी अपूर्ण और अयोग्य उत्पन्न होती है;" इस की सत्यता के विषय में हम उक्त डाक्टर फ़ाउलैर के दिये हुए उदाहरण में से दो एक उदाहरणों का पाठकों के विदितार्थ नीचे उल्लेख करते हैं।

वह कहता है कि "एक सुन्दर, निरोग, साधारणतः अच्छी मनःशक्ति-"
"वाली स्त्री अपने १४ वर्ष के दुबले, पतले, क्षीणकाय और शक्तिहीन"
"पुत्र को ले कर मेरे पास आई और कहने लगी कि "यह बच्चा न"
"तो निरोग रहता है और न बढ़ता ही है; लिखना पढ़ना तो दूर"
"रहा यह खेलता कूदता तक नहीं, और हर समय गूंगे के माफ़िक बैठा"
"रहता है; कृपया परीक्षा कर के बतला दीजिये कि इस में कुछ"
"बुद्धि आदि है या नहीं?" मैं ने दोनों माता पुत्र की परीक्षा की तो"
"मालूम हुआ कि उस की माता में निरोग, मज़बूत और ख़ूबसूरत"
"होने पर भी अपने पति से प्रेम करने की शक्ति ने विकास नहीं पाया"
"था—उस में यह शक्ति नहीं थी—इसी लिये सन्तान में अपूर्णता रही"
"और ऐसा निकम्मा बच्चा पैदा हुआ।"

इसी प्रकार का किन्तु इस से अधिक स्पष्ट एक दूसरा उदाहरण यही डाक्टर "फ़ाउलर" और देता है। वह कहता है कि "एक स्त्री अपनी"
"१६ वर्ष की पुत्री को ले कर आई और कहने लगी कि "यदि यह"
"कुछ ग़लती करती है और उस के विषय में इस से कुछ कहा जाता"
"है तो रोने लगती है, और धार्म्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त किसी दूसरे"
"प्रकार की पुस्तक नहीं पढ़ती।" डाक्टर फ़ाउलर मस्तिष्क विद्या बहुत अच्छी जानता था; अतएव उस ने उस लड़की के मस्तिष्क के जुदे २ भागों की जांच की तो, दृढ़स्वभाव, प्रेम और अवलोकन आदि शक्तियों का उस में सर्वथा अभाव पाया।

डाक्टर फ़ाउलर के "गर्भाधान के समय की, उस के मन की स्थिति

के" विषय में पूछने पर उस ने अपना हाल इस प्रकार वर्णन किया कि
"मैं ने, अपने सम्बन्धियों, स्वजनों और मित्रों की अनुमति न होने पर भी"
"एक ऐसे व्यक्ति के कृत्रिम प्रेम में फंस कर कि जिस की दुष्टता से अथवा"
"दुष्ट स्वभाव से मैं सर्वथा अज्ञात थी—विवाह किया। मेरे प्रारब्ध की"
प्रतिकूलता के कारण कहिये अथवा मैं ने जो अपने स्वजनों की उचित"
"सम्मति का निरादर किया उस के दण्ड स्वरूप कहिये; कि, मुझे,"
"अपने ससुराल पहुंचने पर अपनी ननदों (पति की बहिनों)"
"द्वारा अपने स्वामी के दुष्य और दुष्ट स्वभाव के विषय में कुछ ज्ञान"
"हुआ और मुझे अपनी भूल का कुछ आभास होने लगा। मेरे मन्द भाग्य"
"के कारण वह समय भी मेरे लिये दूर नहीं था कि मुझे स्वयम् इस"
"विषय का अनुभव हो जाय।"

"ससुराल पहुंचने के दूसरे दिन प्रातःकाल ही मेरे पति ने कुछ"
"क्रुद्ध हो मुझे बुलाया; उठने में कुछ यों ही देर हुई कि अधिक क्रुद्ध"
"हो गालियां देने लगा। अब मुझे अपनी भूल प्रत्यक्ष मालूम हो गई।"
"भविष्यत् की आशा पर कुछ काल मैं ने बड़े कष्ट से बिताया, किन्तु कष्ट"
"के असह्य हो जाने पर निरुपाय मुझे अपने श्वसुर के पास रहना पड़ा"
"कि जो उस समय समुद्रप्रवास में था। मैं सगर्भा भी समुद्रप्रवास"
"के कारण किसी दूसरे विषय में अपना मन नहीं लगा सकी, हर"
"समय शोकसागर में डूबी रहने लगी और स्वजनों की उचित सम्मति"
"न मान स्वयम् अपने विनाश का कारण बनने के फल स्वरूप विलाप"
"करने लगी। बाइबल पढ़ने और रोने के अतिरिक्त मेरे लिये और"
"कोई कार्य्य नहीं था। इसी अवस्था में (कन्या की ओर इशारा कर"
"के) इस का जन्म हुआ।"

"इस की (कन्या की) यह हालत है कि कारणवश यदि इस से"
"कुछ कहा जाता है या इस पर कुछ क्रोध किया जाता है तो घण्टों"
बैठी रोया करती है। जब से पांच वर्ष की हुई है, तब से हर समय"
"* बाइबल" को अपने सिरहाने अथवा छाती पर रक्खे रहती है।"

* ईसाइयों का धर्मग्रन्थ।

उपर्युक्त उदाहरण के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, उस का कारण उक्त जी के शब्दों ही से स्पष्ट है। पाठक ! देखा आप ने प्रेम के अभाव का सर्वनाशी प्रभाव !

प्रिय पाठक ! आप ने प्रेमशक्ति और उस के द्वारा सन्तान पर होते हुए प्रभाव को देखा, और यह भी देखा कि एकपक्षीय प्रेम और प्रेम के अभाव में सन्तान पर कैसा बुरा प्रभाव होता है। अब थोड़ा यह भी देख लीजिये कि हवस क्या और कैसी बुरी चीज़ है और उस का अथम् दम्पति और उन की सन्तान पर कैसा प्रभाव होता है।

प्रेम से ठीक विपरीत दशा का नाम हवस है। हवस मन की एक प्रकार

हवस और सन्तानोत्पत्ति।

की पाशवी—पाशवी से भी गिरी हुई अधम—वृत्ति है कि जो सारे शरीर को अधम प्रकार से उत्तेजित करती है। उस में शान्ति अथवा आनन्द लेश मात्र नहीं होता। हृदय में एक प्रकार की उद्विग्नता और जुनून होता है। मुखाकृति में परिवर्तन होकर बिलकुल अप्रिय प्रतीत होने लगती है। अधम और नीच विचारों द्वारा यह वृत्ति प्रबल होती है और मनुष्य को इस अधम वासना की तृप्ति के लिये—इस वृत्ति की प्रबलता को शान्त करने के लिये—विवश होना पड़ता है। हवस से स्त्री पुरुषों के शरीर में, स्वास्थ्य में और सद्गुणों में अत्यन्त न्यूनता आ जाती है और मनुष्य को सब प्रकार हानि पहुंचती है।

प्रेम से शरीर का प्रत्येक ज्ञानतंतु आनन्दित और उत्तम प्रकार से उत्तेजित होता है, किन्तु हवस उन्हें अयोग्य रीति से उकसाती है—अयोग्य रीति से उत्तेजना देती है; इस प्रकार उकसाए जाने पर—अयोग्य उत्तेजना मिलने पर—शारीरिक भागों और शक्तियों में हानि पहुंचती है।

हवस—नीच हवस—के फन्दे में फँसे हुए दम्पति को आनन्द अथवा शान्ति नहीं मिलती ; वे बारम्बार इस को (हवस को) तृप्ति करने की अभिलाषा से संयोग कर के शरीर की जीवनशक्ति देने वाला पदार्थ, वृथा ही नष्ट कर देते हैं और तृप्ति के बदले उलटी उस को वृद्धि करते हुए आनन्द और शान्ति से वंचित रहते हैं। बारम्बार संयोग करने से

शरीर बिलकुल निर्बल और बेहरा भद्दा और फीका पड़ जाता है। पक्काशय की पाचनशक्ति कम हो जाती है। विचारशक्ति सोचने से और आंखें देखने से इनकार करने लगती हैं। ज्यों २ शारीरिक शक्तियों का बल घटता जाता है त्यों २ यह तृष्णा प्रबल होती जाती है—कलेजा (Heart) और फेफड़े (Lungs) भी बिगड़ जाते हैं। शरीर इतना निर्बल और निःसत्व हो जाता है कि मनुष्य अपना निर्वाह करने के लिये भी कोई कार्य करने के योग्य नहीं रहता और यही सर्वनाशी—सत्यानाशी—हवस अनेकों युवा मनोरम मूर्तियों का अकाल (असमय) ही में बलिदान ले लेती है।

जिस प्रकार शराब पीनेवाले को शराब कोई स्वादिष्ट पदार्थ नहीं मालूम होता, परन्तु आदत होने से उस इच्छा को—उस दुर्वासना को—शान्त करने के लिये—उस को तृप्ति करने के लिये—बारम्बार शराब पीता है और उस को तृप्ति नहीं होती, बल्कि एक प्रकार आदत पड़ जाती है, इसी प्रकार हवसी मनुष्य को अपनी अधम हवस को तृप्त करने के लिये अपना सर्वनाश करने की आदत पड़ जाती है।

हवसी दम्पति में प्रथम तो प्रेम होता ही नहीं और यदि किञ्चित् प्रेम हुआ भी तो वह स्थाई नहीं होता। उन का प्रेम क्षणिक होता है। बल्कि ऐसा कहना और उचित होगा कि उन का प्रेम अपनी हवस पूरी करने मात्र के लिये होता है, किन्तु ज्योंही इस नीच वासना के वश हो काला मुंह किया नहीं कि उन को परस्पर- -एक दूसरे के प्रति—प्रेम की जगह—धिक्कार उत्पन्न होता है; और थोड़े ही दिनों में परस्पर घोर वैमनस्य (नाइत्तफ़ाकी) के बीज बोए जाते हैं कि जिन से कलह रूपी वृक्ष की उत्पत्ति होकर वे सदा के लिये एक दूसरे के सर्वथा विरोधी बन जाते हैं। डाक्टर फ़ाउलर कहता है कि "मेरा ४० वर्ष का उचित रूप से किया हुआ अभ्यास मुझे यह कहने को मजबूर करता है कि जो पुरुष में वैमनस्य को पैदा करनेवाला—उन के दिलों को तोड़ देनेवाला—बारम्बार (कामान्ध बनकर) किया जानेवाला संयोग—दुर्योग—ही है।"

संयम की सुघर का, ऐसी हीन दशा में आकर वो धीका छोड़ देती हो ऐसा नहीं है; वह क्रमशः बढ़ती रहती है और उपहार रूप अधम सन्तान को जन्म देती है, अर्थात् मनुष्य के पाशवी * वृत्तियों में प्रवर्त होने के कारण उस में बुरे जोश पैदा हो जाते हैं और इसी लिये सन्तान पागल, आलसी, निर्दयी, क्रूर और पशुतुल्य उत्पन्न होती है; वह ग्रह भी नहीं जानती कि दया, ममता, सहिष्णुता, सुशीलता, प्रेम और सद्गुण किसे कहते हैं !

संसार में प्रायः ऐसी २ मुखाकृति के मनुष्य देखने में आते हैं कि जिन को देखने के साथ ही हंसी—हंसी ? पाठक ! हंसी नहीं एक तरह रोना आता है—रोना आता है उन के माता पिता के कुकर्मों का स्मरण कर के कि जिन्हों ने मनुष्य हो कर और अपने नफ़्स (दुर्वृत्तियों) पर क़ाबू न रख कर, हवस जैसी दुर्गुणी और पाशवीवृत्ति के गुलाम बन अपना और अपनी सन्तान का सर्वनाश कर दिया। हवस से मनुष्य के समस्त शरीर और शारीरिक शक्तियों में ऐसी खींच तान मच जाती है कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं—शारीरिक इन्द्रियां तो निर्बलता के कारण शिथिलता द्वारा अपनी अशक्ति की सूचना देती हैं और वह उस नीच वृत्ति के वश हो नीच विचारों द्वारा उन की अशक्ति की परवाह न कर—उन्हें उस अधम कार्य के करने को विवश करता है। अतएव खींच तान होना स्वाभाविक बात हैं—ऐसी अवस्था में उत्पन्न हुई सन्तान कितनी बदसूरत होती हैं इस बात का पूरे तौर पर उसी समय अनुभव हो सकता है कि जब इसी प्रकार की कोई सूरत पाठकों के देखने में आवे।

अब हम दो एक उदाहरण ऐसे देना चाहते हैं कि जिन से हवस द्वारा उत्पन्न होनेवाली अधम सन्तान की अधमता पाठकों के यथार्थ विदित हो जाय :—

---

* मैं बिचारे पशुओं को वृथा दोष देता हूँ। क्योंकि वे हवस के वश हो कर बिना ऋतुकाल आये कभी ऐसा कुकर्म नहीं करते।

"(१) सन् १७२० में एक ८५ वर्ष का बुड्ढा एक हवसी स्त्री के साथ"
"अपनी चार स्त्रियों को छोड़ कर भागा ; इस नीच"
"की पापकहानी वास्तव में पापमय है। यह पापात्मा"
"१४ वर्ष की अवस्था में अपने चचा (काका) की लड़की से विवाह"
"कर पिता की पदवी को पहुंचा (सन्तान उत्पन्न होगई)। इस की"
"सब बहिनें विवाह करने से पहिले माता बन चुकी थीं। इस का पिता"
"प्रपिता, और कुटुम्ब के सभी पुरुष सारे हवसी थे। इस का पौत्र (पोता)"
"इन्हीं अधम आचरणों के कारण जेल गया और वहां आग लगाने पर"
"स्वयम् भी उस में जल मरा। इन सब को यह गुण वंशपरम्परागत"
"मिला था।"

उदाहरण।

"(२) दूसरे उदाहरण को लिखते हुए हमारा हाथ और लेखनी"
"दोनों कांपते हैं और आश्चर्य नहीं कि छपते समय प्रेस की मेशीनरी"
"भी कांपने लगी, किन्तु इस दुर्वृत्ति की उग्रता और बुरा प्रभाव बताने"
"के लिये हमें विवश हो उसे यहां देना पड़ता है। सहृदय पाठक !"
"यदि आप को यह उदाहरण अनुचित मालूम हो तो आप इसे इस"
"प्रकार त्याग दीजिये कि जिस प्रकार खाली पृष्ठ को उपेक्षा कर त्याग"
"देते हैं। देखिये :—

"रोम का नराधम, नरपिशाच, राक्षस, "नीरो" इतना अधम और"
"दुर्गुणी कैसे उत्पन्न हुआ ? इस की माता बड़ी दुर्गुणी थी, इस का"
"पापात्मा पिता भी सब प्रकार अपराधी, हवसी और दुर्गुणी था कि"
"जिस ने अधमातिअधम और नीचातिनीच कृत्य किये थे। "नीरो" को"
"अपने नीच माता पिता के समान शारीरिक आकार ही नहीं मिला था,"
"वरन् उन के दुर्गुणों ने भी रुचि पाकर उस में अवतार लिया था। ऐसे"
"अपूर्व ! पैशाचिक जोड़े से साक्षात् पिशाच का जन्म न हो यह कब"
"सम्भव हो सकता है। इसी नीच जोड़े से "नीरो" नामक नरपिशाच"
"का जन्म हुआ। "नीरो" में जो २ दुर्गुण थे वे उसे विरासत (पैतृक"
"सम्पत्ति के रूप) में मिले थे कि जो पीढ़ी दर पीढ़ी उग्र होते आये थे।"

प्रकरण—आठवाँ।

" सन्तान पर होते हुए प्रभाव "
(उदाहरणों सहित निर्णय)

पाठक ! अब तक सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सब आवश्यकीय विषयों पर विचार किया। अब केवल यह देख लेना शेष रह गया है कि गर्भवास के दिनों में इच्छित प्रभाव डाल कर अपनी सन्तान को इच्छानुसार योग्य कैसे बनाया जा सकता है? किन्तु सन्तान को इच्छानुसार उत्पन्न कर लेने की रीति मालूम करने से पहिले इस विषय का निर्णय कर लेना ज़रूरी है कि सन्तान के वर्ण में, शारीरिक संगठन में, स्वास्थ्य में और मानसिक शक्तियों में न्यूनाधिक्य और परिवर्तन क्योंकि होता है और इन बातों के बिगड़ने और सुधरने का कारण क्या है? क्यों इन बातों का निर्णय हो जाने पर हमारे रीति मालूम कर लेने का मार्ग बिलकुल सुगम हो जायगा; अतएव पहिले इन्हीं बातों का निर्णय किया जाता है।

सन्तान के बिगाड़ और सुधार के प्राकृतिक नियमानुसार दो भाग किये जा सकते हैं कि जिन में सन्तान के सब प्रकार के बिगाड़ और सुधार का समावेश हो जाता है :—

(१) सौन्दर्य :— { (अ) वर्ण की सुन्दरता ; (ब) शारीरिक सुन्दरता ; (स) स्वास्थ्य।

(और)

(२) मानसिक शक्तियों का विकास :— { कि जिस में सब प्रकार के सद्गुण और मानसिक शक्तियों का समावेश हो जाता है।

अतएव इसी क्रम से इन का निर्णय करना उचित होगा।

यदि वर्ण की सुन्दरता हो और शारीरिक सुन्दरता न हो, तो वह वर्ण की सुन्दरता सुन्दरता कही जाने के योग्य नहीं; इसी प्रकार यदि शारीरिक सुन्दरता हो और वर्ण की सुन्दरता न हो तो भी वह प्रिय नहीं मालूम हो सकती। सुन्दरता के लिये वर्ण की सुन्दरता और शारीरिक सुन्दरता, दोनों की समान रूप से आवश्यकता है; किन्तु इन दोनों के होते हुए भी यदि स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) अच्छा नहीं है तो जिस प्रकार, बिना गन्ध का सुन्दर पुष्प निरर्थक है, उसी प्रकार, स्वास्थ्य के अभाव में यह दोनों प्रकार की सुन्दरता निरर्थक है। अतएव साबित हुआ कि इन तीनों बातों का सौन्दर्य के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है ; इतना ही नहीं बल्कि इन तीनों का योग ही वास्तविक सौन्दर्य कहे जाने के योग्य है ; और इसी लिये ये तीनों बातें :—

(१) सौन्दर्य

(अ) वर्ण की सुन्दरता ;

(क) शारीरिक सुन्दरता; और

(ब) स्वास्थ्य ;

सौन्दर्य के अन्तर्गत समझी गई हैं :—

(अ) वर्ण की सुन्दरता।

("वर्ण की सुन्दरता" से अभिप्राय है "रंग की सुन्दरता", "गोरापन", या खूबसूरती")

यदि संसार में सब मनुष्यों का वर्ण एकसां (समान) होता, यदि सब गौर अथवा श्याम वर्ण ही होते तो एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी सुन्दर और असुन्दर शब्दों की उत्पत्ति ही न हुई होती और मनुष्य बहुत सी कठिनाइयों और आपत्तियों से स्वतः ही निस्तार (छुटकारा) पा गया होता। किन्तु ऐसा होने से उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के संसार वैचित्र्य सागर की अगाधता के किसी अंश में अवश्यमेव त्रुटि आ जाती; इसी लिये संसार वैचित्र्य के नियमानुसार वर्ण में भी विभिन्नता अथवा भिन्नता पाई जाती है।

संसार में जितने मनुष्य हैं, उन सब का वर्ण एकसा नहीं, अनेक मनुष्य

(१) एक देश में पैदा हुए और एक ही ऋतु में रहने वाले मनुष्यों को देखने—ध्यान पूर्वक देखने—पर यह बात मालूम हुए बिना नहीं रहती कि "उन में भी वर्णभेद होता है।" यूरोपियनों में सब ही यकसां गौर और हब्शियों में सब ही यकसां काले नहीं होते; उन में भी न्यूनाधिक गोरापन या कालापन अवश्य पाया जाता है और इसी न्यूनाधिक गोरेपन या कालेपन से उन के वर्ण में भेद मानना पड़ता है, और यह भेद ही देश तथा ऋतु के प्रभाव की सफलता में बाधक होता है।

(२) उन देशों में कि जहां ऋतु की समता है, अर्थात् जहां शीत प्रदेश के समान सरदी और उष्ण प्रदेश के समान गरमी का प्रभाव समान रूप से होता है और समय २ पर जुदी २ ऋतु अपना जुदा २ प्रभाव दिखाती हैं; अब यदि ऋतु के अनुसार ही वर्ण मान लिया जाय तो वहां गौर तथा श्याम—दोनों प्रकार के मनुष्य न होकर केवल सांवले रंग के ही मनुष्य होने चाहियें। किन्तु सर्वथा ऐसा ही नहीं होता; ऐसे प्रदेशों में विशेष कर दोनों प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ हमारे भारतवर्ष ही को लीजिये :—

यह एक ऐसा प्रदेश है कि जहां के निवासियों पर किसी समय तो "एफ्रिका" के रेगिस्तानों (मरुभूमि) को तपा देनेवाली गरमी के समान, गरमी और किसी समय बर्फ़ जमा देनेवाली सरदी का प्रभाव समान रूप से होता है; अतएव यहां के निवासी सर्वथा सांवले रंग के ही होने चाहियें; क्योंकि जितना सरदी उन्हें गौर बनाती है उतना ही गरमी उन्हें श्याम बना देती है। किन्तु ऐसा नहीं होता और उन के वर्ण में भेद पाया जाता है। यहां के निवासियों में जितने ही मनुष्य तो इतने गौर वर्ण होते हैं कि जो गोरेपन में यूरोपियनों को भी नीचा दिखाते हैं और जितने ही मनुष्य इतने काले होते हैं कि जो कालेपन में [illegible] हब्शियों को भी पिछिया नज़र नहीं लेने देते; ऐसी हालत में इसे केवल देश तथा ऋतु का प्रभाव ही कैसे मान लिया जा सकता है?

(३) देश तथा ऋतु को वर्ण का कारण मानने में [illegible]

कटनेवाली बात है, मुख्य बात यह है कि एक यूरोपियन कुटुम्ब अपने शीत प्रदेश को छोड़ उष्ण प्रदेश में आकर रहने लगता है, वहीं के अन्न जल से उस का पोषण होता है, वहीं से बच्चे की उत्पत्ति कटनेवाले पदार्थों की उत्पत्ति होती है और वहीं उस की वंशवृद्धि होती है, वहीं देश तथा ऋतु में उस की सन्तान बड़ी होती है; किन्तु इतना हो जाने पर भी उस के वर्ण में परिवर्तन नहीं होता। इसी प्रकार एक हब्शी कुटुम्ब भी अपने उष्ण प्रदेश को छोड़ शीत प्रदेश में जाकर रहने लगता है किन्तु उस की सन्तान भी गौर वर्ण न होकर श्याम वर्ण की उत्पन्न होती है।

अतएव निर्विवाद बात यह है कि किसी अंश में वर्ण पर देश और ऋतु का प्रभाव चाहे भले ही होता हो, किन्तु देश और ऋतु वर्ण पर पूर्ण रूप से अपना प्रभाव डालने में सर्वथा असमर्थ हैं और जब असमर्थ हैं तो हम अपने पाठकों को ऐसी कच्ची बात के मानने की कदापि सम्मति दे नहीं सकते।

अब रहा यह सवाल कि वंश और जाति का भी वर्ण पर असर होता है या नहीं? इस का उत्तर देते हुए इतना अवश्य मानना पड़ता है कि यदि माता पिता गौर वर्ण होते हैं तो बच्चा भी प्रायः गौर वर्ण ही पैदा होता है और यदि माता पिता श्याम वर्ण होते हैं तो बच्चा भी प्रायः श्याम वर्ण ही उत्पन्न होता है। किन्तु निश्चित रूप से इस बात को नहीं कहा जा सकता कि "सर्वथा ऐसा ही होता है" क्योंकि सैकड़ों ही नहीं बल्कि हजारों ही प्रत्यक्ष प्रमाण हमें इस के विरुद्ध मिलते हैं। पाठक! जाति तो दूर की बात है; आप किसी एक कुटुम्ब ही को ले लीजिये और इस बात के सत्यासत्य का निर्णय कीजिये और देखिये कि क्या उस कुटुम्ब भर में सब मनुष्यों का वर्ण समान है? यदि समान नहीं है तो क्या आप इन शब्दों के कहने में मेरे साथी नहीं बनेंगे कि "वंश और जाति भी बच्चे को वर्ण प्रदान नहीं कर सकते?"

किन्तु इस प्रकार निर्णय हो जाने के साथ ही, प्रश्न होता है कि जब देश, ऋतु, जाति और वंश, इस वर्णभेद के कारण नहीं हैं तो इस के

स्त्री का देहान्त हुआ। इस के कोई सन्तान नहीं हुई। इस के बाद इसी अंगरेज ने एक यूरोपियन स्त्री के साथ विवाह किया। इस स्त्री से एक कन्या उत्पन्न हुई कि जो माता और पिता दोनों के गौर वर्ण होते हुए भी आबेसियनों के सदृश सांवले रंग की थी।

लड़की सांवले रंग की क्यों पैदा हुई इस का कारण पाठकों के ध्यान में अवश्य आगया होगा कि उक्त अंगरेज के हृदय पर—पहिली स्त्री से प्रेम होने और दीर्घ काल के सहवास के कारण—उस की मुखाकृति का इतना अधिक प्रभाव पड़ चुका था कि वह उक्त कन्या के गर्भाधान होने तक उस के हृदय पर दृढ़तापूर्वक अंकित रहा और इसी लिये माता पिता के अंगरेज होते हुए भी कन्या सांवले रंग की उत्पन्न हुई।

(२) डाक्टर " फ़ाउलर " कहता है कि एक धनवी पुरुष ने एक निर्धन स्त्री के साथ विवाह किया। विवाह करते समय प्रतिज्ञा की कि " वह उसे किसी प्रकार कष्ट नहीं देगा किन्तु अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध रखने में वह स्वतंत्र रहेगा और वह (स्त्री) इस विषय में बाधक नहीं हो सकेगी "। कुछ समय बाद यही नीच पुरुष, पास रहनेवाले एक भठियारे की नौकरनी (दासी) पर आसक्त हुआ; और अपनी नीच वासना की तृप्ति के लिये उसे अपनी स्त्री की सहेली बना कर नौकर रख लिया। नौकर रख लेने के बाद उस ने, उस पर, अपनी नीच अभिलाषा प्रकट की; किन्तु, स्त्री सुशीला और सदाचारिणी थी, अतएव उस ने, उस की, इस नीच प्रार्थना को अस्वीकार किया। इस प्रकार कई बार असफलकार्य होने पर, दुष्ट ने नीच चेष्टाओं द्वारा उस की कामवृत्ति को उत्तेजित करना चाहा; किन्तु इस से भी उस पवित्रहृदया स्त्री के मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हुआ और उस ने अप्रसन्न होकर उस नीच को अपने कमरे से बाहर निकाल दिया। उन कुचेष्टाओं से उक्त स्त्री की कामवृत्ति उत्तेजित होने के बदले, स्वयम् उस दुष्ट की वृत्तियां इतनी प्रबल हो गईं कि विवश उसे अपनी स्त्री ही से उन की शान्ति करनी पड़ी। दुराचार के फल स्वरूप उसी रोज़ उस की स्त्री को

गर्भ रहा और कन्या उत्पन्न हुई कि जो सर्वथा उक्त स्त्री के अनुरूप थी कि जिस की कामवृत्ति को जाग्रत करने के लिये उस के (कन्या के) दुष्ट पिता ने कुचेष्टाएं की थीं।

पाठक! क्या यह मनःशक्ति का प्रभाव नहीं है? यदि नहीं है तो कन्या उक्त स्त्री के अनुरूप क्यों उत्पन्न हुई? अतएव मानना पड़ता है कि उक्त स्त्री से मिलने की अभिलाषा होने से उसी के वर्ण आदि का प्रभाव उस के हृदय पर अंकित हुआ और उसी समय गर्भाधान हो जाने के कारण उसी के अनुरूप कन्या का जन्म हुआ।

(३) स्पेन में एक प्रतिष्ठित अंगरेज़ की लड़की के सोने के कमरे में एक "ईथोपियन" जाति के पुरुष का चित्र था कि जो सोते समय उस की दृष्टि के समक्ष रहता था। दैववश गर्भवास के दिनों में भी उस का ध्यान उसी चित्र पर रहा और उसी चित्र के अनुरूप पुत्र उत्पन्न हुआ।

पाठक! क्या आप को इस विषय में कि वर्ण पर मनःशक्ति ही का प्रभाव विशेष रूप से होता है अब भी कोई शंका रही?

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर मान लेना पड़ता है कि गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष दोनों की; और गर्भवास के दिनों में केवल स्त्री की मनःशक्ति पर जिस प्रकार के वर्ण का प्रभाव विशेष रूप से अंकित हो जाता है वैसा ही प्रभाव सन्तान के वर्ण पर होता है और उस को भी उसी वर्ण का बना देता है। किन्तु ये सब माता पिता के हृदय पर पड़े हुए स्वाभाविक प्रभाव हैं; क्या हृदय पर जानबूझ कर ऐसे प्रभाव अंकित किये जावें तो उन का सन्तान के वर्ण पर प्रभाव होना सम्भव है?

इस के विषय में हम यथा समय कहते आये हैं कि चाहे अनायास हो—चाहे इरादतन (जानबूझ कर) हो—जैसा भी प्रभाव हृदय पर अच्छे प्रकार अंकित हो जाता है, अथवा जिस विषय में इच्छाशक्ति दृढ़ हो जाती है उस का प्रभाव हुए बिना कदापि नहीं रहता। प्रभाव अवश्य होता है। बल्कि इरादतन डाले हुए प्रभाव का असर विशेष रूप से होता है; क्योंकि वह, उस के नियम को समझ कर, इच्छाशक्ति को दृढ़

कर—पूर्णरूप से विकसित कर—और इच्छित प्रभाव को हृदय पर अंकित कर के डाला जाता है; इसी लिये उस का प्रभाव भी विशेष रूप से होता है। इस के अतिरिक्त एक लाभ यह भी होता है कि अच्छे प्रभाव को हृदय पर अंकित करने की चेष्टा करते रहने से, अनायास हृदय पर पड़े हुए बुरे प्रभाव का असर भी नहीं होने पाता। किन्तु पाठक! इस बात की सत्यता के लिये, कि जानबूझ कर डाले हुए प्रभाव का भी सन्तान पर असर होता है और आशातीत (उमीद से बाहर) असर होता है, कुछ इसी प्रकार के उदाहरण देने की आवश्यकता है कि जो नीचे दिये जाते हैं:—

(१) डाक्टर पी. एच. "सिकट" के यहां पाले हुए ख़रगोश थे। उक्त डाक्टर ने इसी बात की जांच के लिये इन ख़रगोशों पर ही प्रयोग किया। एक कमरे को नीला पोत कर और नीले ही रंग का उस में फ़र्श बिछा कर, उन ख़रगोशों को उस के अन्दर रक्खा—कुछ समय बाद इन ख़रगोशों के बच्चों में दो बच्चे नीले रंग के पैदा हुए, और उन के बच्चे भी नीले ही रंग के पैदा होते रहे।

(२) घोड़ों को पालनेवाले सौदागर, उन से अपने इच्छानुसार बच्चा ले लेते हैं और जैसा वे चाहते हैं उसी रंग और रूप का बच्चा पैदा होता है। इस के लिये वे यही उपाय करते हैं कि बच्चा लेते समय—जिस रंग और रूप के बच्चे की आवश्यकता होती है—उसी रंग का घोड़ा, घोड़ी के सामने खड़ा करते हैं, कि जिस से घोड़ी के दिल पर उसी रंग का प्रभाव होता है और उन्हें अपने उद्योग में सफलता होती है।

(३) डाक्टर "केशामा" कहता है कि रोम का एक न्यायाधीश बहुत ही बदशकल और ठिंगने क़द का था। इस का पहिला पुत्र भी उसी के सदृश बदशकल और ठिंगने क़द का हुआ। इस पुत्रप्राप्ति से उक्त न्यायाधीश को इस बात की आशंका हुई कि "कहीं उस की सब सन्तान ऐसी ही उत्पन्न न हो" अतएव उस ने इस अरिष्ट निवृत्ति के लिये प्रख्यात डाक्टर "गेलन" की सम्मति ली। डाक्टर ने उसे "इस अभिप्राय से कि उस की स्त्री जिधर को देखेगी उधर ही उसे सुन्दर प्रतिमा

नज़र आयगी, इस का प्रभाव उस के हृदय पर अंकित होगा और वैसी सुन्दर सन्तान की प्राप्ति हो जायगी " यह सम्मति दी कि " उसे अपनी स्त्री की शय्या के तीनों तरफ़—दाहिने बाएं, और पायँती—सुन्दर २ प्रतिमा बनवा कर रखना चाहिये " उक्त न्यायाधीश ने ऐसा ही किया। इस के बाद उस के जो सन्तान उत्पन्न हुई वह आशातीत सुन्दर थी।

(४) बोस्टन * शहर के निवासी एक तरुण दम्पति ने अपनी सन्तान को सुन्दर बनाने की इच्छा से, तलाश कर के एक अत्यन्त सुन्दर बच्चे का चित्र ख़रीदा, और इस अभिप्राय से कि समय २ पर उस चित्र पर दृष्टि पड़ती रहे, उसे उचित स्थान पर टांग दिया। गर्भाधान होने तक दोनों दम्पति ने ध्यानपूर्वक उस चित्र को अवलोकन किया और गर्भवास के दिनों में भी उसे बराबर अवलोकन करती रही। यथा समय उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई कि जो सर्वथा उक्त चित्र के अनुरूप था। पाठक ! आप उन के (चित्र और बच्चे) सादृश्य का इस से अच्छा अनुमान कर सकेंगे कि उन के यहां जो अतिथि (मेहमान) आते थे, वे उस चित्र को उस बच्चे का चित्र ही बतलाया करते थे।...............क्या यह देश जाति, ऋतु और वंश का प्रभाव है ? क्या इसे मन:शक्ति का प्रभाव नहीं माना जायगा ? नहीं ! नहीं !! ऐसा कदापि नहीं हो सकता ! हमें इसे मन:शक्ति का प्रभाव मानना पड़ेगा !

पाठक ! हम, अब तक किये हुए विवेचन और दिये हुए उदाहरणों से इस निश्चय पर आते हैं - हमारा यह सिद्धान्त स्थिर होता है—कि वर्ण में परिवर्त्तन करने का देश, ऋतु, जाति और वंश को, कोई अधिकार नहीं है और न वे बच्चे को वर्णप्रदान करते है, बल्कि मन:शक्ति पर पड़े हुए जुदे २ प्रभाव ही वर्णभेद के कारण हैं। देश, ऋतु, जाति और वंश जितने अंश में वर्ण पर अपना प्रभाव करते हैं वह भी मन:शक्ति की अनुकूलता होने पर—मन:शक्ति की सहायता होने पर—ही कर सकते हैं अन्यथा वे उस में परिवर्त्तन करने को सर्वथा असमर्थ रहते हैं, और मन:-

---

* अमेरिका में एक मशहूर शहर है।

शक्ति ही अपने प्रभावानुसार बच्चे को वर्णप्रदान करती है। मनःशक्ति इन कारणों की अपेक्षित नहीं है; वह प्रभाव करने में सर्वथा स्वतन्त्र है। मनःशक्ति पर जो प्रभाव अंकित होते हैं वे चाहे अनायास अंकित हुए हों अथवा जान बूझ कर अंकित किये गये हों, उन्हीं के अनुसार सन्तान पर प्रभाव हो कर उस के वर्ण में परिवर्त्तन हो जाता है। अब यदि अच्छा प्रभाव अंकित हुआ है तो सन्तान को अच्छा वर्ण मिल जाता है; और यदि बुरा प्रभाव अंकित हुआ है तो बुरा वर्ण मिलता है *।

अतएव सन्तान को अपने इच्छानुसार वर्ण प्राप्त करा देने के लिये इस बात के मालूम कर लेने की आवश्यकता है कि मनःशक्ति पर यह प्रभाव किस प्रकार अंकित किया जा सकता है—इस के मनःशक्ति पर अंकित कर देने की रीति क्या है? इस के विषय में परोक्ष रीति से पहिले बहुत कुछ कहा जा चुका है और स्वतन्त्र रीति से फिर कुछ कहने की चेष्टा की जायगी; किन्तु इस रीति के मालूम कर लेने से पहिले, साथ का साथ इस बात का निर्णय कर लेना भी आवश्यकीय प्रतीत होता है कि "शारीरिक सुन्दरता क्या है? वर्ण की सुन्दरता होने पर भी सौन्दर्य के लिये शारीरिक सुन्दरता की कितनी आवश्यकता है? और जिस प्रकार वर्ण में परिवर्त्तन करना मनःशक्ति का कार्य्य है, उसी प्रकार शारीरिक सुन्दरता में परिवर्त्तन करना किस का कार्य्य है; अर्थात् शारीरिक सुन्दरता में परिवर्त्तन होने का क्या कारण है?

(क) शारीरिक सुन्दरता।

"शारीरिक सुन्दरता" और "जिस्मानी खूबसूरती" ये दोनों समानार्थ वाची शब्द हमें मनुष्य शरीर में रही हुई उस सुन्दरता का बोध कराते हैं कि जो वर्ण के अतिरिक्त उस के शारीरिक संगठन में होती है; अर्थात् जिस का शारीरिक

---

* वैद्यक शास्त्र ने भी कहा है "पूर्वं पश्येदृतु स्नाता या दृशं नरमंगना" तादृशं जनयेत्पुत्रं ततः पश्येत्पतिं प्रियम्" [भावार्थ, अपनी सन्तान को जैसा बनाने की इच्छा हो, ऋतु स्नान करने पर वैसे ही आकृति को देखना चाहिये; पति को अथवा जो प्रिय हो उस को] सुश्रुत।

संगठन उत्तम प्रकार से हुआ होता है और जिस का प्रत्येक अवयव न्यूनाधिक न हो उचित सीमा में विकास पाया हुआ सशक्त और बलवान होता है।

जिस मनुष्य का शारीरिक संगठन अच्छा होता है, वह चाहे अधिक गौर वर्ण न हो तथापि उस के देखने के साथ ही चित्त एक प्रकार मुदित और प्रसन्न हो उठता है; बुद्धि उस को सुन्दर कहना स्वीकार कर लेती है; और इच्छा होते न होते भी ये शब्द मुंह से निकल ही जाते हैं कि "कितना सुन्दर व्यक्ति है"। क्या इन शब्दों का कहलानेवाला उस का वर्ण है? नहीं! क्योंकि :—

इस के विपरीत चाहे कोई व्यक्ति कितना ही गौर वर्ण क्यों न हो, यदि उस का शारीरिक संगठन उत्तम नहीं है और उस के अवयवों ने उचित सीमा में विकास नहीं पाया है तो वह कदापि नेत्रसुखद और प्रिय नहीं मालूम होता और न वह सुन्दर ही कहे जाने के योग्य है। फ़र्ज़ कीजिये—कल्पना कीजिये—कि एक मनुष्य बहुत ही गौर वर्ण है। किन्तु उस का शारीरिक संगठन बहुत ही भद्दे तौर पर हुआ है, अर्थात् आंखें कहीं जाती हैं, तो नाक कहीं जाता है, होंठ और मुंह भी अन्दाज़े से बढ़े हुए हैं, हाथ पैर छोटे २ और पेट आगे को निकला हुआ है, मुंह फिरा हुआ है, गरदन हद से ज़्यादा लम्बी या छोटी है, तो कहिये पाठक! क्या ऐसे व्यक्ति को सुन्दर कहा जा सकता है? क्या वह सुन्दर कहे जाने के योग्य है? मेरे ख़याल में तो वह चाहे कितना ही गौर वर्ण हो, फिर भी उत्तम शारीरिक संगठन का अभाव होने से सुंदर कहे जाने के सर्वथा अयोग्य है। अतएव मानना पड़ता है कि ये शब्द उस का वर्ण नहीं वरन् उस का उत्तम और यथायोग्य विकास पाया हुआ शारीरिक संगठन ही कहलाता है।

प्रत्येक शारीरिक अवयव की रचना का उचित सीमा से न्यूनाधिक होना ही शारीरिक सुन्दरता में बाधा डालता है और अपनी उचित सीमा अथवा हद में विकास पाना ही शारीरिक सुन्दरता कही जाती

है। अब यदि शारीरिक सुन्दरता और वर्ण की सुन्दरता का एक ही व्यक्ति में समावेश हो तो उस की सुन्दरता का तो कहना ही क्या है। अतएव वर्ण की सुन्दरता के साथ २ शारीरिक सुन्दरता भी अत्यन्त आवश्यकीय है कि जो सुन्दरता अथवा सौन्दर्य्य का मुख्य अंग है।

वर्तमान समय में, हमारी आर्य्य जाति में जैसा होना चाहिये, वैसा शारीरिक संगठन अथवा शारीरिक सौन्दर्य्य विरले ही भाग्यवान् व्यक्तियों में पाया जाता है; अन्यथा जितने भी मनुष्य देखने में आते हैं, प्राय: सब के शारीरिक संगठन में कुछ न कुछ विक्षेप अवश्य पाया जाता है। दिन २ इस विक्षेप की मात्रा बढ़ती ही प्रतीत होती है। प्राय: ऐसी २ सूरतें देखने में आती हैं कि जिन के देखने के साथ ही रोमांच हो आता है यदि ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाय तो सैकड़ों में एक मनुष्य इस योग्य मिलेगा कि जिस के लिये "शारीरिक सुन्दरता" शब्द का प्रयोग किया जाना सर्वथा उचित कहा जा सके। ऐसी अवस्था होते हुए भी समझ में नहीं आता कि क्यों इस की उपेक्षा की जा रही है? क्यों शारीरिक सुन्दरता के सुधारने की कोशिश नहीं की जाती? मनुष्य इस विषय से क्यों अज्ञान रहते हैं? अपनी आगामी सन्तान को क्यों नहीं सब प्रकार उत्तम बनाने की कोशिश करते? क्यों हम इस उपेक्षा के वशीभूत हो कर अपनी सन्तान को उत्तम शारीरिक संगठन से वंचित रखते हैं?

हमारे वर्तमान समाज की बड़ी विचित्र दशा है। एक ओर तो मनुष्य सुन्दरता के अभिलाषी हैं। जिस को देखो खूबसूरती का भूखा है—जिसे देखो सौन्दर्य्य की तलाश है—, बदसूरती को हर कोई नापसन्द करता है। जिन व्यक्तियों में सौन्दर्य्य की कमी है वे उपेक्षा किये जाते हैं, उन्हें कोई पसन्द नहीं करता। पसन्द न करना और उपेक्षा करना तो उदारता का काम है वरन् ऐसे व्यक्तियों से लोग घृणा तक करते हैं। जिस किसी मनुष्य को देखो आन्तरिक अभिलाषा यही है कि वह, लोगों की नज़र में स्वयम् भी सुन्दर प्रतीत हो, उसे अपना साथी (स्त्री) भी सुन्दर मिले और सन्तान भी सुन्दर ही उत्पन्न हो।

यह प्राकृतिक नियम है अथवा मनुष्य की स्वाभाविक बात है कि " जो वस्तु उसे प्रिय होती है, वह उस को अपने लिये आवश्यकता समझता है— आवश्यकता समझने पर वह उसे प्राप्त करना चाहता है और प्रयत्न कर प्राप्त कर लेता है। " किन्तु यहां मामला ही कुछ विचित्र नज़र आता है। सुंदरता सब को प्रिय है, उस के प्राप्त होने की (प्राप्त करने की नहीं) सब ही इच्छा रखते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश * उसे प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की जाती। जिन उपायों से सुंदरता प्राप्त हो सकती है उन्हें कोई उपयोग में नहीं लाता। कहा नहीं जा सकता कि इस अवस्था में उन्हें सुन्दरता क्योंकर प्राप्त हो सकेगी? बिना कर्म किये यह आशा उतनी ही भ्रान्ति-मूलक और भ्रमोत्पादक है कि जितनी आकाशकुसुम को प्राप्त करने अथवा भिक्षा में साम्राज्य के मिलने की आशा भ्रान्तिमूलक है।

यदि हमें सुन्दरता प्यारी है—उस के प्राप्त होने की नहीं, वरन् उसे प्राप्त करने की अभिलाषा है—और यदि हम सुंदर साथी और सुंदर सन्तान से अपने मन को मुदित और प्रफुल्लित करने के आकांक्षी हैं तो हमें इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले प्राकृतिक नियमों का पालन कर वर्ण की सुन्दरता के साथ २ शारीरिक सुन्दरता की भी वृद्धि करनी चाहिये। तभी वास्तविक सुंदरता प्राप्त की जा सकती है।

किन्तु पहिले इस बात का जान लेना आवश्यकीय है कि जिस प्रकार वर्ण की सुन्दरता में परिवर्तन कर उसे अपने इच्छानुसार बनाया जा सकता है; उसी प्रकार शारीरिक सौन्दर्य में परिवर्तन कर उसे भी अपनी इच्छानुसार बनाया जा सकता है या नहीं?

देखिये! जिस प्रकार वर्ण में परिवर्तन कर उसे अपनी इच्छानुसार बनाया जा सकता है, उसी प्रकार शारीरिक सौन्दर्य में भी इच्छानुसार

---

* भाग्य भी मनुष्य, अपना, स्वयम् बनाता है, उत्तम कर्म करने से सौभाग्य और दुष्कर्म करने अथवा कर्महीन बन जाने से दुर्भाग्य बनता है; अतएव मनुष्य के कर्म ही मनुष्य का भाग्य हैं—और इसी आशय से यहां दुर्भाग्य शब्द व्यवहार में लाया गया है।

परिवर्त्तन किया जा सकता है और प्रत्येक अवयव को उचित सीमा तक इच्छित रूप से विकास दिया जा सकता है।

शारीरिक संगठन का न्यूनाधिक होना एकमात्र मनःशक्ति पर अव-लम्बित है जैसा कि, छठे प्रकरण में मनःशक्ति के आन्तरिक प्रभाव के विषय में उद्देश्य और वर्णोत्पत्ति विषयक निर्णय करते हुए इस बात का अच्छे प्रकार विवेचन किया जा चुका है; अतएव इस जगह फिर से विस्तार-पूर्वक विवेचना करने की आवश्यकता न समझ हम इस निर्णय पर आते हैं कि :—

जिस प्रकार और जितने अंश में देश, ऋतु, जाति और वंश का वर्ण पर प्रभाव होता है, उसी प्रकार और उतने ही अंश में, उन का शारीरिक सौन्दर्य पर भी प्रभाव होता है। किन्तु जिस प्रकार मनःशक्ति के प्रतिकूल होने पर ये वर्ण पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते और इन सब के प्रतिकूल होते हुए भी मनःशक्ति इच्छित वर्ण का सन्तान में समावेश कर सकती है; ठीक उसी प्रकार मनःशक्ति के प्रतिकूल होने पर, ये शारीरिक सौन्दर्य पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ रहते हैं और मनःशक्ति, इन सब के होते हुए भी शारीरिक सौन्दर्य में आशातीत परिवर्त्तन और सुधार कर सकती है। मनःशक्ति शारीरिक सौन्दर्य पर अपना प्रभाव डालने में सर्वथा स्वतंत्र है। जैसा कि पाठकों को आगे दिये हुए उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायगा।

(१) डाक्टर "कोव" का दिया हुआ एक उदाहरण अन्यत्र दिया जा चुका है उस में पाठक देख चुके हैं कि माता पिता दोनों के अंगरेज़ होते हुए भी पहली स्त्री के आबेसियन होने के कारण कन्या श्याम वर्ण उत्पन्न हुई। इतनाही नहीं कि श्याम वर्ण उत्पन्न हुई, किन्तु वह आबेसियनों के सदृश मुखाकृति तथा शारीरिक संगठन वाली भी उत्पन्न हुई कि जिस का एक मात्र प्रेमद्वारा उस अंगरेज़ की मनःशक्ति पर उस की मुखाकृति का दृढ़ रूप से अंकित हो जाना ही कारण था।

(२) एक सगर्भा स्त्री को वृक्ष पर "बेरी" फल लगा हुआ देख

उसे प्राप्त करने की उत्कट इच्छा हुई। उस ने उस फल को प्राप्त करने के अनेकों प्रयत्न किये, किन्तु फल के अधिक ऊंचे और प्राप्त करने का कोई साधन न होने से वह उसे प्राप्त न कर सकी। इस प्रसङ्ग का परिणाम यह हुआ कि उक्त गर्भ से जो कन्या उत्पन्न हुई उस के मस्तक पर बेरी के समान लाल रंग का चिन्ह मौजूद था। कारण प्रत्यक्ष ही है कि उस ने उसे, प्राप्त करने की उत्कट इच्छा से ध्यानपूर्वक, अवलोकन किया था।

(३) मैं एक रोज़ कोटा-हास्पिटल में बैठा था। आनेवाले बीमारों में एक व्यक्ति पर मेरी नज़र पड़ी कि जो एक आंख से काना था—किन्तु जब उस की गोद के बच्चे पर नज़र पड़ी तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। देखता क्या हूं कि वह भी एक आंख से काना है और वह भी इतनी समानता के साथ कि पिता बाईं आंख से तो पुत्र भी बाईं आंख से। मुझे इस बात के जानने की उत्कट इच्छा हुई कि वह बच्चा जन्म ही से काना है अथवा बाद में किसी बीमारी के कारण ऐसा हो गया है। उस के पिता से प्रश्न करने पर मालूम हुआ कि वह जन्म ही से एक चक्षु विहीन है। (पाठक! देखा अपने मन पर दृढ़ रूप से पड़े हुए प्रभाव का परिणाम!)

(४) "अलबर्ट आल्सटोन" कहता है कि मेरे एक मित्र के पूर्वजों में एक व्यक्ति ने (दरयाई सफ़र) समुद्रयात्रा के समय अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो उसे समुद्र में गिरा दिया, किन्तु गिरते २ उस ने जहाज़ की किनोर को कि जो सहसा उस के हाथ में आ गई थी पकड़ लिया। निर्दयी को इतने पर भी दया न आई और निर्दयता के साथ उस की अंगुलियों को काट दिया। बेचारी अनाथ अबला समुद्र में गिरी और डूब ही जाना चाहती थी कि अन्य यात्रियों ने उसे बचा लिया। समय पाकर उन का वैमनस्य जाता रहा और दोनों दम्पति फिर से हिलमिल गये। सन्तान भी उत्पन्न हुई। किन्तु पिता के उक्त उग्र कुकर्म से [illegible] बेचारी अबोध और निरपराध सन्तान को उंगलियों से वंचित रहना पड़ा, अर्थात् [illegible] जो सन्तान उत्पन्न हुई उस के हाथों की उंगलियां नहीं थीं। इस का कारण मात्र यही था कि उक्त स्त्री के मन पर उस घोर अत्याचार का इतना

प्रबल प्रभाव अंकित हो गया था कि पीछे से होजानेवाला ऐक्य भी उसे मिटाने में असमर्थ रहा और उस ने यथातथ्य सन्तान में प्रकट हो अपना प्रभाव दिखाया।

(५) डाक्टर "पेपौन" कहता है कि मैं "एबिंगटन" में एक स्त्री के प्रसव समय उपस्थित था और मेरा आंखोंदेखा वृत्तान्त है कि उस स्त्री के उस समय जो सन्तान उत्पन्न हुई वह सर्वथा मूर्ति (प्रतिमा) के समान थी। कारण ढूंढ़ते हुए ज्ञात हुआ कि उस स्त्री ने गर्भवास के दिनों में एक मूर्ति को कि जो उसे बहुत प्रिय थी ध्यानपूर्वक अवलोकन किया था, अतएव वही आकार उस के हृदयपट पर अंकित हुआ और उसी ने उस की सन्तान को मूर्ति के आकार का बना दिया।

मनुष्याकृति भिन्न, नाना प्रकार की आकृति वाले देवताओं के उपासक होने के कारण हिन्दू समाज में ऐसे बनाव प्रायः सुनने में आए हैं कि कोई बच्चा चार हाथ वाला उत्पन्न हुआ है तो किसी के तीन आंखें हैं—कोई दो सिर का है तो किसी के हाथों के स्थान में पर (पक्ष) हैं। ये सब गर्भवास के दिनों में भी उन्हीं मनुष्याकृति भिन्न मूर्तियों का ध्यान रखने का परिणाम है।

पाठक ! मैं आशा करता हूं कि आप इस बात को अच्छे प्रकार समझ गये होंगे कि गर्भाधान के समय और गर्भवास के दिनों में स्त्री की मनःशक्ति पर पड़े हुये जुदे २ प्रभाव बच्चे के शारीरिक संगठन में कितना परिवर्त्तन कर देते हैं और उसे किस प्रकार बिगाड़ देते हैं। *

मेरे विचार में पाठक इस जगह यह शङ्का नहीं करेंगे कि ये जो ऊपर बतलाये गये, सब स्वतः होनेवाले प्रभाव हैं और सम्भव है कि इरादतन

---

* हमारा प्राचीन-वैद्यक शास्त्र भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन करता है। उदाहरणार्थ देखिये——सुश्रुत (शारीरस्थान-अध्याय ३ श्लोक ५२ में) कहता है कि "यद्यपि अंग प्रत्यंगों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है तथापि अंग प्रत्यंग की उत्पत्ति के समय जो २ गुण दोष गर्भवती स्त्री में होते हैं वे ही गुण दोष गर्भस्थ बालक के अंग प्रत्यंग में भी उत्पन्न हो जाते हैं इत्यादि"।

अथवा जान बूझ कर कोई प्रभाव डालना चाहें और तत्कार्थ न हों? यदि कोई यह शंका करें तो उन से केवल इतना निवेदन कर देना ही काफ़ी होगा कि मनःशक्ति पर होनेवाले प्रभाव, चाहे स्वतः ही हुए हों अथवा जानबूझ कर डाले गये हों, उन का असर समान रूप से होता है जैसा कि इस पुस्तक में अन्यत्र बतलाया जा चुका है। इस के अतिरिक्त वर्ण के विषय में निर्णय करते हुए जो "(१) बोस्टन नगरवासी दम्पति" "(२) न्यायाधीश और डाक्टर गैसन" आदि के उदाहरण दिये गये हैं, उन से भी अच्छे प्रकार प्रतिपादन हो चुका है कि इरादतन भी मनःशक्ति द्वारा सन्तान के शारीरिक संगठन, तथा शारीरिक सौन्दर्य में परिवर्त्तन किया जा सकता है। यदि इस प्रकार परिवर्त्तन न हुआ होता तो उक्त उदाहरणों में जिन सन्तानों के सुन्दर उत्पन्न होने का उल्लेख किया गया है उन का वर्ण चाहे कितनाही सुन्दर हो गया होता, किन्तु उन के शारीरिक संगठन में इच्छित परिवर्त्तन न हुआ होता, और उक्त "बोस्टन" वासी दम्पति का बच्चा उक्त चित्र के इतना अनुरूप न हुआ होता कि उन के यहां आनेवाले अतिथि भी उक्त चित्र को उसी बच्चे का चित्र बता सकते।

मनःशक्ति पर पड़े हुए प्रभावों के अतिरिक्त कुछ कारण और भी हैं कि जो शारीरिक सौन्दर्य में बाधक होते हैं :—

विचार कीजिये कि एक गर्भवती स्त्री गर्भवास के दिनों में प्रायः एक ही करवट से सोती है और इस प्रकार एक ही करवट से सोने के कारण उस के शरीर का एक ओर का भाग ही दबा हुआ रहता है। सन्तान के लिये इस का प्रभाव यह होता है कि उस के शरीर का

गर्भवती के एक करवट सोने से हानि।

वह भाग कि जो दबी हुई तरफ़ होता है प्रायः दबे रहने से उस भाग के समान कि जो दूसरी ओर दबा हुआ नहीं रहा है, पुष्ट नहीं होता और न पूर्ण रूप से विकाश ही पाता है। जिस बच्चे के गर्भवास के दिनों में अज्ञानतावश माता का ऐसा आचरण रहा है, उसे देखने के साथ ही उस की शरीररचना में रही हुई न्यूनता अथवा विशेष स्पष्ट मालूम हो जाता

है। मेरे सम्बन्धियों में एक कन्या की शरीररचना में माता के उपर्युक्त आचरण के कारण, इस प्रकार का विक्षेप हुआ। साधारण दृष्टि से देखने वाले को भी उस के शरीर का एक ओर का भाग दूसरे की अपेक्षा दबा हुआ और छोटा मालूम होता है। इसी प्रकार स्त्री के अधिक बैठे रहने के कारण सन्तान—गर्भस्थ सन्तान—का कमर से नीचे का भाग ऊपर के भाग की अपेक्षा प्रायः कमज़ोर (निर्बल) रह जाता है।

कई और बातों के विषय में एक फ्रांसनिवासी विद्वान् कहता है कि

दुर्गुणी विचारों से हानि।

" मन की जुदी २ स्थिति-विचार अथवा भाव " मुखाकृति में जुदे २ प्रकार के परिवर्त्तन करते हैं। विकार वृत्ति उत्तेजित होने के समय ऊपर के होंठ का मध्य भाग उत्तेजित हो कर बदशकल बन जाता है। इसी प्रकार क्रोध, आश्चर्य, घृणा आदि के समय भी मुखाकृति में बहुत कुछ परिवर्त्तन होता है। जैसे आंखों का मामूल से ज्यादा खुला रह जाना, नाक का ऊपर को चढ़ जाना, भवों का सिकुड़ना आदि। यदि इस प्रकार का परिवर्त्तन गर्भवास के दिनों में होता है तो जिन २ शारीरिक अवयवों में उपर्युक्त वृत्तियों से परिवर्तन हुआ है, गर्भस्थ बच्चे के वे ही वे अवयव बदशकल बनते हैं और उन के उचित रूप से विकास पाने में विक्षेप आ जाता है; अतएव गर्भवती स्त्री को कपट, द्वेष, विकार, ईर्षा और क्रोध आदि अधम वृत्तियों से बचते रहना चाहिये और दया, ममता, सुशीलता, सौजन्यता आदि उत्तम वृत्तियों को हृदय में स्थान देते हुए और प्रसन्नचित्त रहते हुए आगे बताई हुई रीतियों से अपनी गर्भस्थ सन्तान के शारीरिक संगठन को उत्तम रूप से विकास देने की चेष्टा करनी चाहिये।

स्त्रियां प्रायः तंग कपड़े पहनती हैं कि जो सन्तान के शारीरिक संगठन

शरीर को दबाए रखने वाले कार्य्यों अथवा तंग कपड़े पहनने से हानि।

एवम् स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। तंग कपड़े पहनने से और शारीरिक अवयवों के दबे रहने से रुधिराभिसरण (Circulation of blood) में कमी आती है। कमी आने से गर्भस्थ बच्चे के शारीरिक संगठन के लिये जितने रुधिर की आवश्यकता होती

है उस से कहीं खून रुधिर उसे मिलता है और उचित प्रमाण में रुधिर के न मिलने से अवयवों के पूर्ण रूप से विकास पाने में विक्षेप पड़ता है—वे पूरे विकास नहीं पाते—वे हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट नहीं हो पाते—वे छोटे और कमजोर रह जाते हैं। अतएव अन्य बातों के साथ २ इस बात के ध्यान में रखने की भी अत्यन्त आवश्यकता है।

हमारे शास्त्रकारों ने संसार के समस्त सुखों में स्वस्थता को—निरोगिता को—सब से ऊंचा स्थान दिया है—अर्थात् स्वास्थ्य ही को सब में मुख्य माना है। कारण यही कि स्वास्थ्य ही पर हमारे समस्त सांसारिक कार्य्यों का आधार है। यदि हम शरीर से निरोग हैं—तो मान लेना होगा कि हम अपने प्रत्येक इच्छित कार्य्य के करने को समर्थ और सब प्रकार सुखी हैं। स्वास्थ्य अच्छा होने पर ही हम अपने देश-हित, जाति-हित, कुटुम्ब-हित और निज-हित के कार्य्यों को सम्पादन कर सकते हैं; अन्यथा हम इस योग्य भी नहीं रह जाते कि अपनी आवश्यकताओं को भी खुद पूरी कर सकें। स्वास्थ्य के अभाव में अपनी प्रत्येक आवश्यकता पूरी करने के लिये दूसरों के स्वाधीन होना पड़ता है। शारीरिक और मानसिक आदि समस्त शक्तियां निर्बल हो जाती हैं। और स्वास्थ्य का अभाव ही इस पार्थिव शरीर के नाश का आदि कारण है।

स्वास्थ्य

सौन्दर्य्य को मुख्य मान लिया जाय तब भी स्वास्थ्य के आवश्यकीय होने में लेश मात्र भी कमी नहीं आसकती। यदि सौन्दर्य्य शरीर के समान है तो स्वास्थ्य उस में रहे हुए प्राण के समान है और जिस प्रकार बिना प्राण के शरीर निरर्थक है उसी प्रकार बिना स्वास्थ्य के सौन्दर्य्य भी निरर्थक है। कल्पना कीजिये—थोड़ी देर के लिये मान लीजिये—कि एक व्यक्ति में क्या वर्ण की सुन्दरता और क्या शारीरिक सुन्दरता—दोनों ही ने उचित सीमा में पूर्ण रूप से विकास पाया है और वह व्यक्ति अपनी हृदयहारिणी सुन्दरता के कारण संसार भर में प्रशंसनीय है; किन्तु उस में स्वास्थ्य का अभाव है—सदैव रोगग्रस्त रहता है। ऐसी अवस्था में क्या कोई भी मनुष्य

ऐसा होगा कि जो उसे देख दुःखी हुए बिना रहेगा ? क्या वह स्वयम् भी अपने आप को सुखी मान सकेगा ? मेरे विचार में उस का अपने आप को सुखी मानना सर्वथा असम्भव है और वह देखनेवाले को भी—चाहे वह कितना ही निठुर और पाषाणहृदय क्यों न हो—सुखप्रद होने की अपेक्षा दुःखप्रद ही अधिक हो पड़ेगा और उस की वही अपूर्व सुन्दरता कि जो हृदय को आह्लाद दिलानेवाली और नेत्र सुखद होती पूर्ण दुःख का कारण होगी और दर्शक को शोकित किये बिना कदापि न रहेगी।

अतएव माता पिता का मुख्य कर्तव्य है कि अपनी सन्तान को जन्म ही से स्वस्थ उत्पन्न करने की चेष्टा करें ताकि उन की सन्तान संसार में अपने जीवन को सुखपूर्वक बिता सके और उन्हें भी कुसमय उन के वियोग का दुःख न सहना पड़े।

गो स्वास्थ्य ऐसी चीज है कि जो थोड़ी भी उपेक्षा करने से हर किसी समय बिगड़ सकता है तथापि इस बात को तो अवश्य मानना पड़ेगा कि उन लोगों की अपेक्षा कि जो जन्म ही से रोगी उत्पन्न हुए हैं, जन्म ही से निरोग उत्पन्न होनेवाले कहीं अच्छे हैं। जन्म के रोगी अनेकों यत्न करने पर भी शीघ्र ही रोग के शिकार बन जाते हैं और जो जन्म ही से निरोगी हैं वे थोड़ी सावधानी से काम लेने पर अपनी आयु को सफलता पूर्वक व्यतीत कर सकते हैं; और मामूली रोग उन्हें विशेष हानि भी नहीं पहुंचा सकते; अतएव देखना चाहिये कि वे कौन २ कारण हैं कि जो जन्म ही से संतान के स्वास्थ्य को बिगाड़ते हैं और वे कौन २ कारण हैं कि जो उस के स्वास्थ्य को उत्तम बनाते हैं ?

(१) माता के शोक-ग्रस्त रहने से हानि।

डाक्टर "फाउलर" कहता है कि "यदि स्त्री गर्भवास के दिनों में शोक-मग्न रहती है तो गर्भस्थ बच्चे के मस्तक में विशेष रूप से हानि पहुंचती है। उस के मस्तक में पानी * भर आता है। मैं ने ऐसे हजारों बच्चों की निरीक्षा की है अतएव मैं कह सकता हूं कि ऐसे बच्चे का मस्तक मामूल से बड़ा

---

* Dropsy of the brain की बीमारी हो जाती है।

होता है *। उस में स्थिरता, धैर्य, सहन शक्ति, आदि मानसिक शक्तियों का अभाव होता है। वह किसी समय तो बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य करता है और किसी समय उस के आचरण मूर्ख के समान होते हैं। ऐसे बच्चे का मस्तक गोल नहीं होता। उस का मस्तक जगह २ से उभरा हुआ और उन्हीं उभरे हुए भागों में प्राय: पानी भरा होता है और उन्हीं भागों से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में वह अयोग्य भी होता है। निद्रा में मस्तक से पसीना बहुत निकलता है; अर्थात् प्रकृति स्वेद द्वारा उस पानी को निकालने की चेष्टा करती है।"

पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि माता के शोकमग्न रहने से और बच्चे के मस्तक में पानी भरजाने से क्या सम्बन्ध, अर्थात् माता के शोकमग्न रहने से बच्चे के मस्तक में पानी क्यों भर जाता है? देखिये! आप इस पुस्तक में प्राय: देखते आये हैं कि जो जो बुराइयां गर्भवती स्त्री के शरीर में होती हैं वे ही बुराइयां गर्भस्थ बच्चे के शरीर में भी पैदा हो जाती हैं। आदमी ज्यों २ शोकमग्न होता जाता है, त्यों २ उस का मस्तक गरम होता है और उस में पसीना आने लगता है। इसी प्रकार जब गर्भवती स्त्री को अपने किसी प्रियजन की भयानक अथवा असाध्य बीमारी, मृत्यु, अथवा किसी आपत्ति में फस जाने के कारण अथवा सांसारिक झगड़ों के कारण, शोक होता है; शोक होने से उस का मस्तक स्वत: गरम होता है और उस में स्वेद आने लगता है; यही कारण है कि उस की सन्तान मस्तक रोग से पीड़ित, सांसारिक आपत्तियों को सहन करने में असमर्थ † और प्राय: मूर्ख उत्पन्न होती है। ऐसी सन्तान का प्रथम तो जीवित रहना ही कठिन होता है; यदि भाग्यवश (दुर्भाग्यवश) जीवित भी रह गई तो विषमय जीवन बिताती है; जैसा कि पाठकों को आगे दिये हुए उदाहरणों से मालूम हो जायगा।

---

* यदि ४ वर्ष के बच्चे का मस्तक २०॥ इंच से ज़्यादा हो तो प्राय: समझ लेना चाहिये कि उस के मस्तक में पानी भरा हुआ है।

† आपत्तियों को न सह सकने के कारण प्राय: आत्मघात कर लेती है।

(१) एक बहुत ही प्रसन्नचित्त रहनेवाली स्त्री अपने अठारह मास के बच्चे को ; निद्रा लानेवाली औषधि देकर बॉल * में चली गई ; किन्तु शीघ्रतावश, औषधि मात्रा से अधिक दी गई कि जो बच्चे को मृत्यु का कारण हुई। बॉल से वापस आने पर जब उस ने अपने प्यारे बच्चे को अपनी भूल के कारण जीवित नहीं पाया तो उस को अत्यन्त दुःख हुआ और दिन २ न्यून होने के बदले पश्चात्ताप ही पश्चात्ताप में इस शोक की मात्रा बढ़ती गई। इसी शोकावस्था में वह दूसरी बार गर्भवती हुई और लड़का उत्पन्न हुआ। किन्तु गर्भवास के दिनों में माता के शोकमग्न रहने के कारण यह बच्चा रोगी उत्पन्न हुआ और दो वर्ष की कोमल वय में मस्तिष्क पीड़ा से मृत्यु को प्राप्त हुआ। माता के शोक में पूर्वापेक्षा और वृद्धि हुई। वह अधिक शोकग्रस्त रहने लगी। इस शोक की अभी शान्ति नहीं होने पाई थी कि तीसरा बच्चा गर्भ में आया ; और माता की शोकावस्था के कारण अधिक निर्बल और रोगी उत्पन्न हुआ। यह बच्चा बड़ा चिड़चिड़े स्वभाव का और हठी था। किसी का दबाव नहीं मानता। अन्त में इस को भी दांत निकलने की पीड़ा से मृत्यु हुई। माता के निराशा और शोक की सीमा न रही। वह हर समय शोकसागर में डूबी रहने लगी, इसी अवस्था में चौथे बच्चे का जन्म हुआ। उस के मस्तक में पानी भरा हुआ था और वह बहुत ही निर्बल था। परिणाम यह हुआ कि पूर्णरूप से सावधानी और संभाल रखते हुए भी, उसे दो वर्ष के पहिले मृत्यु के आधीन होना पड़ा। कुछ दिनों के बाद इस शोचनीय अवस्था में रहने के कारण माता की भी मृत्यु हुई। इन सब शोचनीय परिणामों का कारण एक मात्र, पहिले पुत्र की मृत्यु से होनेवाला शोक ही है। यही शोक दिनोंदिन वृद्धि पाता और सन्तान को अधिक से अधिक रोगी उत्पन्न करता रहा। पाठक ! प्रायः देखने में आता

उदाहरण।

---

* अङ्गरेज़ों के एक ख़ास प्रकार के जलसे को, जिस में स्त्री पुरुष—बिना दम्पत्ति का विचार रक्खे हुए—परस्पर मिलकर नाचते हैं, बॉल कहते हैं।

है कि बहुत सी स्त्रियों के सन्तान उत्पन्न तो होती हैं किन्तु जीवित नहीं रहतीं, इस का भी यही उपर्युक्त कारण है।

हमारे भारतवर्षीय स्त्रीसमाज में किसी समय इस विषय का ज्ञान भी अवश्य था कि जो आजकल नाममात्र रह गया है। जब किसी स्त्री की पहिली सन्तान नष्ट हो जाती है तो आम तौर पर स्त्रियां इसे बुरा समझती हैं—वे आगामी सन्तान के लिये अनिष्ट की सम्भावना करने लगती हैं और इसे एक प्रकार उस स्त्री की कूंख (कुक्ष) में दाग़ लगना मानती हैं। क्या; अब वे इस का वास्तविक कारण समझते हुए दैववश ऐसा समय उपस्थित होने पर—अपनी भावी सन्तान की भलाई के लिये अपने शोक का परित्याग कर—प्रसन्न रहने की चेष्टा नहीं करेंगी ?

(२) गर्भवती स्त्री के साथ पति के असद् और कुटिल व्यवहार से अथवा ऐसे आचरणों से कि जो उस के चित्त को क्षोभित करें, भावी सन्तति के लिये हानिकारक परिणामों की सम्भावना रहती है। देखिये, एक शराबी की स्त्री खुद अपना और अपनी सन्तान का हाल सुनाती है :—

वह कहती है कि "मेरे तीनों बच्चे, मेरी, गर्भवास के समय की जुदी२ स्थिति का बोध कराते हैं। वे सर्वथा मेरी स्थिति के अनुसार उत्पन्न हुए हैं। पहिला बच्चा जिस समय मेरे गर्भ में था मैं सब प्रकार सुखी थी। मैं सदैव प्रसन्न और प्रफुल्ल रहती थी अतएव मेरा पहिला बच्चा सब प्रकार निरोग, अत्यन्त सुन्दर, सुशील और बुद्धिमान् पैदा हुआ। किन्तु दूसरा बच्चा जब मेरे गर्भ में आया तब मैं पहिले की तरह सुखी और प्रसन्न नहीं थी। मेरा पति शराब (मदिरा) पीने लगा। मुझे उस का यह व्यसन नापसन्द (अप्रिय) था। किन्तु मेरी सुनता कौन था ? पति को दुर्व्यसनी देख मुझे क्षोभ होने लगा और मैं उदास और अप्रसन्न रहने लगी। इसी अवस्था में मेरे दूसरे बच्चे ने वृद्धि पाई और जन्म लिया कि जो सर्वथा मेरी स्थिति के अनुकूल है। तीसरे बच्चे की उत्पत्ति के समय मेरे पति का वह दुर्व्यसन बहुत बढ़ जाने के कारण मेरे घर की आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गई—बात २ में कठिनाइयों का सामना होने लगा—

मेरा विनोदी और प्रसन्न स्वभाव, निराशा और शोक में बदल गया। मैं सर्वथा चिन्ता और शोक में डूबी रहने लगी; अतएव मेरा तीसरा पुत्र रोगी, निर्बल और निराशा तथा शोक का अवतारकप उत्पन्न हुआ।" पाठक ! क्या पुरुष का स्त्री को किसी प्रकार भी क्लेश पहुंचाना या अप्रसन्न रखना उचित है ? और मुख्य कर गर्भवास के दिनों में जब कि एक जन्मग्रहण करनेवाली आत्मा के जन्म भर का हानि लाभ सब प्रकार उसी पर अवलम्बित है ?

(२) थका देनेवाले कार्य्यों से हानि।

गर्भवास के दिनों में स्त्री को थका देनेवाले कार्य्यों से भी सर्वथा बचते रहना चाहिये। क्योंकि जिन कार्य्यों के करने में उसे कष्ट अधिक होता है; अर्थात् जो कार्य्य उसे थका देते हैं—निर्बल बना देते हैं—वे सब गर्भस्थ बच्चे के लिये अनिष्ट करनेवाले होते हैं। ऐसी अवस्था में पैदा होनेवाली सन्तान निर्बल और रोगी उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ लीजिये :—

एक नौका बनानेवाले सौदागर ने, गर्भवास के दिनों में अपनी स्त्री से अपने कारखाने में काम करने वालों के लिये भोजन बनवाने का कार्य्य लिया। कार्य्य लिया और इस अधिकता के साथ लिया कि वह बेचारी थकावट के कारण बिलकुल सुस्त और निःसत्व हो जाया करती थी। उस के गर्भवास के दिन प्रायः इसी प्रकार निःसत्व और निर्बल होते हुए निकले। नियत समय पर पुत्र का जन्म हुआ कि जो क्षय, दुर्बल, मुरझाया हुआ, विचलितचित्त और प्रायः मूर्ख था।

अतएव मानना पड़ता है कि गर्भवास के दिनों में गर्भवती से ऐसे कार्य्य कि जो उसे थका देने वाले—निःसत्व कर देनेवाले—उसे निर्बल बनादेने वाले—हैं लेना अथवा उसे करने देना भावी सन्तति के लिये अत्यन्त हानिकर है।

(३) निठल्ले रहने से हानि।

किन्तु इस का यह आशय कदापि नहीं समझ लेना चाहिये कि गर्भवास के दिनों में गर्भवती से कोई कार्य्य ही नहीं लेना चाहिये। गर्भवती को निठल्ला रखना—उस से

कोई कार्य्य न लेना—भी सन्तान के लिये उतना ही हानिकारक है कि जितना उस से अधिक कार्य्य लेना हानिकारक है। उस को निठल्ला रखने से उस के इस आचरण का—इस निठल्ले रहने का—सन्तान पर अच्छा प्रभाव नहीं होगा; वह भी निठल्ली और सुस्त रहने वाली उत्पन्न होगी। साथ ही निर्बल भी अवश्य होगी, क्योंकि निठल्ले रहने से उस के शारीरिक अवयवों को उचित व्यायाम न मिलेगा। उचित व्यायाम न मिलने से उन के स्वाभाविक कार्य्यों में तथा रुधिराभिसरण में त्रुटि आयगी—शिथिलता अथवा त्रुटि आने से उन में निर्बलता आयगी, और निर्बलता आने से सन्तान के लिये उस का वही प्रभाव होगा कि जो थका देनेवाले कार्य्यों से होता। अतएव उचित यह है कि गर्भवती स्त्री से कार्य्य अवश्य लिया जाय; किन्तु वह ऐसा होना चाहिये कि जो उसे किसी प्रकार भी शारीरिक कष्ट पहुंचानेवाला न हो। कार्य्य लेने में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाय कि उन कार्य्यों के सम्पादन करने में उसे चलना फिरना ज़रूर पड़े और उस के शारीरिक अवयवों को उचित व्यायाम मिलता रहे। परदे की कठिन प्रथा के कारण जिन स्त्रियों को रहद्वार का दर्शन दुर्लभ होता है, क्या ही अच्छा हो यदि वे गर्भवास के दिनों में अपनी प्यारी सन्तान के लाभार्थ प्रातःकाल या सायंकाल छत पर कुछ देर टहल लिया करें ?

(४) रोगी की शुश्रुषा करने से हानि।

गर्भवती को अपनी गर्भस्थ सन्तान के लाभार्थ रोगी की शुश्रुषा करने—रोगी की टहल करने—से भी बचते रहना चाहिये। कारण यही कि रोगी की शुश्रुषा करने से स्वयम् गर्भवती को हानि पहुंचती है और यह सिद्ध ही है कि गर्भवती को हानि पहुंचने से गर्भस्थ सन्तान को हानि पहुंचती है।

एक साधारण कहावत है कि "रोगी की शुश्रुषा करनेवाला भी आधा रोगी बन जाता है"। यह सर्वथा सत्य है। मेरे विचार में ऐसा कोई व्यक्ति इस संसार में न होगा कि जिसे अपने जीवन में इस बात का किसी न किसी अंश में अनुभव न हुआ हो, अतएव इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। किन्तु रोगी की शुश्रुषा करनेवाला आधा रोगी क्यों

बन जाता है ? इस के सिवा आदि कई एक कारण अवश्य हैं। फिर भी मेरे विचार में मुख्य कारण यह है कि रोगी, सुश्रुषा करनेवाले निरोग मनुष्य के शरीर से, प्राणतत्त्व चूस कर उसे निर्बल बना देता है। रोगी की अपेक्षा निरोग मनुष्य में प्राणतत्त्व अधिक है, रोगी में प्राणतत्त्व की कमी है—और उसे अपनी जीवनरक्षा के लिये, या निरोग होने के लिये प्राण तत्त्व की आवश्यकता है। जीव का यह स्वाभाविक गुण अवश्य है कि वह दूसरे की अपेक्षा अपनी जीवनरक्षा अधिक करता है; अतएव वह अपनी जीवनरक्षा के लिये दूसरे निरोग मनुष्यों के शरीर से प्राणतत्त्व चूस लेता है *। और इस प्रकार सुश्रुषा करनेवाला व्यक्ति कि जिसे प्रायः उस के पास ही रहना पड़ता है निर्बल हो जाता है; क्योंकि जितनी अधिकता से रोगी उस का प्राणतत्त्व चूसता है उतनी अधिकता से उस में प्राणतत्त्व नहीं आसकता। अतएव गर्भवती स्त्री को रोगी की सुश्रुषा करने से बचना चाहिये। यदि दैववश ऐसा समय उपस्थित हो और सुश्रुषा किये बिना कोई गति न हो तो ऐसी अवस्था में उसे चाहिये कि जितना भी हो सके रोगी से दूर रहे; वृथा ही रोगी के पास न बैठा रहे; समय पर औषध आदि देना हो तो देकर अलग हो जाय; अन्यथा गर्भस्थ सन्तान के निरोग और उत्तम होने की सम्भावना करना ही वृथा है। उदाहरणार्थ एक इसी प्रकार की घटना का नीचे उल्लेख किया जाता है :—

एक स्त्री की सन्तान में केवल एक पुत्र और एक कन्या थी। स्त्री के सब प्रकार निरोग और सुन्दर होने पर भी उस के दोनों बच्चों में आकाश

---

* क्या रोगी की संभाल पूछने आने—मिज़ाज पुरसी करने—की प्रथा इसी आशय से प्रचलित की गई है कि जो निरोग मनुष्य उस की संभाल पूछने आवें—वह उन के शरीर से थोड़ा २ प्राणतत्त्व ग्रहण कर अपनी जीवनरक्षा कर सके और आनेवाले व्यक्तियों को विशेष हानि भी नहीं पहुंचे ? वास्तव में यह बात सत्य मालूम होती है, क्योंकि जिस समय कोई व्यक्ति किसी रोगी की संभाल पूछने आता है तो रोगी को उस के आने से किसी अंश में शान्ति अवश्य मिल जाती है।

पातावा का अन्तर था। पुत्र कोमलकाय, शुष्क, निर्बल और रोगी था परन्तु कन्या सब प्रकार निरोग, प्रसन्नचित्त रहनेवाली, विनोदी और प्रतिभाशालिनी थी। स्त्री से इस आश्चर्यकारक विरुद्धता का कारण जानने के अभिप्राय से उस के दोनों बार के गर्भवास की स्थिति के विषय में पूछने पर मालूम हुआ कि उक्त लड़का जिन दिनों उस के गर्भ में था, वह अपने ससुर के बीमार होने से रात दिन उस की सुश्रुषा में लगी रहती थी। लड़की के गर्भवास के दिनों में उसे किसी प्रकार की चिन्ता या फ़िकर नहीं था—वह सब प्रकार प्रसन्न रहती थी और बहुत सुखपूर्वक नियमित कार्य्य करती हुए अपना समय बिताती थी।

(५) बन्द और बिना हवा के मकान में रहने और श्वासोच्छ्वासक्रिया को रोकनेवाले कार्य्यों से हानि।

जीवनरक्षा के लिये वायु कितना आवश्यकीय पदार्थ है, इस बात को प्रायः सब कोई जानते हैं। भोजन और जलपान किये बिना मनुष्य कई दिन गुज़ार सकता है, किन्तु वायु के बिना एक मिनट भी नहीं गुज़ार सकता। वायु ही प्राणी मात्र का प्राण है। जीवननिर्वाह के लिये वायु अत्यन्त आवश्यकीय है। जब तक श्वासोच्छ्वासक्रिया द्वारा वायु को ग्रहण किया जासकता है तब तक शरीर जीवित है। श्वासोच्छ्वासक्रिया के बन्द हो जाने पर वही शरीर कि जो जीवित और प्रत्येक कार्य्य के करने को समर्थ था, मृतक है। श्वासोच्छ्वास द्वारा जो वायु ग्रहण किया जाता है उसी पर रुधिराभिसरण (रक्तसंचार Circulation of blood) का आधार है।

जिस प्रकार रुधिर शरीर क सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में मौजूद है और उस को गति है, उसी प्रकार शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग में वायु और उस की गति मौजूद हैं।

समस्त शारीरिक वायु दो भागों में विभक्त है। इन दोनों भागों को एक दूसरे से जुदा करनेवाली एक बारीक झिल्ली है; अर्थात् ये वायु एक बारीक झिल्ली द्वारा दो भागों में विभक्त हैं। इन दोनों भागों में से एक भाग में रुधिर और दूसरे में वायु रहता है। श्वास में ग्रहण किया हुआ

वायु श्वासनलिका में हो कर फेफड़े में जाता है, और रक्त के शुद्ध करने में सहायता देता है। शुद्ध हुए रक्त को अपनी सञ्चालन क्रियाद्वारा समस्त शारीरिक अवयवों में पहुंचाता है और लौटते समय दूषित रक्त को रक्तवाहिनी नाड़ियों द्वारा अपने साथ लेता हुआ हृदय में आता है और उस के (रक्त के) दूषणों को अपने में लेता हुआ उपर्युक्त मार्ग से फिर बाहर निकल जाता है।

अतएव मानना पड़ता है कि रुधिराभिसरण और रक्तशुद्धि के लिये वायु अत्यन्त आवश्यकीय है। जितना भी साफ़ तौर पर, बिना किसी रुकावट के, श्वास द्वारा वायु ग्रहण किया जायगा उतने ही प्रमाण में रुधिराभिसरण और रक्तशुद्धि उत्तम प्रकार से होगी और जितने अंश में रुधिराभिसरण और रक्तशुद्धि नियमित और उत्तम होगी उतने ही अंश में शरीर निर्मल, निरोग, निर्दोष और बलवान रहेगा।

किन्तु इस बात का विचार रखना अत्यन्त आवश्यकीय है कि जिस वायु को श्वास में ग्रहण किया जाय वह शुद्ध होना चाहिये। वायु जितना ही अधिक शुद्ध होगा उतना ही रक्तशुद्धि के लिये अधिक उपयोगी होगा। दूषित वायु के श्वास में लेने से रक्तशुद्धि की तो सम्भावना ही क्या, वरन् वह रक्त को भी उन्हीं दोषों से दूषित कर देता है कि जिन दोषों से वह स्वयम् दूषित है। अतएव शुद्धवायु के लिये ऐसा स्थान होना चाहिये कि जो कुशादा हो—खुला हुआ हो—बन्द न हो—दुर्गन्ध-रहित हो (क्योंकि बुरे पदार्थ वायु में मिल कर उसे दुर्गन्धित बना देते हैं)—जहां वायु उचित रूप से बिना किसी रोक के आता हो। बन्द मकान में वायु उतना उचित रूप से नहीं आता कि जितना खुले हुए और कुशादा मकान में आता है। अतएव ऐसे मकान में रहना हानिकारक है जहां पूर्ण रूप से वायु न मिल सके, विशेष कर गर्भवती स्त्री के लिये; जब कि एक दूसरे जीव की श्वासोच्छ्वासक्रिया, उस की श्वासोच्छ्वासक्रिया पर, (जैसा कि पाठक तीसरे प्रकारण में देख आये हैं) उस का पोषण उस के रुधिर पर और उस का स्वास्थ्य उस के रक्त की शुद्धता पर अवलम्बित है।

जिस प्रकार दूषित और वायु वायुरहित (जहां वायु उचित रूप से न आता हो) स्थान रक्तशुद्धि और रक्ताभिसरण के लिये हानिकारक है; उसी प्रकार ऐसे कपड़े पहनना कि जिन से शरीर मुख्य कर कण्ठ और छाती जकड़ी रहे—हानिकारक है। कारण यही कि तंग कपड़े पहनने से यदि कण्ठ और छाती जकड़ी रहेगी तो श्वास पूर्ण रूप से—साफ़ तौर पर—कदापि नहीं लिया जा सकेगा और अन्य शारीरिक अवयवों के दबे रहने से रुधिराभिसरण इतनी सुगमता और उत्तमता से नहीं हो सकेगा जितना कि उन के बन्धनमुक्त होने से होता। अतएव गर्भवती को तंग कपड़े पहनने स सर्वथा बचना चाहिये। प्राय: देखने में आया है कि जवानी के दिनों में स्त्रियों को तङ्ग "चोली" (कंचुकी) पहिनने का चाव अधिक होता है, किन्तु उन का यह चाव उन के और उन की सन्तान के स्वास्थ्य को हानि पहुंचानेवाला है।

पाठक ! मुझे भारतवर्ष के अन्य प्रांतवासियों के गार्हस्थ्य जीवन का पूरा २ ज्ञान न होने के कारण मैं नहीं कह सकता कि उन प्रान्तों में क्या प्रथा प्रचलित है, किन्तु जिस प्रान्त का मैं रहनेवाला हूं उस राजपूताना प्रान्त में—उस राजपूताना प्रान्त के निवासियों में—एक अत्यन्त हानि-कारक प्रथा देखने में आती है कि जो उन के और उन की सन्तान के स्वास्थ्य को हानि पहुँचानेवाली है। यहां के निवासियों का ज़ियादा हिस्सा रात को सोते समय—निद्रा में पड़े खर्राटे लेते समय—अपना और अपनी गृहिणी का बिस्तर (बिछौना) अलग २ नहीं रखते, दोनों का एक ही बिस्तर और एक ही लिहाफ़ (ओढ़ने का) होता है यह क्रम गर्भवास के दिनों में भी अखण्ड रूप से जारी रहता है।

लोगों से, मेरी इस विषय में अक्सर बातचीत हुई तो मालूम हुआ कि वे स्वास्थ्य का सत्यानाश मिलाते हुए—अपने पुरुषत्व का वृथा ह्रास करते हुए—ऐसा करने में एक प्रकार का (भ्रष्ट) अभिमान मिश्रित गौरव*

---

* धन्य अभिमान और गौरव की सच्ची प्रतिष्ठा ऐसी बातों में ही की जा सकती है क्योंकि अन्य उत्तमोत्तम कार्य्य तो इस योग्य रहे नहीं कि उन्हें सम्पा-दन कर अभिमान और गौरव करने का समय आवे।

और आनन्द मानते हैं। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि उन्हें इस में क्या आनन्द प्राप्त होता है? जब निद्रा देवी ने उन्हें अपने स्वाधीन कर लिया है तो कहिये इस आनन्द का आनन्द कौन लेता है? वे स्वयम्? उन की चारपाई? उस पर बिछा हुआ गद्दा? तकिये? या बिछावन? निद्रा आजाने की हालत में जब दोनों अवस्थाएं बराबर हैं तो मैं नहीं कह सकता कि वे अपने स्वास्थ्य से—(अपने पुरुषतत्व से) हाथ धोने को क्यों तैय्यार हुए हैं। क्या वे इस बात को नहीं जानते कि बराबर सोने और श्वासोच्छ्वासक्रिया के करने से एक दूसरे के श्वास से निकली हुई दूषित वायु एक दूसरे के श्वास में आयगी कि जो हानिकारक है। और कुछ भी हो मुझे इस से क्या बहस? वे अपने इच्छानुसार करने को स्वतंत्र हैं। मुझे ऐसी बातों में हस्ताक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। किन्तु प्रस्तुत विषय के साथ सम्बन्ध होने से इतनी प्रार्थना अवश्य करता हूं कि "कृपानाथ! यों आप की मरज़ी हो वह कीजिये, किन्तु गर्भवास के दिनों में अपनी प्यारी सन्तान के स्वास्थ्य के कण्ठ पर इस आनन्द रूपी छुरी को कदापि न चलाइये। नहीं तो उसे आप के इस आनन्द का प्रायश्चित्त करते हुए जन्मभर रोना पड़ेगा।"

(६) रोगग्रस्त रहने से हानि।

तीसरे प्रकरण में अच्छे प्रकार बतलाया जा चुका है कि बच्चे का बीज कि जो इंच का $\frac{1}{120}$ हिस्सा जितना बारीक होता है माता के रुधिर से पोषण पाकर बढ़ता है, और इसी रुधिर से बच्चे का शारीरिक संगठन होता है—इसी रुधिर से उस का शरीर बनता है" अतएव बिना आगा पीछा या हीला हवाला किये इस बात को मान लेना पड़ता है कि यदि माता के रक्त में दूषण है, तो बच्चा भी उसी दूषित रक्त से पोषण पाने के कारण उन्हीं दूषणों से युक्त जन्म लेगा कि जिन दूषणों से माता का रक्त दूषित है।

माता को यदि कोई बीमारी है तो उस के रक्त में एक विशेष प्रकार के जन्तु (Germs) उत्पन्न हो जाते हैं। ये ही जन्तु रुधिर के साथ बच्चे के शारीरिक संगठन में भी काम आते हैं और बच्चे को भी उसी रोग का रोगी बना देते हैं।

बहुत सी बीमारियों से पैदा होनेवाले जम्र्स (जन्तु) तो ऐसे होते हैं कि वे उस बीमारी के साथ ही नष्ट हो जाते हैं और उन का सन्तान पर प्रभाव भी नहीं होता, किन्तु बहुत सी बीमारियों से उत्पन्न होनेवाले जन्तु ऐसे होते हैं कि वे किसी न किसी अंश में रक्त में रह जाते हैं; अथवा उन का असर रह जाता है। ऐसे रोगों के जन्तु ही सन्तान को रोगी बना देने में अपना प्रभाव अधिक दिखाते हैं। उपदंश * (गरमी), पक्षाघात (लकवा), राजयक्ष्मा (तपेदिक), कोढ़ आदि अनेकों ऐसी बीमारियां हैं कि जो पीढ़ियों तक सन्तान का पीछा नहीं छोड़तीं। यदि उत्तम निरोगी सन्तान की अभिलाषा हो तो विवाह के समय वर और कन्या दोनों के माता पिता को अच्छे प्रकार देख लिया जाय कि उन में से किसी को राजरोग तो नहीं है। यदि स्त्री पुरुष दोनों में किसी को ऐसा राजरोग है तो मेरे विचार में उन्हें सन्तान उत्पन्न कर एक और आत्मा को रोगी बनाने और रोगी सृष्टि की वृद्धि करने की चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये। यदि सन्तानोत्पत्ति की उत्कट अभिलाषा ही हो तो पहिले उस रोग से मुक्त होने और तत्पश्चात् सन्तान उत्पन्न करने का प्रयत्न करना उचित है। अन्यथा निरोग सन्तान-प्राप्ति की आशा को त्याग देना चाहिये।

---

* एक दिन मैं हास्पिटल में बैठा हुआ था कि एक स्त्री गोद में नौ दस महीने की शिशु बालिका को लिये हुए आई। डाक्टर साहब के निरीक्षा करते समय मैं ने भी उसे देखा। कैसा आश्चर्य्य ! नौ दस मास की शिशु बालिका और उपदंश जैसा भयानक रोग !! कि जिस के स्मरण मात्र से शरीर रोमांचित होता है। मुझे उस बच्ची पर बहुत दया आई। मुझे उस के भावी-जीवन -विषमय जीवन का दृश्य प्रत्यक्ष देख पड़ा। साथ ही मुझे उस के माता पिता के प्रति इतना धिक्कार उत्पन्न हुआ कि जिसे मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। यदि मेरे अधिकार में होता तो उन्हें ऐसी भ्रष्ट दशा में सन्तान उत्पन्न करने के कारण अवश्यमेव कठिन शिक्षा करता। ख़ैर वह सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर उन्हें इस का दण्ड देगा— वे इस की शिक्षा पाए बिना कदापि नहीं बच सकते !

गर्भधारण के दिनों में स्त्री का नियमित रूप से कार्य न करना भी सन्तान के स्वास्थ्य आदि के लिये अच्छा नहीं है।

(७) अनियमित कार्यों से हानि।

स्त्री के अनियमित कार्य्य करने से सन्तान के स्वास्थ्य एवम् शारीरिक संगठन और मानसिक शक्तियों को हानि पहुंचती है। अतएव गर्भवती को चाहिये कि अपना प्रत्येक कार्य्य नियमपूर्वक करे। समय पर खाना, भूख से ज़ियादा न खाना, सुपाच्य और पौष्टिक आहार का सेवन करना, समय पर सोना, विशेष कभी न जागना, जितनी निद्रा लेनी चाहिये उस से कम निद्रा न लेना, काम-वासना का सर्वथा त्याग करना और भी इस प्रकार की अन्यान्य बातें सन्तान में उत्तमता का विकास करने के लिये लाभदायक हैं।

आशा है कि पाठक! सौन्दर्य्य (वर्ण की सुन्दरता, शारीरिक सुन्दरता और स्वास्थ्य) के विषय को अच्छे प्रकार समझ गये होंगे और पाठकों के ध्यान में आगया होगा कि सौन्दर्य्य किस प्रकार बिगड़ जाता है, किस प्रकार उत्तम बनाया जा सकता है और उस को बिगाड़ने तथा सुधारनेवाले कारण क्या हैं? अब कृपा कर थोड़ा मानसिक शक्तियों के बिगाड़ सुधार के विषय में भी देख लीजिये।

(२)

"मानसिक शक्तियों का विकास।"

मानसिक शक्तियों में उन सब शक्तियों का समावेश हो जाता है कि जो मस्तिष्क से सम्बन्ध रखनेवाली हैं; जैसे कि अवलोकनशक्ति, स्मरण-शक्ति, विचारशक्ति, आविष्कारिकाशक्ति, सहनशक्ति, धैर्य्य, योजकिता, प्रतिभा, वीरत्व, और भी अनेक प्रकार के सद्‌गुण आदि।

इन सब शक्तियों का स्थान मस्तक में है। मस्तक में भी इन सब जुदी २ शक्तियों के जुदे २ स्थान हैं जैसा कि प्रेमशक्ति का स्थान बतलाते हुए सातवें प्रकरण में बतलाया जा चुका है। इन्हीं जुदे २ स्थानों को अच्छे प्रकार विकास देने से—पूर्णरूप से पुष्ट कर देने से—उस स्थान से

सम्बन्ध रखनेवाली शक्ति उत्तम प्रकार से विकास पा जाती है। और जो २ शक्ति अच्छा विकास पाती है, उस ही उस विषय में बच्चा उत्तम होता है और अपनी योग्यता और बुद्धि कौशल प्रकट कर सकता है। अब देखना यह है कि ये भाग कब और किस प्रकार पुष्ट किये जा सकते हैं।

कब विकास दिये जा सकते हैं—कब पुष्ट किये जा सकते हैं? इस के विषय में तो केवल इतना कह देना ही उचित होगा कि यह विकास देने का कार्य्य गर्भाधान करने के समय से लेकर प्रसव पर्य्यन्त का है कि जो पाठकों को विदित ही है। अब रही दूसरी बात कि, इन को किस तरह विकास दिया जा सकता है? इस का विचार कर निर्णय कर लेना ठीक होगा।

ये शक्तियां किसी देश पर—किसी ऋतु पर—किसी जाति पर अथवा किसी वंश पर अवलम्बित नहीं हैं। जिस देश में देखा जाय, जिस ऋतु में देखा जाय, जिस जाति में देखा जाय अथवा जिस वंश में देखा जाय, मूर्ख और विद्वान् दोनों ही प्रकार के मनुष्य पाये जायँगे। इसी प्रकार ये शक्तियां माता पिता पर भी अवलंबित नहीं हैं। यह आवश्यकीय बात नहीं है—यह लाज़मी बात नहीं है—कि यदि माता पिता विद्वान् हैं तो उन को सन्तान भी विद्वान् ही हो; यदि माता पिता मूर्ख हैं तो उन की सन्तान भी मूर्ख होनी चाहिये—यदि माता पिता सद्‌गुणी हैं तो उन की सन्तान भी सद्‌गुणी और दुर्गुणी हैं तो उन की सन्तान भी दुर्गुणी ही होनी चाहिये—ऐसा कोई नियम नहीं है। प्राय: देखने में आया है कि बुद्धिमानों के मूर्ख, मूर्खों के बुद्धिमान्, सद्‌गुणियों के दुर्गुणी और दुर्गुणियों के सद्‌गुणी सन्तान उत्पन्न हुई है और होती है। अतएव मन:शक्ति के अतिरिक्त ऐसा कोई कारण समझ में नहीं आता कि जो इस परिवर्त्तन का कारण हो।

गर्भाधान के समय और गर्भवास के दिनों में विशेष कर छठे महीने के बाद से प्रसव पर्य्यन्त, माता पिता की मन:शक्ति ने जिस २ विषय में विकास पाया है या माता पिता के आचरणों के कारण मन:शक्ति में जिस २ प्रकार के परिवर्त्तन हुए हैं, वे बच्चे को उस ही उस विषय में

सम्बन्ध रखनेवाली मन:शक्ति को विकास देती और उस में परिवर्तन कर देती हैं, जैसा कि पाठकों को नीचे दिये हुए उदाहरणों से अच्छे प्रकार विदित हो जायगा :—

(१) एक जहाज़ी कप्तान कभी शराब नहीं पीता था। दैवयोग से उस ने अपने विवाह के दिन, अपने चचा के अधिक आग्रह करने से, कि जिस ने उस का पालन पोषण किया था, शराब पिया—मदिरा-सेवी बना। उसी दिन स्त्री पुरुष का योग हुआ और उसी दिन गर्भाधान भी हो गया। इस के दूसरे ही दिन उक्त कप्तान ने अपने जहाज़ के साथ समुद्रयात्रा के लिये प्रस्थान किया। इधर नियत समय पर उस के घर कन्या का जन्म हुआ। यह कन्या बिना किसी कारण के उन्मत्त के समान नाचने कूदने लगती और हर्षनाद किया करती थी। चलने में मतवाले मनुष्य के समान चलती। पाठक! आइये, इस का कारण तलाश करें कि कन्या की मानसिक शक्ति ने ऐसी उन्मत्त अवस्था में क्यों विकास पाया ?

देखिये! उक्त कप्तान शराब नहीं पीता था और लग्न के दिन उस ने अपने चचा के अनुरोध से शराब पिया। शराब पीने से वह उन्मत्त हुआ। एक तो शराब की नशा, दूसरे लग्न का दिवस, बस फिर क्या था—आप खुशी में आकर नाचने और कूदने लगा। आचरण और विचार पर जो ज्ञान का—बुद्धि का—अधिकार था, उस में नशे से न्यूनता आई और वे निरंकुश हुए। इसी अज्ञानावस्था और हर्षविह्वलदशा में पति पत्नी का संयोग हुआ, गर्भ रहा और संतान का जन्म हुआ। गर्भाधान के समय पुरुष तो विचारशून्य था ही, घटने में पूरा यह हुआ कि स्त्री के मन पर भी उस की उस दशा का प्रभाव हुआ और इस संयुक्त प्रभाव ने कन्या में उन्मत्त अवस्था को विकास दिया। *

---

* " I give this advice, given by my predecessors, that no man should unite with his wife for issue except when sober; for those begotten while their parents are drunk more usually prove wine bibbers and drunkards. "

(Plutarch)

"Thy father begot thee when drunk"

(Diogenes)

(२) एक सद्गृहस्थ किसी बैङ्क में उच्च पद पर नियुक्त था। इस का घर प्रमाणिकता आदि के लिये प्रसिद्ध था। दैवयोग से, इसी गृहस्थ को किसी व्यापार में टोटा लगा। टोटा भी ऐसा लगा कि जिसे वह सहन करने में सर्वथा असमर्थ था। इस समय उस के लिये दो ही मार्ग थे, या तो इस आपत्ति को निवारण करने के लिये जाली काग़ज़ात बना बैङ्क से रुपया लेना, या अपने प्यारे कुटुम्ब को पददलित हो दरिद्रता का कष्ट भुगतने देना। वह बड़े असमंजस में पड़ा कि इन में से किस का स्वीकार और किस का अस्वीकार करें? यदि जाली काग़ज़ात बना बैङ्क से रुपया लेता है तो अप्रमाणिकता करनी पड़ती है और यदि प्रमाणिकता का विचार करता है तो प्यारे कुटुम्बियों को घोर दुर्दशा और महान् आपत्तियों में फसना पड़ता है। वह सोचने लगा कि कुटुम्ब ने क्या अपराध किया कि वह केवल मेरी भूल से कष्ट उठावे? अन्त में कुटुम्बप्रेम ने प्रमाणिकता पर विजय पाई। वह जाली काग़ज़ात बना बैङ्क से रुपया लेने को तय्यार हो गया। उस ने जाली काग़ज़ात बनाये और बैङ्क से रुपया ले अपने कुटुम्ब का निर्वाह किया। किन्तु उसे ऐसा करते हुए महान् हृदयवेदना सहनी पड़ी। इस पापाचरण का स्मरण उस के हृदय को दग्ध किये देता था। इसी अवस्था में उस की स्त्री गर्भवती हुई और निश्चित समय पर उन के गृह में पुत्रजन्म का आनन्द हुआ। बालक को वयस्क होने पर विद्याध्ययन के लिये विद्यालय भेजा गया। किन्तु पढ़ना लिखना किस का—यहां तो इस ने सब से मुख्य पाठ—अन्य विद्यार्थियों के पैसे और पुस्तकें चुराने का सीखा। अगत्या शिक्षक को इस बात की इस के पिता से शिकायत करनी पड़ी। बैङ्क में उच्चपदाधिकारी होने के कारण उस का वह पापाचार किसी को विदित नहीं होने पाया था, किन्तु आज अपने पुत्र की नीच प्रकृति का हाल सुन उस से न रहा गया और आंखों में आंसू भर अपने उस अधम कृत्य का हाल शिक्षक के सामने वर्णन कर दिया और कहने लगा कि "मेरे इस अनुचित कार्य का हाल, आज पर्यन्त कोई नहीं जानता, किन्तु उस न्यायी जगदीश्वर से मेरा वह कृत्य किसी

प्रकार भी छिपा हुआ नहीं रह सकता। मेरा पहिला पुत्र कितना प्रमाणिक और सद्गुणी है, किन्तु यह मेरे उन अपाचार ही का परिणाम है कि मुझे ऐसी दुर्गुणी सन्तान का पिता बनना पड़ा। यह मेरे उस अपराध की शिक्षा है कि जो मुझे भुगतनी ही पड़ेगी।

(३)...एक अत्यन्त सुशील और नम्र माता पिता से एक क्रोधी और दुःशील पुत्र का जन्म हुआ। एक दिन की बात है कि यह बच्चा किसी बात पर अप्रसन्न हो पृथ्वी पर लेट गया और पड़ा २ पास रक्खी हुई बूट की जोड़ी को लातें मारने लगा और क्रोधावेश में पैरों को पटकने लगा। इस के बड़े भाई ने इसे फुसला कर समझाना चाहा; किन्तु यह कब समझने वाला था; बूट को छोड़, उस के स्थान में एक लात बड़े भाई को प्रदान की। यह देख, पिता बीच में पड़ा; किन्तु यहां पिता की कब परवाह की जा सकती थी। बड़े भाई को छोड़ पिता को धर पकड़ा और लगा लातों से सत्कार करने। इस आवेशी और क्रोधी स्वभाव के विषय में अनुसन्धान करते हुए उस के पिता द्वारा ज्ञात हुआ कि "जिन दिनों यह बच्चा गर्भ में था उन दिनों "ली" (Lee) के सैनिकों ने हमारा घर लूटा, इस की माता ने सैनिकों से प्रार्थना की, कि "उसे कष्ट न पहुंचाया जाय।" सैनिकों ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया और उसे क्लेश पहुंचाने लगे। उन के इस व्यवहार से उसे क्रोध हो आया और इसी क्रोधावेश में उस ने उन (सैनिकों) को लातों और मुक्कों से खूब पीटा *। इस मार पीट के कुछ ही दिन बाद इस बच्चे का जन्म हुआ। डाक्टर

---

* रक्तविज्ञान के आधार पर यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि मन की जुदी २ स्थिति के समय रक्त में जुदी २ रीति से परिवर्तन होता रहता है। क्रोध, मोह, लोभ, ईर्षा, द्वेष, वैर, कपट आदि दुर्गुणों से रक्त में विशेष प्रकार के विष उत्पन्न हो जाते हैं। ये विष शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव करते हैं—यही कारण है कि आपत्ति ग्रसित मनुष्य प्रायः बीमार हो जाता है। एक अमेरिकन रसायनवेत्ता विद्वान् ने इस विषय में कई प्रयोगों द्वारा बहुत कुछ मालूम किया है। हां, तो कहने का आशय इतना है कि ऐसी स्थिति में गर्भाधान करने से अथवा

"डाक्टर" ने इस बच्चे के मस्तक की निरीक्षा की तो मालूम हुआ कि कान के पीछे कुछ ऊपर की ओर जो संहारक शक्ति का स्थान है उस ने इस बच्चे में अधिक विकास पाया था—वही भाग अधिक पुष्ट हुआ था।

(४)...एक * सगर्भा स्त्री को "जिन" नामक मदिरा पीने की उत्कट इच्छा हुई, किन्तु दुर्भाग्यवश उस की इच्छा पूरी नहीं हुई। प्रसवकाल निकट आया और बच्चे का जन्म हुआ कि जो लगातार सात आठ दिन तक बराबर रोता रहा। अनेक चेष्टाओं के निष्फल होने पर उसे शराब दिया जाने लगा। किन्तु ज्यों ही उसे "जिन" शराब दिया गया तत्काल उस का रोना बन्द हो गया।

(५)...एक दम्पत्ति को गणितशास्त्र से कुछ भी प्रेम न था। उन्हों ने व्यापार करना आरम्भ किया, किन्तु पति को आंखों को पीड़ा हुई और व्यापारसम्बन्धी कार्य्य करने को असमर्थ रहा। स्त्री ने अपने पति की सहायता कर व्यापार बढ़ाने का प्रयत्न किया। गणितशास्त्र से प्रेम न था, किन्तु पति की अशक्तता के कारण व्यापारसम्बन्धी पत्र-व्यवहार करना, आय व्यय का हिसाब रखना और जमाखर्च आदि का काम उसी को करना पड़ता था। उस के उत्साह और कार्य्यतत्परता से

गर्भवास के दिनों में गर्भवती के मन पर इन का प्रभाव पड़ने से रक्त में विशेष प्रकार के परिवर्तन होते हैं। इसी रक्त से बच्चे का बीज बनता है एवम् शरीर-रचना होती है; अतएव गर्भाधान के समय अथवा गर्भावास के दिनों में ऐसी अधम वृत्तियों के विकास पाने से मनःशक्ति द्वारा तो सन्तान पर बुरा प्रभाव होता ही है, किन्तु साथ ही यह भी है कि इस प्रकार रक्त में जो विष-जो दोष-उत्पन्न हो गए हैं, उसी रक्त से बच्चे का पोषण होने के कारण दूसरी तरह से भी बच्चे की मानसिक शक्तियों को हानि पहुंचाते हैं और स्वास्थ्य एवम् शारीरिक सौन्दर्य्य में भी विक्षेप डालते हैं, जैसा कि अन्यत्र भी कहा गया है।

* सुश्रुत ने भी इस बात को बच्चे तथा गर्भिणी दोनों के लिये हानिकारक बतलाया है (देखो अ० ३-श्लोक २१ से ३२ तक) अतएव गर्भस्थ सन्तान और गर्भवती के लाभार्थ, गर्भवास के दिनों में उत्पन्न होनेवाली उस की इच्छाओं को पूरा करना चाहिये।

व्यापार दिनोंदिन बढ़ने लगा। व्यापार बढ़ने से कार्य्य बढ़ा और उस का प्रायः सारा समय हिसाब किताब करने ही में जाने लगा। अतएव उस की गणित विषयक मनःशक्ति ने विकास पाया। इसी समय वह गर्भवती हुई और एक सुन्दर कन्या का जन्म हुआ कि जो वयस्क होने पर गणित-शास्त्र में बहुत ही कुशल और प्रवीण निकली। यद्यपि उस के माता पिता गणितशास्त्र में अनभिज्ञ से थे, किन्तु जिन दिनों वह गर्भ में थी उन दिनों व्यापार बढ़ जाने के कारण उस की माता को अपना सारा समय व्यापार सम्बन्धी हिसाब किताब और पत्रव्यवहार में लगाना पड़ा था और उस ने उस में बहुत उत्साह पूर्वक भाग लिया था। अतएव यह इसी उत्साह का प्रभाव हुआ कि कन्या गणितशास्त्र में विलक्षण बुद्धिवाली उत्पन्न हुई। यह कन्या नौ वर्ष की कोमल वय में पत्रादि लिखने का कार्य्य इतनी योग्यता पूर्वक कर लेती थी कि देखनेवाला उस के लेखनचातुर्य्य और लेखनशैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता था। जिन दिनों यह कन्या गर्भ में थी उन दिनों इस की माता सङ्गीत शास्त्र का भी अभ्यास करती थी, अतएव कन्या ने गायन में तथा पियानो * बजाने में भी निपुणता प्राप्त की। कन्याप्राप्ति के कुछ समय पश्चात् इन के यहां एक पुत्र का जन्म हुआ कि जो सब प्रकार अपनी बहिन के समान था। कारण यही कि पुत्र के गर्भवास के दिनों में भी माता का वही क्रम जारी था।

(६) अर्जुन पुत्र, वीर अभिमन्यु का उदाहरण पहिले प्रकरण में दिया जा चुका है, अतएव यहां उसी प्रकार के संयोग और मानसिक शक्ति से मिलता हुआ दूसरा उदाहरण "महान् वीर नेपोलियन बोनापार्ट" का दिया जाता है कि जिस के नाम से समस्त यूरोपखण्ड थर्राता था—जिस ने समस्त यूरोपखंड को जीतने का प्रयत्न किया था।

नेपोलियन क्या था? कैसा था? कौन था? इस विषय में हम इस जगह कुछ उल्लेख नहीं करेंगे। क्या शिक्षित वर्ग में ऐसा कोई होगा कि जो इस के ज्वलन्त वीरत्व और नैतिक कार्य्यों से अनभिज्ञ होगा? यहां हमें केवल

---

* हारमोनियम के सदृश एक प्रकार के अङ्गरेज़ी बाजे को कहते हैं।

इस बात का उल्लेख करना है कि वह ऐसा वीर और नीतिज्ञ किस प्रकार उत्पन्न हुआ—उस में इन शक्तियों ने इतनी उत्तमता के साथ कैसे विकास पाया ? इस के समाधान में हम दो एक विद्वानों का किया हुआ उल्लेख ही इस जगह उद्धृत कर देना काफ़ी समझते हैं :—

" * कहा जाता है कि नेपोलियन की माता गर्भवास के दिनों में "प्लूटार्क" के लिखे हुए जीवनचरित्र और ग्रीसियन वीर साहित्य पढ़ा करती थी। उस के इस अनुराग और पठन पाठन ही का यह प्रभाव हुआ कि नेपोलियन में इन गुणों ने विकास पाया। "

" † जिस समय नेपोलियन गर्भ में था उस समय उस की माता तेज़ घोड़े की सवारी करती और घोड़े तथा अपने पति के अधीन सैनिकों पर एक रानी के समान अधिकार रखती और हुकूमत करती। क्या उस के इन कार्यों का—इस मनःशक्ति का—उस की गर्भस्थ सन्तान (नेपोलियन) पर प्रभाव न हुआ होगा ?

(७) एक उदाहरण मैं स्वयम् अपना देता हूं :—मैं जिस समय अपनी माता के गर्भ में आया, "मेरे पिता जी एन्ट्रेन्स" की पढ़ाई में दत्तचित्त थे। अतएव मेरे गर्भ में आने के समय उन की विद्याप्रेम और विद्या ग्रहण करने अथवा किसी नवीन विषय को सीख लेने की शक्ति उत्तम रूप से विकास पाई हुई थी। इसी शक्ति ने उपर्युक्त शक्तियों को मुझ में विकास दिया और मैं कुछ सीख लेने को भाग्यशाली हो गया ; वरन् कोमल वय में पिताजी के चिर वियोग और कौटुम्बिक आपत्तियों के कारण, ऐसे संयोग

---

* "It is said that the mother of Napoleon read Plutarch's lives and heroic literature and that her moods of mind were transferred to her son."

(Joseph Cook.)

† Because of his mother's state all the time she was carrying him, in exercising queenly power over her spirited charger and the subordinates of husband, and comingly with the army. Had her state of mind nothing to do with his ruling Passion strong in death. (Dr. Fowler.)

उपस्थित हो गयी थी कि मैं प्रायः मूर्ख रह गया होता। समयानुसार मेरी माता ने मुझे फारसी भाषा की शिक्षा दिलाई, और श्रीमान् कोटा-दरबार की अतुल कृपा के कारण "नोबिल्स स्कूल" में भरती हो कुछ अंगरेजी का ज्ञान प्राप्त करने को समर्थ हुआ। इस के बाद मुझे कोई मजबूरी नहीं थी कि मैं अन्य भाषाओं के सीखने का परिश्रम करता। मैं ने जो कुछ सीखा उसी से अपना कार्य चला सकता था, किन्तु यह उन्हीं वृत्तियों के विकास पाने का कारण है कि आज मुझे पाठकों के समक्ष उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी वृत्ति ने मुझे अपनी मातृभाषा सीखने का उत्साह दिलाया; इसी के कारण मैं गुजराती और मराठी आदि जानने को समर्थ हुआ। और यह इसी का प्रभाव है कि आज भी यदि कोई नवीन पुस्तक मेरे हाथ पड़ जाती है तो उस के पढ़ने में इतना लीन हो जाता हूं कि समय पर भोजन और निद्रा तक को भूल जाता हूं। अगनित ही वार ऐसे प्रसंग आये हैं कि पढ़ते २ रात के चार बज गये और न तो मुझे निद्रा ही ने सताया और न यह ही ध्यान रहा कि रात कितनी व्यतीत हो चुकी है ?

किन्तु पाठक ! अब तक जितने उदाहरण दिये गये वे सब ऐसे हैं कि जिन में सन्तान पर स्वतः प्रभाव हुआ है ; अतएव हम दो एक उदाहरण इस प्रकार के भी, कि जिन में सन्तान पर इच्छित प्रभाव डालने की चेष्टा की गई हो, और उसी के अनुसार प्रभाव हुआ हो, देते हुए इस प्रकरण को समाप्त करना चाहते हैं :—

(१) "चार्ल्स किंग्स्ली" जिस समय गर्भ में था, उस की माता ने इस विचार से "कि इस वक्त के मेरे आचार विचार आदि का मेरी गर्भस्थ सन्तान पर प्रभाव होगा" अपने हृदय में वैराग्य और धर्मवृत्तियों को विकास दिया। सांसारिक वैभव और सुख का परित्याग कर साधुभाव से रहने लगी। नगर का निवास छोड़ ग्रामवास स्वीकार किया और अपना अधिक समय सृष्टिसौन्दर्य और प्रकृति की मनोहरता के देखने में व्यय करने और उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर की अलौकिक महिमा और सृष्टि-चातुर्य का मुक्तकण्ठ से यशोगान करने लगी। इसी प्रकार समय बिताते

हुए प्रश्नकाल समीप आगया और महात्मा "किंग्स्ली" ने इस प्रकार संसार में जन्म ग्रहण किया कि जिस ने प्रकृतिसौन्दर्य्य पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा और एक प्रतिष्ठित धर्माध्यक्ष के स्वरूप में यश प्राप्त किया।

(२) ... एक स्त्री ने "मनःशक्ति द्वारा इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न कर लेने का ज्ञान प्राप्त कर अपने पुत्रों को इच्छानुसार मानसिकशक्ति वाला उत्पन्न कर कृतकार्य्यता प्राप्त की।" वह जो कुछ अपना अनुभव बतलाती है, उसी के शब्दों में पाठकों के विदितार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है। वह कहती है कि :—

"मेरे पहिले पुत्र के प्रसव होने से केवल एक मास पहिले मैं इस"
"बात के जानने को समर्थ हुई कि मनःशक्ति द्वारा इच्छानुसार गुणोंवाली"
"सन्तान उत्पन्न की जा सकती है; किन्तु जन्म समय अधिक निकट होने"
"के कारण मैं अपने पहिले पुत्र पर मनःशक्ति द्वारा पूर्ण रूप से इच्छित"
"प्रभाव नहीं डाल सकी और वह साधारण बुद्धि का उत्पन्न हुआ।"

"जब दूसरा पुत्र मेरे गर्भ में आया तो मेरी इच्छा हुई कि उसे"
"उत्तम और प्रभावशाली वक्ता बनाऊं। मैं प्रसिद्ध २ वक्ताओं के भाषण"
"सुनने को जाया करती और उन के भाषणों को ध्यानपूर्वक सुनती।"
"सुयोग्य वक्ता और लेखकों के लेख और कविताएं पढ़ती और अपने"
"आप का विचार रखती। इसी क्रम से भाषण सुनते और लेख पढ़ते"
"गर्भवास के दिन पूरे हुए और पुत्र का जन्म हुआ कि जिस में वक्तृत्व-"
"शक्ति ने आशातीत विकास पाया था।" इस बच्चे की मस्तक परीक्षा"
"करते हुए डाक्टर फाउलर कहता है कि "इस में (१) कल्पनाशक्ति"
"(२) किसी बात को दिखा देनेवाली—दर्शा देनेवाली—शक्ति, (३)"
"नकल करने की शक्ति, (४) भाषण माधुर्य्य, (५) बुद्धि और कारणशक्ति"
"आदि ने बहुत ही उत्तमता पूर्वक विकास पाया है।"

---

(1) Ideality. (2) Expression. (3) Imitation. (4) Wit.
(5) Reason.

" तीसरे पुत्र के गर्भ में आने पर मेरी इच्छा हुई कि उसे चित्रकारी"
"आदि में कुशलहस्त और प्रवीण उत्पन्न करूं। इसी इच्छा से मैं "न्यूयार्क,"
"बोस्टन," "फ़िलेडेल्फिया," "बालटीमोर" और "मामफ़ीस" आदि नगरों"
"में प्रसिद्ध २ चित्रकारों के चित्रालयों में गई और उन के अंकित किये हुए"
" अति मनोहर और सुन्दर चित्रों का बहुत ध्यानपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से "
" अवलोकन तथा अभ्यास करती और मुक्तकण्ठ से उन के हस्तकौशल "
" की प्रशंसा करती। मैं ने अपने तीसरी बार के गर्भवास का प्रायः "
" सारा समय इसी प्रकार निकाला। समय पर मेरे तीसरे पुत्र का जन्म "
" हुआ कि जिस के वयस्क होने पर मेरी आशालता पूर्ण रूप से फल-"
" वती हुई। इस में (१) अवलोकन-शक्ति, (२) योजना-शक्ति और (३)"
" प्रत्येक बात को सीख लेने की शक्ति ने विशेषता से विकास पाया था।"
" अन्त में मैं निश्चयपूर्वक कहती हूं कि गर्भावस्था में मैं ने जिस २ विषय "
" में अपनी मनःशक्ति को लगाया, उस ही उस विषय में मेरी सन्तान "
" योग्य उत्पन्न हुई।"

उपर्युक्त उदाहरणों से पाठक अच्छे प्रकार समझ गये होंगे कि माता पिता की मानसिकशक्ति का—चाहे वह सद्गुणी हो अथवा दुर्गुणी—सन्तान पर कितना प्रभाव होता है और यदि माता पिता चाहें तो गर्भाधान के समय * और गर्भवास के दिनों में इच्छित विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अपनी मानसिकशक्ति को विकसित कर उसी के द्वारा; उसी प्रकार की मानसिकशक्ति को बच्चे में विकास दे सकते हैं।

---

(1) Perceptives. (2) Constructive. (3) Acquisition.

* अमेरिका में दो स्त्री पुरुषों ने अपने भावी सन्तान का नाम चार अक्षरों का चुना था। जब लड़का उत्पन्न हुआ तब वे ही चार अक्षर लड़के की दोनों आंखों में अंकित दीख पड़े। लड़के की आंखें डाक्टर को दिखाई गईं। उस ने कहा इन अक्षरों से देखने में कोई रुकावट नहीं पहुँचेगी।

"शिक्षा"—३१ अक्टूबर, १९१२,

प्रकरण नवां।

पाठक महाशय ! आप, सन्तानोत्पत्ति-इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति से सम्बन्ध रखनेवाले, प्रायः सारे आवश्यकीय विषय देख चुके हैं ; अब आप को रीति मालूम करने के अतिरिक्त, और कुछ जानना शेष नहीं रह गया है।

कहने मात्र को रीति का जानना शेष रह गया है; वरन् वास्तव में देखा जाय, तो उसे भी आप देख चुके हैं। उसे भी मालूम करना—उसे भी जान लेना—आप के लिये बाकी नहीं है। क्योंकि वह रीति आप के लिये कोई नवीन बात नहीं है ; वह अब तक जो कुछ कहा गया है, उसी का सारांश मात्र है—उसी को नियमबद्ध कर आप के सामने रख देना मात्र है।

यदि आप थोड़ा परिश्रम कर, स्मरणशक्ति से काम लें, तो मुझे बतलाने की आवश्यकता न हो और आप स्वयम् उसे (रीति को) मालूम कर सकें—आप स्वयम् उन नियमों को स्थिर कर सकें—कि जिन के अनुसार कार्य्य करने से—जिन की पाबन्दी करने से—अपनी सन्तान—भावी सन्तान—को इच्छानुसार वर्ण, शारीरिक सौन्दर्य्य, स्वास्थ्य और मानसिक-शक्ति प्रदान की जा सकती है।

इच्छा तो यही होती है कि हम इस कार्य्य को पाठकों पर छोड़, इस पुस्तक को, यहीं समाप्त कर दें, किन्तु केवल एक बात का विचार हमें इस प्रकरण के लिखने को विवश करता है ; और वह यही है कि, हमारी सर्वसाधारण बहिनों तथा भाइयों में, इस समय तक विद्या का इतना प्रचार नहीं है कि वे परिश्रम कर, इन नियमों को एकत्रित कर सकें और उन से पूरा लाभ उठा सकें, अतएव उचित होगा कि इसे हम ही पूरा कर पुस्तक को सर्वोपयोगी बनाने में कमी न करें कि जो हमारा प्रधान उद्देश्य रहा है।

अच्छा ! तो पाठक ! चाहिये हमारा अब रीति का भी अवलोकन कर लीजिये :—

इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करने की रीति दो क्रम से बतलाई जा सकती है :—प्रथम, बच्चे के विकासक्रम के अनुसार अर्थात् गर्भ में जिस २ क्रम से जिस २ अवयव का संगठन होता है उस ही उस क्रम से उस के उत्तम रूप से विकास देने की रीति बतलाई जाय। दूसरे, आठवें प्रकरण में जिस क्रम से बच्चे पर होते हुए प्रभावों के विषय में निर्णय किया जा चुका है; अर्थात् :—

(१) सौन्दर्य्य
- (अ) वर्ण की सुन्दरता।
- (क) शारीरिक सुन्दरता।
- और
- (च) स्वास्थ्य।

और

(२) मानसिक शक्तियों का विकास।

कहिये पाठक ! आप को इन दोनों में से कौन क्रम अधिक सुगम और उचित प्रतीत होता है ?

क्या इस रीति का बच्चे के विकासक्रम के अनुसार बतलाना उचित होगा ? किन्तु, इस प्रकार बतलाने से अव्वल तो आठवें प्रकरण में लिखे हुए क्रम को छोड़ना पड़ता है; दूसरे बच्चे के अवयव अर्थात् सिर, हाथ, पैर, आंख, नाक, कान आदि भी क्रम वार विकास नहीं पाते, वे भी प्राय: साथ ही साथ प्रकट हो, क्रम: २ विकास पाते और पुष्ट होते हैं; अतएव महीने के क्रम से बतलाने में, एक २ अवयव को पूरे तौर पर विकास देने के लिये, उस ही उस अवयव के विषय में पुन: २ उल्लेख करना पड़ेगा तो क्या आठवें प्रकरण में लिया हुआ क्रम ही हमें यहां भी स्वीकार करना चाहिये ? किन्तु ऐसा करने में भी वही आपत्ति आती है और हमें बच्चे के विकासक्रम का छोड़ना पड़ता है। अतएव हम इस के निर्णय करने की झंझट में न पड़ कर तीसरा ही मार्ग स्वीकार करते हैं, और आशा

करते हैं कि वह पाठकों को अधिक सुगम और उपयोगी होगा। इस के पश्चात् पाठकों को अधिकार है कि वे इसे जैसी इच्छा हो उस प्रकार से और क्रम से काम में लायें। इन का आशय न बदल, इन को किसी प्रकार काम में क्यों न लाया जाय, ये कदापि लक्ष्यभ्रष्ट नहीं हो सकते।

किन्तु रीति के बतलाने से पहिले दो तीन बातों के विषय में निश्चय कर लेना आवश्यकीय मालूम होता है; अतएव पहिले उन को निश्चय कर लेना चाहिये :—

(१) सन्तान में विकास देने के लिये कौन वर्ण उत्तम है ?

(२) सन्तान का शारीरिक संगठन कैसा होना चाहिये ?

(३) और किस २ प्रकार की मानसिकशक्ति को सन्तान में आम तौर पर (generally) विकास देना चाहिये ?

देखिये ! :—

(१) हमारा पहिला प्रश्न है कि "कौन वर्ण उत्तम है कि जिसे हम अपनी सन्तान में विकास देने के योग्य समझते हैं ?" उत्तर में निवेदन है कि, मनुष्य प्रकृति ही से श्वेत वर्ण की ओर—गौरवर्ण की ओर—अधिक आकर्षित होता है उसे प्रकृति ही से—स्वभाव ही से—गौर वर्ण अधिक प्रिय है—कारण यही कि श्वेत रङ्ग प्राकृतिक * रङ्ग है; अतएव

---

* श्वेत रङ्ग को प्राकृतिक रङ्ग कहने का कारण यह है कि, श्वेत रङ्ग वास्तव में कोई रङ्ग नहीं है; वह सब प्रकार के रङ्गों का मिश्रण मात्र है—अर्थात् सब रंग मिल कर श्वेत रंग बना है—अथवा श्वेत रंग ही से सब प्रकार के रंग उत्पन्न हुए हैं। पाठक ! क्या इस बात के मानने में आप को किसी प्रकार का संकोच है ? यदि है, तो इस का समाधान भी कर लीजिये :—आप ने, मोमबत्ती जलाने के, जो छत में लटकाने के बड़े २ झाड़, फानूस आदि होते हैं, अवश्य देखे होंगे; और उन में जो काच के तिपहल् (तीन पहलूवाले) लटकन लटके रहते हैं, वे भी अवश्य ही देखे होंगे ; और बहुत सम्भव है कि बचपन में कहीं से हाथ पड़ जाने पर, कौतूहल पूर्वक, उन के द्वारा प्रकाश की किरणों को वक्रीभवन हो कर जुदे २ रङ्ग उत्पन्न करते हुए भी देखा होगा। साधारण दृष्टि से देखने पर वह काच का टुकड़ा सफेद रंग का है—उस में

श्याम-वर्ण को तो त्याग ही दीजिये। अब रहा गौर वर्ण। इस में पसन्द कीजिये कि किस गौर वर्ण को आप अधिक पसन्द करते हैं? क्या यूरोपियनों का फीका गौर वर्ण? क्या जापानियों तथा चीनियों का पीत गौर वर्ण अथवा स्कौटलेण्डनिवासियों का रक्त-गौर-वर्ण? या भारतवासियों का सांवला रंग (जैसा कि वर्षाधिक्य के कारण आज कल मान लिया गया है)?

किसी प्रकार का रंग दिया हुआ नहीं है—किन्तु आंख से लगा कर देखने पर इसी में इन्द्र-धनुष (इन्द्र-धनुष भी प्रकाश की किरणों के परावृत होने ही से नज़र आता है और इसी लिये जब कभी दिखाई देता है सूर्य्य से प्रतिकूल दिशा में दिखाई देता है) के समान चित्र विचित्र रंग नज़र आते हैं। अब कहिये! इस सफेद कांच में तो ये रंग दिये हुए हैं नहीं; फिर ये रंग आये कहां से? पाठक! ये रंग कहीं से नहीं आये, वरन् इसी सफेद कांच के टुकड़े ने, तिरछा कटा हुआ होने के कारण प्रकाश की किरणों को, कि जिन में ये सब रंग वर्तमान हैं, जुदे २ रूप से परावृत कर जुदे २ रंग उत्पन्न कर दिखाये, कि जिस से आप आश्चर्य्य, चकित और मुग्ध हो गये। और, इसे जाने दीजिये और स्वयम्सिद्ध कार्य्य पर अधिक भरोसा कीजिये। एक लकड़ी का गेंद लीजिये और उसे जुदे २ रङ्ग की लकीरों से रङ्ग दीजिये; फिर उस के दोनों सिरों में डोरी बांध कर फिराइये, और देखिये कि वह किस रङ्ग का नज़र आता है। वह आप को अवश्यमेव सफेद रंग का नज़र आयगा। सफेद रङ्ग का क्यों नज़र आयगा? कारण यह कि जो कुछ भी दृश्य देखने में आता है, उस का प्रभाव, एक सेकण्ड तक आंख में बराबर बना रहता है। उपर्युक्त गेंद के रङ्ग, इस प्रकार फिराने से आप को एक सेकण्ड में कई बार नज़र आवेंगे, और एक सेकण्ड में कई बार नज़र आने से उन का प्रभाव या प्रतिबिम्ब आंख में मौजूद रहेगा। इस प्रकार एक रंग का प्रभाव नहीं मिटने पायगा कि दूसरे, तीसरे, चौथे आदि रङ्गों का प्रभाव आंख पर पड़ेगा, और उन सब रङ्गों का आप की आंख में मिश्रण होगा। यह मिश्रण अथवा संयुक्त प्रभाव ही, उक्त नाना प्रकार के रङ्गों से रंगे हुए गेंद को, आप की दृष्टि में सफेद रंग का बना देगा—अर्थात् वह गेंद आप को सफेद रंग का नज़र आयगा। इसी लिये श्वेत रंग को सब रंगों का मिश्रण आदि कहा गया है।

कहिये पाठक ! इन में से कौन वर्ण आप को प्रिय और उत्तम प्रतीत होता है, और किस को आप अपनी सन्तान में विकास देना चाहते हैं ? यदि आप को मुझ पर विश्वास और भरोसा है तो निःशंक होकर कह दीजिये कि इन में से किसी वर्ण को हम अपनी सन्तान में विकास देना नहीं चाहते। ये सब विदेशी हैं; और विदेशी वस्तु कि जो हमारे प्राचीनत्व को, किमधिकम् हमारे अस्तित्व को, मिटा देने वाली है, हमारे लिये सर्वथा अग्राह्य है—हमारे लिये बहिष्कार करने योग्य है। हमें इन में से किसी वर्ण की आवश्यकता नहीं; हमें हमारा स्वदेशी—स्वजातीय—वर्ण चाहिये। वही हमारे लिये सर्वश्रेष्ठ है। हमारे स्वजातीय वर्ण के आगे ये सब उतने ही फीके हैं कि जितना सूर्य के सामने दीपक आभाविहीन होता है। यह हमारी अयोग्यता है कि अन्यान्य विषयों की तरह वर्ण में भी पतित दशा को प्राप्त होते जाते हैं और पवित्र आर्य्य जाति के उत्तम वर्ण से विमुख रहते हुए अनार्य्य जातियों के श्याम वर्ण को, विशेषता के साथ अपनी सन्तान में, विकास देकर उसे सर्वथा पतित बनाने की चेष्टा कर रहे हैं; वरन् ईश्वर ने तो हमारी जाति (आर्य्य जाति) को सर्वश्रेष्ठ वर्ण प्रदान किया है, कि जिस के नमूने, इस हीन अवस्था को पहुंची हुई आर्य्य जाति में अब भी प्रायः देखने में आही जाया करते हैं, कि जिन को देखने के साथ ही प्रकृति की रचनाचातुरी पर चकित हो, हृदय ईश्वर-भक्ति से परिपूर्ण और गद्गद हो जाता है। अतएव, पाठक ! हमारा कर्तव्य है कि हम किसी और वर्ण को न ले इसी सर्वोत्तम गौरवर्ण को, कि जो हमारी जाति का प्रधान वर्ण है और जिसे देखने पर आप अलौकिक वर्ण के नाम से परिचय कराते हैं, अपनी सन्तान में विकास दें और अपनी जाति में, अपने पूर्व वर्ण को फिर से हस्ति करें।

(२)··· दूसरे प्रश्न के विषय में, हमें कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि शारीरिक सौन्दर्य्य के विषय में उल्लेख करते हुए आठवें प्रकरण में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इस के अतिरिक्त यहां उत्तम शारीरिक संगठन के चित्र दे दिये गये हैं; अतएव स्त्रियों के

देखने से सब अभाव पूरा हो सकता है। 'हाँ! इतना कह देना आवश्यकीय प्रतीत होता है, कि शारीरिक संगठन में, पुत्र और पुत्री के शारीरिक संगठन का विचार अवश्य रखा जाय। क्योंकि पुत्र के लिये दीर्घकाय दृढ़ पुष्ट और बलिष्ठ शारीरिक संगठन की आवश्यकता है, और पुत्री के लिये कोमल और सुकुमार शारीरिक संगठन की, जैसा कि इस जगह दिये हुए दोनों चित्रों से पाठकों को अच्छे प्रकार विदित हो जायगा। देखो चित्र नं० (१७) तथा (१८)।

(३)···हमारा तीसरा प्रश्न है कि, किन २ मानसिक शक्तियों को आम तौर पर (Generally) सन्तान में विकास देना ही चाहिये? इस के लिये विचार कीजिये कि एक मनुष्य में सर्वप्रिय और सर्वगुणसम्पन्न होने के लिये—विद्या सम्बन्धी विषयों को छोड़ स्वभाव आदि में-किन २ गुणों की आवश्यकता है, और कौन २ गुण होने से मनुष्य स्वदेशोपयोगी, सर्वप्रिय, और सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है? देखिये :—(१) आस्तिकता, (२) सहिष्णुता, (३) न्यायपरायणता, (४) दयालुता, (५) उदारता, (६) सुशीलता, (७) गम्भीरता, (८) दूरदर्शिता, (९) दृढ़ता, (१०) मनःशक्ति, (११) स्मरणशक्ति, (१२) कल्पनाशक्ति, (१३) संकल्पशक्ति, (१४) विवेकशक्ति, (१५) प्रेम, (१६) भाषण, माधुर्य (१७) स्वदेशानुराग, (१८) स्वातंत्र्य प्रियता, (१९) स्वावलम्बन, (२०) स्वात्माभिमान, (२१) निर्भीकता (२२) धैर्य्य, (२३) क्षमा, (२४) वीरता, और (२५) प्रमाणिकता आदि गुणों को सामान्य रूप से सन्तान में विकास देने की आवश्यकता है। अतएव सन्तान में—हमारी भावी सन्तान में देश का दुर्दैव मिटा; पुनः धनधान्यपूर्ण, सद्विद्याशाली और स्वतन्त्र करने के लिये, आम तौर पर उपर्युक्त गुणों के विकास देने की आवश्यकता है। इन बातों का—इन उत्तम गुणों का—हमारी सन्तान में विकास होगा, तब ही हमारे देश का सौभाग्यसूर्य्य पुनः पूर्व क्षितिज में उदय होता हुआ दृष्टिगोचर होगा और तब ही आर्य्य जाति का, अज्ञानान्धकार, मोहनिद्रा और दासत्व रूपी तिमिर से पीछा छूटेगा।

पाठक ! इन गुणों की लम्बी चौड़ी संख्या को देख कर ही निराश न हूजिये; थोड़ा धैर्य्य से काम लीजिये। इन गुणों को सन्तान में विकास देना कोई कठिन काम नहीं है—ये बहुत सरलता पूर्वक—आसानी के साथ—सन्तान में विकास दिये जा सकते * हैं। हां, प्रयत्न मुख्य है।

---

* (१) ईश्वर प्रति भक्ति रखनी, और उसे समस्त संसार का रचयिता और हमारे प्रत्येक सांसारिक कार्य्य में संजीवनी शक्ति (सिद्धि) प्रदान करनेवाला समझ उस का आदर करना चाहिये। (२) सांसारिक कार्यों में सहनशील रहना—कठिनाई आदि उपस्थित होने पर विह्वल न हो जाना। (३) सदा सत्य का व्यवहार करना, सत्य बात का पक्ष लेना, झूठी बात या झूठे मनुष्य का पक्ष न लेना। (४) दूसरों पर दया रखनी, अशक्त व्यक्तियों की सहायता करनी, उन के दुःख में सहानुभूति रखनी, यथाशक्य उन के कष्ट की निवृत्ति के अर्थ परिश्रम करना, उन की उपेक्षा कदापि न करनी। (५) कंजूस (कृपण) न बनाना, समय पर जो व्यय करना उचित हो उसे खुले दिल से करना, उचित कार्य्य में तन से मन से और धन से योग देना, अपव्यय करने को—फ़ज़ूलखर्ची को—और बुरे कामों में पैसा देने को—उदारता नहीं कहते। (६) अपने से बड़ों का आदर करना, उन से विनय पूर्वक रहना—छोटों पर प्रेम रखना और मनुष्य मात्र से अच्छा व्यवहार करना, उन्हें अपने बन्धुवत् समझना। (७) अपने स्वभाव और कार्यों में छिछोरापन न रखना, बहुत गम्भीर रहना, हृदय के विचारों को हृदय में रक्षित रखना, हर किसी के सामने उन को व्यक्त न करना। (८) किसी बात के सामने आने पर उस का हानि लाभ समझ लेना और आगे आनेवाली कठिनाइयों को पहिले से सोच लेना। (९) अपने विचारों और कार्यों पर दृढ़ रहना, किसी की बातों में आकर हर किसी बात को न मान बैठना; अपनी बुद्धि से परामर्श लिये बिना किसी कार्य्य को न करना—करने पर उसे पूरा किये बिना कदापि न त्यागना। (१०) अपनी मनःशक्ति को निर्बल न समझना—उसे बहुत बलवान समझना; उस में प्रत्येक कार्य्य को सम्पादन करने वाली शक्ति मौजूद है। (११) प्रत्येक बात को स्मरण रखना, और विशेष रूप से स्मरण रखने की चेष्टा करनी। (१२) अपनी कल्पना करने की शक्ति से काम लेना—हर एक विषय को भावराज्य में यथातथ्य सामने खड़ा

प्रयत्न कीजिये; आज नहीं कल ये गुण आप की सन्तान में विकास पायेंगे। आप अपनी आयु की ओर ध्यान न दीजिये; ध्यान दीजिये देश की आयु की ओर। यदि आप की दो चार पीढ़ियों में भी इन गुणों ने आप की सन्तान में सन्तान दर सन्तान प्रतिबिंबित होते हुए—पूर्णरूप से विकास पा लिया, तो देश—आप का देश—आप की प्यारी जन्मभूमि—सर्वगुण सम्पन्न और धनधान्य से परिपूर्ण हो कर, नन्दनवन के सदृश आप को शान्तिसुख देने और संसार की अन्य जातियों में अपना मुख उज्ज्वल कर गौरवान्वित मानी जाने और आदर करने योग्य बनने को तय्यार खड़ी है। अन्यान्य देशों की तरह इसे उच्चदशा प्राप्त करने के लिये शताब्दियां नहीं चाहियें—इसे आप का थोड़ा सहारा बस होगा। आशा है कि आप अपनी सन्तान में उपर्युक्त गुणों को विकास देने का परिश्रम कर—अपनी

कर लेना। (१३) जिस किसी भी काम का संकल्प किया जाय—इरादा किया जाय—उसे बहुत दृढ़ता पूर्वक किया जाय—प्रत्येक बात का संकल्प ही मर आधार है। (१४) प्रत्येक विषय के हानि लाभ को उस के औचित्य और अनौचित्य को—उस के सारासारपन को—समझ लेना—पारस्परिक व्यवहार में सत्यता, शुद्धता और समता आदि का विचार रखना। (१५) अपने देश से, अपनी जाति से, अपने कुटुम्ब से और प्रत्येक व्यक्ति से शुद्ध प्रेम करना। (१६) अपने विचारों को मधुर शब्दों में व्यक्त करना—कि जिस से सुननेवाला मुग्ध हो जाय—चापलूसी को—खुशामद को भाषा माधुर्य नहीं कहते, वरन् वह एक महान् दुर्गुण है। (१७) मातृभूमि से अपने देश से—प्रेम करना, उस का हृदय में आदर करना—उसे समृद्धिशालिनी बनाने की—सब प्रकार उच्च दशा में लाने की उत्कट अभिलाषा रखनी और इसी के अनुसार अपना आचरण भी बनाना—उस के हित साधन में यदि इस नश्वर शरीर को भी त्यागना पड़े तो उस के लिये भी अपना अहोभाग्य समझना। (१८) स्वतन्त्रता क्या है इस को अच्छे प्रकार समझ लेना यह एक नैसर्गिक वस्तु है कि जो मनुष्य मात्र के लिये समान है—अतएव इस की प्रतिष्ठा करनी—दूसरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न करना। शुद्ध स्वतंत्रता देवी के परम भक्त बनना और दूसरों को स्वतंत्रता प्राप्त कराने में सहायभूत होना। (१९) बिना किसी की सहायता के प्रत्येक कार्य्य को अपने आप सम्पादन करने की क्षमता रखना

देश को—अपनी मातृभाषा जन्मभूमि को—अपनी उन्नति के अर्थ सहायता देने में किञ्चित् मात्र भी उपेक्षा नहीं करेंगे।

विद्यासम्बन्धी विषयों को छोड़ देने के विषय में जो ऊपर कहा गया उस का कारण यह है कि:—विद्यासम्बन्धी विषय में, जिस प्रकार की विद्या में आप अपनी सन्तान को योग्य और निपुण बनाना चाहें, उसी विद्या को—उसी विद्या से सम्बन्ध रखनेवाली मनःशक्ति को—अपनी सन्तान में विकास दें। यदि आप को गणित-शास्त्र (अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित आदि) पर प्रेम है तो गणित-शास्त्र को, रसायन शास्त्र प्रिय है तो रसायन शास्त्र को, पदार्थ विज्ञान से प्रेम है तो पदार्थ विज्ञान को, भूगोलविद्या से प्रेम है तो भूगोल

और करना—दूसरों का अपेक्षित न रहना—कभी किसी की सहायता की इच्छा न रखनी; संसार में ऐसा कोई कार्य्य नहीं है कि जो अपने बाहुबल के आगे कठिन हो। (२०) अपनी आत्मा को—अपने आप को-छोटा न समझना-हीन न समझना—उस का गौरव करना—उसे सब योग्य समझना। (२१) जिस बात को अपना हृदय अच्छा समझता हो—उसे करने अथवा कहने में किसी की अप्रसन्नता का डर न रखना, सर्वथा निडर हो कर अपने विचारों को व्यक्त करना। (२२) कठिनाई उपस्थित होने पर धीरज न छोड़ना—आने वाली कठिनाई का—आपत्ति का—हिम्मत और शान्ति के साथ मुकाबला करना—किसी भी काम में जल्दी न करनी—प्रत्येक कार्य्य को शान्ति पूर्वक करना। (२३) किसी से अपराध हो जाने पर उसे क्षमा करना—अपराधी को निर्दयता पूर्वक शिक्षा न करनी। (२४) अपने आप को वीर—महान् वीर—समझना चाहिये। कायरता को कदापि हृदय में स्थान नहीं देना चाहिये। मरने से डरना वीरों का काम नहीं होता। उन के लिये मृत्यु कोई चीज नहीं है। धर्म-रक्षा और देशरक्षा ही के अर्थ इस शरीर का अस्तित्व है। इन के निमित्त यदि आवश्यकता हो तो उदारतापूर्वक अपने प्राणों को न्योछावर कर देना प्रत्येक वीर पुरुष का कर्त्तव्य है। (२५) अपने वचन को निबाहना—कपट का व्यवहार न करना—जाहिर कुछ और दिल में कुछ, यह नीच मनुष्यों का काम है। इस प्रकार अभ्यास करने से ये गुण सरलता पूर्वक सन्तान में विकास पा जावेंगे।

को, खगोल से है तो खगोल विद्या को, इतिहास यदि प्रिय है तो इतिहास विद्या को, अध्यात्म विद्या से प्रेम है तो अध्यात्म विद्या को, नैतिक—राजनैतिक—की इच्छा हो तो राजनैतिक विद्या को, युद्धविद्या प्रिय हो तो युद्धविद्या को, अथवा डाक्टरी, एञ्जिनियरी, वाणिज्य, कृषि वनस्पति, आदि में, जिसे आप अपनी सन्तान में विकास देने योग्य समझें और विकास देना चाहें, विकास * दें, यह देश और काल की आवश्यकता को विचारते हुए आप की पसन्द पर निर्भर है—आप इस विषय में स्वतंत्र हैं; किन्तु उपर्युक्त गुणों को विकास देने में आप स्वतंत्र नहीं हैं—वे तो आप को अपनी सन्तान में विकास देने ही चाहियें। हां, उन में यदि कुछ न्यूनता रह गई हो तो आप को उस क्षति को पूरा कर देने का अवश्य अधिकार है। और इसी लिये विद्यासम्बन्धी विषयों को छोड़ कर ऊपर केवल उन्हीं बातों को लिया गया है कि जिन को खास तौर पर सन्तान में— पुत्र पुत्री का भेद भाव न रखते हुए समान रूप से—विकास देने की आवश्यकता है।

रीति

इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करने की रीति का, यदि देखा जाय तो, स्त्री पुरुष के गृहस्थाश्रम स्वीकार करते ही प्रारम्भ होता है; अतएव उसी समय से, दम्पति को सन्तान के प्रति, जो माता पिता के कर्तव्य हैं, उन को जानने की चेष्टा करनी चाहिये। इन कर्तव्यों को—इन नियमों को—जाने बिना—इन का ज्ञान प्राप्त किये बिना—दम्पति को माता पिता बनने का—सन्तान उत्पन्न करने का—अधिकार प्राप्त नहीं होता। यदि अधिकार प्राप्त होने से पहिले—इन नियमों को जान लेने से

---

* विकास देने के लिये गर्भाधान के समय उसी विद्या का विचार—दृढ़ विचार—रखना और गर्भवास के दिनों में—मुख्य कर सातवें से नवें महीने तक—उस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली बातों और पुस्तकों को, श्रद्धा और एकाग्रता पूर्वक सोचने और पढ़ने का अभ्यास करना; और उस विद्या में जो २ आविष्कार हुए हैं उन का, और जिन २ व्यक्तियों ने उस विषय में आविष्कार किये हैं, अथवा जो २ इस विषय में पारंगत और सुयोग्य विद्वान् हुए हैं उन के जीवनवृत्तान्त का अध्ययन करना उचित है।

पहिले—सन्तान उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है—प्रयत्न किया जाता है—तो, वह सन्तान—नियमों से अज्ञान रहने, रजवीर्य के पूर्णरूप से परिपक्व न होने, आदि कारणों से—कदापि संतोषदायक नहीं होती; अतएव गार्हस्थ्य जीवन में आने की इच्छा रखनेवाले स्त्री पुरुषों को, गृहस्थाश्रम में आने से पहिले, अथवा आते ही, सन्तान के प्रति, मातापिता के जो कर्त्तव्य हैं, उन को जान लेना * चाहिये; और सातवें प्रकरण में बतलाया गया तदनुसार दम्पति को परस्पर, सच्चे और शुद्ध प्रेम द्वारा एक दूसरे में लीन हो जाना—तन्मय हो जाना—चाहिये।

योग्य समय † उपस्थित होने—रज और वीर्य्य के पूर्णरूप से परिपक्व और गर्भाशय के सब प्रकार निर्विकार, शुद्ध और गर्भ धारण करने योग्य होने—पर सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा करनी चाहिये।

जिस मासिक धर्म के समय गर्भाधान करने का इरादा हो, उस से, कम से कम, एक सप्ताह पहिले से स्त्री पुरुष (दोनों) को पूर्णरूप से—मनसा वाचा कर्मणा—ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करना, अपने सांसारिक कार्य्यों को नियमित रूप से चलाते हुए शेष समय को उत्तम विचारों और उत्तम पुस्तकों के अवलोकन, और देशोपकारी कार्य्यों में बिताना चाहिये।

रजोदर्शन ‡ होते ही स्त्री को एकान्तसेवन और " रजस्वला कल्प "

---

* इस पुस्तक में इन ही कर्त्तव्यों को भली भांति बतलाया गया है।

† वर्त्तमान समय और रीति को देखते हुए, सन्तानोत्पत्ति के लिये पुरुष की आयु कम से कम २१ वर्ष और स्त्री की १७ वर्ष होनी चाहिये। इस से पहिले, रज और वीर्य्य पूर्णरूप से परिपक्व नहीं हो सकते; अतएव इस से पहिले, सन्तानोत्पत्ति की चेष्टा कदापि नहीं करनी चाहिये; अन्यथा उन्हें रोगी, क्षीणकाय और अल्पायु सन्तान उत्पन्न होने से, अकाल ही में उस का वियोगदुःख सहना पड़ेगा।

‡ माननीय पण्डित जी का कथन है कि मेरी पहिली सन्तानों के नष्ट हो जाने पर, मैं ने अपनी स्त्री को अगली बार गर्भवती होने पर, शंखशोधन का सेवन कराना शुरू किया—परिणाम यह हुआ कि सन्तान जो उत्पन्न हुई जीवित रही। मैं ने दूसरे बहुत व्यक्तियों को भी यह बतलाई, और वे इस रीति से कृतार्थ हुए; अतएव मुझे इस की सफलता के विषय में पूर्ण विश्वास है।

कोष्ठक में बतलाये नियमों का पालन करना चाहिये :- तीन दिन और आदि उत्तम पौष्टिक, और सुपाच्य पदार्थ भोजन करना चाहिये। सद्गुणों और उत्तम विचारों को हृदय में स्थान देते हुए दुर्गुणों और बुरे विचारों से बचना चाहिये। एकान्त वास के समय को, नवीन २ विद्याओं को सीखने और देशभक्त महानुभावों के चरित्रों का, उन के लोकोपकारी कार्य्यों का, उन की निःस्वार्थ स्वदेशहितैषिता का, उन के असीम साहस का, और उन के अपूर्व आत्मत्याग का, विशेष रूप से अध्ययन करना चाहिये। यदि पुत्र की कामना है तो किसी सुन्दर पुरुष के चित्र को (देखो- चित्र नं० १७) और यदि पुत्री की अभिलाषा है तो किसी परम सुन्दरी, गुणवती, विदुषी और वीराङ्गना के चित्र को देखो चित्र नं० १८) लक्ष्य पूर्वक—ध्यान पूर्वक—अवलोकन करना चाहिये *।

शुद्ध स्नान करलेने पर पांचवें प्रकरण में बतलाये हुए के अनुसार पुत्र अथवा पुत्री के निमित्त, गर्भाधान करना चाहिये। स्त्री को शुद्ध स्नान कर लेने के बाद—यदि गर्भाधान करने में विलम्ब हो (क्योंकि शुभ

रजस्वला होने के दिन से ही वंशलोचन का सेवन करना चाहिये। और प्रसव पर्य्यन्त, प्रातःकाल और सायंकाल, ३ माशा वंशलोचन को पीस और दूध में डालकर सेवन करे। इस की मात्रा अपनी रुचि के अनुसार १ छटांक से ४ छटांक अथवा ८ छटांक तक लेनी चाहिये, किन्तु जहां तक हो मात्रा को शनैः २ बढ़ाया जाय। दूध को रुचिर और स्वादिष्ट बनाने के लिये—उस में थोड़ी छोटी इलायची, केसर और मिश्री डाल लेनी चाहिये।

(पण्डित महादेव "झा")

मुझे भी ऐसा करने के विषय में कोई बाधा नहीं है ; क्योंकि इस में कोई वस्तु हानि पहुंचानेवाली नहीं है ; अतएव इस का सेवन लाभदायक ही होगा।

* इन दिनों में पुरुष को भी अपने आचार विचार आदि को नियमित रखते हुए उपर्युक्त बातों का पालन करना चाहिये और जिस चित्र को स्त्री ने अवलोकन किया है, उसी को खुद भी अवलोकन करना चाहिये, ताकि विरोध होने की सम्भावना ही न रहे। (अवलोकन करने की रीति आगे बतलाई जावेगी।)

के निमित्त नौ दिन बाद गर्भाधान करना बतलाया गया है अतएव चार पांच दिन का विलम्ब रहता है) तो—इस समय को पूर्ववत नियमों का पालन करते हुए बिता देना चाहिये। इस के बाद:—

निश्चित दिन; " गर्भाधान विधि " शीर्षक में बतलाये नियमों का पालन करते हुए—पुत्र अथवा पुत्री के निमित्त गर्भाधान करना चाहिये। गर्भाधान करते समय मन और विचार सब प्रकार पवित्र होने चाहिये', और जिन बातों का तथा जिस चित्र का, इन दिनों में अभ्यास किया जाता रहा है और अबतक अभ्यास किया जा चुका है, उन बातों का उन उत्तम गुणों का—उस चित्र का—गर्भाधान के समय विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये। देखिये! इस बात का पूरा विचार रखिये और सावधान रहिये कि इस समय का पड़ा हुआ प्रभाव, अचूक निशाने के माफ़िक प्राकृतिक नियम होने के कारण—सन्तान में यथातथ्य अवतीर्ण होता है; अतएव, वर्ण, शारीरिक सौन्दर्य्य, स्वास्थ्य और मानसिकशक्ति आदि के विषय में जिन २ उत्तम बातों को, अपनी सन्तान में विकास देने की इच्छा हो; धैर्य्य और शान्तिपूर्वक अपने हृदय पर अंकित रखना चाहिये। विषयान्ध हो—किसी प्रकार इन में त्रुटि नहीं आने देना चाहिये,—नहीं तो सन्तान के उसी विषय में कि जिस विषय में त्रुटि आई है—अयोग्य रह जाने पर पछताना पड़ेगा।

गर्भाधान (कार्य्य) हो चुकने के बाद, स्त्री को, उनही विचारों को मस्तिष्क में लिये हुए—हृदयपट पर अंकित किये हुए—अब तक अभ्यास की हुई उत्तम बातों को अपनी मनःशक्ति पर दृढ़ रखते हुए अन्य किसी विचार—बुरे विचार—को रोकते हुए रात्रि का शेष भाग, सुख और शान्तिपूर्वक आराम से बिता देना चाहिये *।

---

* इस प्रकार सोते समय तक—ठीक निद्रित होते समय तक—जो विचार मस्तिष्क में जाग्रत रह जाता है—शेष रह जाता है—उसे निद्रावस्था में, मन के शान्त हो जाने पर, बुद्धि ग्रहण कर लेती है - बुद्धि उसे अपना कार्य्य बना लेती है—और बुद्धि के ग्रहण कर लेने पर पाठकों को मालूम ही है कि उस का कितना प्रभाव होता है।

गर्भाधान के दूसरे दिन प्रातःकाल से ही स्त्री को देश-दुर्दशा-निवृत्ति के अर्थ अपनी सन्तान को योग्य, सर्वगुणसम्पन्न और राजनीति-विशारद उत्पन्न करने के आत्मनिग्रह रूपी महायज्ञ का नौ मास के लिये महात्मा तुलसी दास जी के इन वाक्यों को कि "प्राण जाय पर वचन नहिं जाई" स्मरण रखते हुए—दृढ़ संकल्प से- अनुष्ठान कर देना चाहिये; और आठवें प्रकरण की निर्णित हानिकारक बातों से बचते हुए ; * (२) अपने अपूर्व आत्मबल की सहायता से—दृढ़ प्रतिज्ञा की सहायता से—अचल साहस और अपनी भविष्यत् की आशाओं में जो संजीवनी शक्ति है, उस की सहायता से—इस नौ मास के समय को निर्विघ्न, नियमित रूप से—नीचे बतलाये अनुसार—कार्य्य करते हुए, धैर्य्य, दृढ़ता और शान्ति पूर्वक बिता देना चाहिये।

प्यारी बहिनो ! आप ने सुना होगा कि उत्तम कार्य्यों में—सत्कार्य्यों में—अनेकों विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं, और मनुष्य को उस कार्य्य से विमुख रखना चाहते हैं; अतएव आप के इस कार्य्य में भी विघ्नों का उपस्थित होना बहुत सम्भव है; किन्तु किसी प्रकार की कमज़ोरी को—कचापन को—तिल मात्र भी—लेश मात्र भी—हृदय में स्थान न देते हुए और विघ्नों का प्रतिरोध करते हुए—अपने कर्त्तव्य से कदापि विमुख नहीं होना चाहिये, क्योंकि कर्त्तव्यविमुख होने से, कार्य्य भ्रष्ट होने की सम्भावना रहती है—कार्य्य भ्रष्ट होता है—और समाज में मनुष्य उपहासपात्र ठहराया जाता है।

अतएव हमें अपने इस नौ मास के आत्मनिग्रहरूपी महायज्ञ को—कि जिस का अनुष्ठान किया जाचुका है, यशस्वी बनाने के लिये—कार्य्यक्रम स्थिर कर लेना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य्य करते हुए उसे पूर्णता को पहुँचा देना चाहिये। कार्य्यक्रम स्थिर कर लेने से बहुत सी कठिनाइयां तो स्वतः निर्मूल हो जाती हैं—और शेष को बहुत ही आसानी से साथ निवारण किया जा सकता है।

---

* (२) देखो प्रकरण आठवां।

इस गर्भकाल को पूर्व कथित दो भागों में (जैसा कि चौथे प्रकरण में बतलाया जा चुका है) विभक्त कर लेना चाहिये :—अर्थात् (१) पहिले छः मास का एक भाग और (२) दूसरे तीन मास का दूसरा भाग।

पहिले भाग में विशेष रूप से सौन्दर्य (वर्ण की सुन्दरता शारीरिक सुन्दरता, और स्वास्थ्य) को सुधारने पर ध्यान देना चाहिये और दूसरे भाग में मानसिकशक्तियों को पूर्ण रूप से विकास देने का। किन्तु इस के कहने का यह आशय कदापि नहीं समझ लिया जाय कि पहिले भाग में सौन्दर्य ही को मुख्य समझ मानसिक शक्तियों को बिलकुल ही भुला दिया जाय। हां ! यदि दूसरे भाग में मानसिक शक्तियों को विकास देते हुए—सौन्दर्य को छोड़ भी दें तो इतनी हानि नहीं; क्योंकि उस समय शरीर के प्रायः सारे अवयव विकास पाकर परिपूर्ण हो जाते हैं। किन्तु प्रसव होने पर्य्यन्त वे बढ़ते अवश्य हैं, अतएव उन्हें पुष्ट करने का विचार फिर भी रखना ही चाहिये।

गर्भाधान होने के दूसरे दिन से ही प्रातःकाल और सायंकाल * एक २ घंटा उस चित्र को एकान्त में बैठकर अवलोकन करना चाहिये। अवलोकन करते समय पहिले—नेत्र बन्द कर इस प्रकार बैठ जाना चाहिये कि जिस प्रकार बैठने में किसी प्रकार की अड़चन या असुविधा न हो, और शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ देना चाहिये—शरीर को तना हुआ नहीं रखना चाहिये—तदनन्तर जितना हो सके उतना लम्बा श्वास

---

* प्रातःकाल सोते उठते ही और सायंकाल सब कार्य्यों से निवृत्त हो सोते समय—क्योंकि सोते समय मन—जोकि चंचल होने के कारण हमारे कार्य्यों में विक्षेप डालता है—स्वतः शान्त होने लगता है और निद्रा आते समय बिलकुल शान्त हो जाता है—(मन के बिलकुल शान्त हो जाने पर ही निद्रा आती है अर्थात् मन जिस अवस्था में शान्त हो जाता है, उसी अवस्था को निद्रावस्था कहते हैं— और जागते समय (शौच आदि से निवृत्त हो) रात भर शान्तिपूर्वक विश्राम कर लेने से मन निर्मल और शान्त होता है अतएव इस समय थोड़ा प्रयत्न करने से शान्त हो जाता है। केवल इच्छित विषय से सम्बन्ध रखनेवाले विचार जाग्रत रह जाते हैं—और ऐसी अवस्था में वे—सुगमता पूर्वक स्वतः वृत्ति का कार्य्य बन जाते हैं।

किया जाय—साथ ही समय इस बात का विचार अवश्य रखा जाय कि जो श्वास लिया जा रहा है—जो वायु श्वास में लिया जा रहा है—उस के द्वारा प्रकृति के अटूट शक्ति भण्डार से, शरीर में नवीन शक्ति का संचार हो रहा है—उस के द्वारा शरीर में नवीन शक्ति उत्पन्न हो रही है—तत्पश्चात् उस लिये हुए श्वास को फिर शनैः २ बाहर निकाल देना चाहिये—निकालते समय इस बात का विचार रखना चाहिये कि—शरीर और रक्त में जो विकार हैं—दूषण हैं—अथवा अशक्ति है या दुर्गुणों से सम्बन्ध रखनेवाले परमाणु हैं—वे इस श्वास के साथ बाहर निकलते हैं—थोड़ी देर—इस प्रकार क्रिया करने के बाद इस बात का दृढ़ रूप से विचार करना चाहिये कि आप सब प्रकार शुद्ध हैं—आप का मन शुद्ध है—रक्त शुद्ध है—आप के विचार शुद्ध हैं—आप सब प्रकार शान्त और स्वस्थ हैं—और वास्तव में—आप अपने आप को पूर्वापेक्षा बहुत कुछ, शुद्ध, शान्त और स्वस्थ पायेगा।

अब जब आप ऐसी शान्त और स्वस्थ स्थिति में हैं तो अपने उस चित्र को लीजिये कि जिसे अब तक अवलोकन किया गया है—प्रथम उसे मस्तक से शिख पर्य्यन्त ध्यान और प्रेम पूर्वक अवलोकन कीजिये। उस के शारीरिक सौन्दर्य्य पर ध्यान दीजिये और उसे अपने मन पर दृढ़ कीजिये—इस अवलोकन काल में इस बात का विश्वास रखिये और विचार कीजिये कि आप की गर्भस्थ सन्तान का शारीरिक संगठन भी उतना ही अच्छा हो रहा है कि जितना आप के आधेय चित्र का है—इस के पश्चात्—उक्त चित्र के प्रत्येक अवयव को (सिर से पैर तक) अलग २ क्रमवार अवलोकन कीजिये—और प्रत्येक अवयव को अवलोकन करते समय इस बात का अवश्य विचार रखिये कि गर्भस्थ बच्चे का वही अवयव पूर्ण रूप से विकास पा रहा है। इस प्रकार अवलोकन कर उक्त चित्र का प्रभाव हृदय पर इतना अंकित कीजिये कि नेत्र बन्द कर लेने पर भी ऐसा प्रतीत हो कि वही चित्र आप के सामने प्रत्यक्ष रखा हुआ है।

इस के बाद चित्र को अपनी बैठक में ऐसी जगह टांग देना चाहिये कि जहां इधर उधर फिरते और बैठे हुए दृष्टि पड़ती रहे। अन्य आवश्यकीय

कार्यों से निवृत्त हूजिये—और जो स्वादिष्ट हो, पौष्टिक हो, सुपाच्य हो, और चित्त को प्रिय हो, ऐसा भोजन कीजिये। भोजन करने के उपरान्त दस पांच मिनिट शीतल छाया में टहल लेना और कुछ देर पलंग पर सीधे अथवा बाईं करवट से लेट कर आराम कर लेना चाहिये - अर्थात् शरीर को ढीला छोड़ कर लेट जाना चाहिये—निद्रा नहीं निकालना चाहिये (यदि निद्रा को रोकने में कष्ट की संभावना हो तो निद्रा लेने में भी कोई हानि नहीं) बैठे २ इधर उधर दृष्टि न रख उसी चित्र पर दृष्टि रखना अधिक अच्छा होगा। दस बीस मिनिट आराम कर, कोई उपयोगी पुस्तक (चित्त को व्यग्र करनेवाली, बुरे विचार उत्पन्न करनेवाली, चित्त पर और आचरणों पर बुरा प्रभाव डालनेवाली, और अश्लील पुस्तकों, उपन्यासों और क़िस्से कहानियों को सर्वथा त्याग देना चाहिये) उठा लीजिये—और शान्ति और एकाग्रता पूर्वक उस को पढ़ना चाहिये—पढ़े हुए का भावार्थ समझना और उस को मनन करना चाहिये—पाठ करते समय इस बात का विचार रखना आवश्यक है और वास्तव में है भी ऐसा ही कि—आप की गर्भस्थ सन्तान जो कुछ पढ़ा जा रहा है, उसे आप के ज्ञान-तंतु रूपी टेलीफ़ोन द्वारा यथातथ्य सुन रही है और आप जिस २ विषय को पढ़ती और मनन करती जा रही हैं—उस ही उस विषय को वह अपना जीवनकर्तव्य—अपने जीवन का आधेय विषय बनाती जा रही है—पढ़ते समय दिन भर बैठे रहने की आवश्यकता नहीं—बल्कि इस तरह बैठा रहना सन्तान के लिये उलटा हानिकारक है—कभी बैठे २ कभी लेटे २ (लेटते समय सदा एक ही करवट से लेटना हानिकारक है) और कभी टहलते २ जिस प्रकार शरीर को आराम मिले पढ़ना अच्छा होगा - यदि पुस्तक से चित्त घबराय तो कोई दूसरा उपयोगी कार्य्य कीजिये किसी प्रकार की विद्या को बुरा न समझिये—जिस किसी विषय को पढ़ें अथवा सोचें उत्तम होना चाहिये —और उस में कोई नवीन बात सोचने की—मालूम करने की कोशिश करनी चाहिये। घृणा, द्वेष, ईर्षा, डाह, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर और लोभ आदि अधम विकारों को हृदय में कभी विकास—नहीं स्थान तक—नहीं पाने देना चाहिये। सर्वदा

उन के दमन करने में तत्पर रखना चाहिये—उत्तम गुणों को विकाश देने के लिये पृष्ठ २२० के नोट में बतलाई हुई बातों को काम में लाना चाहिये—उन के अनुसार कार्य्य करना चाहिये।

प्यारी बहिनो ! यह तो सब कुछ ठीक है, किन्तु देखियो कहीं अपनी दीना-बलहीना-मातृभूमि को न भूल जाइयो—वह तुम्हीं पर भरोसा किये बैठी है और तुम्हारी ओर बड़ी आतुर दृष्टि से देख रही है कि कब तुम भारत रत्न सन्तानों का प्रसव करोगी ? और कब उस का संसार में मुख उज्ज्वल होगा ? देखियो कहीं उस की आशालता का पाषाण हृदय बन-कर सर्वनाश न कर दीजियो—उस पर शुद्ध हृदय से प्रेम कीजियो—अन्यान्य विषयों में उसे अधिक महत्व दीजियो—सदा उस की मंगलकामना—उस का हितचिन्तन—कीजियो—तुम्हें उस के प्रति इतना प्रेम रखना योग्य है—योग्य ही नहीं तुम्हारा कर्तव्य है—कि यदि—उस के हितसाधन में अपना शरीर छोड़ना पड़े—अपने रक्त की आहुति देनी पड़े तो भी हानि नहीं—उसे सब प्रकार उन्नत करने की अभिलाषा रखियो—आज पर्य्यन्त जिन २ महानुभावों ने उस का हितसाधन किया है—उन का हृदय से आदर कीजियो—उन के देशोपकारी कार्य्यों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा कीजियो—और ईश्वर से तुम भी यही प्रार्थना कीजियो कि तुम्हारी सन्तान भी उन्हीं का अनुकरण करनेवाली—उन से भी बढ़कर मातृभूमि का हितसाधन करनेवाली—उत्पन्न हो। प्यारी बहिनो ! तुम्हें इन्हीं विचारों में—स्वच्छ, सुथरे, प्रकाशवाले (जहां अंधेरा न हो) और खुले मकान में (जहां वायु अच्छे प्रकार आता हो) अपना समय बिताना चाहिये—सायंकाल निकट आने पर अपने आवश्यकीय कार्य्यों से निवृत्त हो घंटा आध घंटा मकान की छत पर, अथवा अगर बाहर जा सकती हो तो जंगल की सायं-कालिक मन्दवायु का सेवन कीजियो—सायंकाल का भोजन सोने से कम से कम ३ घंटे पहिले कर लेना उचित है—इस ३ घंटे के समय को उत्तमोत्तम विषयों में अपने पतिदेव से वार्तालाप कर बिताना चाहिये। दिन भर के अध्ययन में मनन करने और सोचने पर भी यदि कोई बात तुम्हारे समझने से रह गई है तो उस को इस समय पूर्ति कर लेनी चाहिये।

इस के बाद सोने का समय निकट आने पर - प्रातःकाल जिस प्रकार—जिस रीति से—उक्त चित्र का अवलोकन किया था; उसी प्रकार—उसी रीति से—इस समय भी अवलोकन कीजिये—और निद्रा आने तक उस प्रभाव को हृदय पर दृढ़ रूप से अंकित रखिये—ताकि उस प्रभाव को मन के सर्वथा शान्त हो जाने पर बुद्धि उसे अपना कार्य्य बना सके।

प्रारम्भ में दस पांच दिन, जबतक बुद्धि इसे स्वीकार न करले, तबतक तुम्हें इस में असुविधा अवश्य प्रतीत होगी—किन्तु ज्योंही यह प्रभाव हृदय पर अंकित होने लगेगा बुद्धि इसे स्वीकार करने लगेगी त्योंही आप के मार्ग में आनेवाली असुविधा स्वतः दूर हो जायगी—फिर आप को यह प्रभाव हृदय पर अंकित करना बहुत सुगम हो जायगा—और आप प्रत्येक प्रकार के प्रभाव को बल्कि प्रत्येक विचार को—जिसे आप चाहेंगी—बुद्धि का कार्य्य बना लेने में कृतकार्य्य होंगी—इस अवस्था में आजाने पर आप को इस में स्वतः एक प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा—कि जिस के महत्व को आप स्वयम् अनुभव कर सकेंगी और कर लेंगी।

गर्भ रहने से पैंतालीसवें दिन पर्य्यन्त इसी प्रकार अभ्यास जारी रखना चाहिये। इस के पश्चात् बच्चे का आकार बनना शुरू होता है—उस के अंग प्रत्यंग उत्पन्न हो विकास पाने और पुष्ट होने लगते हैं—अतएव गर्भ में जिस २ समय जिस २ अवयव के विकास पाने और पुष्ट होने का समय है उसी समय बल्कि उस से भी कुछ दिन पहिले * से (अपने अभ्यास क्रम में इतना और बढ़ा लीजिये) उक्त चित्र का अवलोकन करते समय उस अवयव पर दृष्टि पड़े अथवा अवलोकन करते २ जब वह अवयव आवे तो उस को विशेष रूप से अवलोकन कर, अपने संकल्प में इस बात के दृढ़ करने की आवश्यकता है कि—वह अवयव उस की उचित सीमा में पूर्णरूप से विकास पा रहा है। इस अभ्यास द्वारा गर्भवती अपने ज्ञानतंतु द्वारा-गर्भ से बहुत निकट सम्बन्ध में आजाती है और वही अवयव पूर्णरूप से पोषण प्राप्त कर उचित सीमा में विकास पा जाता

* कम से कम एक सप्ताह पहिले।

है—(जैसा कि छठें प्रकरण में आन्तरिक प्रभाव का वारम्वार बतलाते हुए निर्णय किया जा चुका है)।

तीसरे महीने में जातिसूचक अवयव—स्त्री पुरुष में भेद बतलानेवाले अवयव—की रचना होती है ; अतएव इस समय उक्त अवयव के आकार (यदि पुरुष का चित्र अभ्यास में है तो पुरुष का और स्त्री का चित्र है तो स्त्री का अवयव) को ही—संकल्प द्वारा हृदय पर प्रभाव डाल उसे—विकास पाने में सहायता देनी चाहिये।

छठें महीने में त्वचा के दोनों परत तय्यार होते हैं अतएव सन्तान में उत्तम वर्ण को विकास देने के लिये पांचवें महीने से ही—गौर वर्ण को विकास देने के लिये विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये—गौर वर्ण को आन्तरिक प्रेम तथा लक्ष पूर्वक अवलोकन करना चाहिये। इस प्रकार पहिले छः मास पर्य्यन्त अभ्यास करते हुए, बच्चे—गर्भस्थ बच्चे के शारीरिक सौन्दर्य्य को उत्तम बनाना चाहिये। तदुपरान्त—

सातवें महीने के प्रारम्भ से बच्चे का सिर नीचे की ओर आने लगता है और आजाता है और मस्तक में जो शक्तियां हैं उन को प्रकृति विशेष रूप से विकास देना शुरू करती है—अतएव इस समय प्रातःकाल और सायंकाल अभ्यास करते समय चित्र के स्थान में उन गुणों को ले लेना चाहिये कि जिन को सन्तान में विकास देना है; और जिस प्रकार चित्र पर अभ्यास किया जाता था उसी प्रकार पहिले समग्र रूप से सब गुणों का और फिर पृथक २ गुणों का क्रमशः अभ्यास करना चाहिये ; उन की यथार्थता को—उन की उपयोगिता को—विचारना चाहिये, उन के द्वारा होनेवाले लाभ पर ध्यान देना चाहिये—शेष समय को पूर्वानुसार उत्तम २ ग्रन्थों, वर्तमान पत्रों और उत्तम विषयों में बिताना चाहिये;—हां, आचार विचार और जो कुछ कार्य्य आदि किया जाय अथवा पुस्तक आदि को पढ़ा जाय, वह उन्हीं गुणों के अनुसार होने चाहियें जिन को सन्तान में विकास दिया जा रहा है—इस प्रकार प्रसव पर्य्यन्त नियमों का पालन किया जाय और उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर से प्रार्थना की जाय कि वह

इस कठिन परिश्रम के बदले में आप को उत्तम सन्तान रूपी फल प्रदान करे - ईश्वर बड़ा दयालु है, वह आप की इस प्रार्थना पर अवश्यमेव आप को सफल मनोरथ करेगा !

प्यारी बहिनो ! देखो उत्तम सन्तान प्राप्ति के अतिरिक्त इन नौ दश मास के अभ्यास से—उत्तम गुणों के अभ्यास से—स्वयम् आप की भी कायापलट हो जायगी—आप अपने में आकाश पाताल का—ज़मीन आसमान का—अन्तर पायंगी। आप इतनी उत्तमावस्था में आजायंगी कि यदि आप अपनी पूर्वावस्था को स्मरण करेंगी तो स्वयम् आप को भी अपनी स्थिति में आश्चर्यकारक परिवर्तन मालूम होगा। अब मुझे कुछ विशेष कहना शेष नहीं रह गया, अतएव—

इन शब्दों में कि "ईश्वर आप को इन नियमों का पालन करने की सुमति दे, आप इन नियमों का पालन करें और भारतवर्ष नाम को सार्थक करनेवाली सन्तान उत्पन्न कर देश को अधोगति के भयानक दलदल से निकालें।" दीन दुःखहारी दयामय श्रीहरि के चरण कमलों में प्रार्थना करते हुए इस पुस्तक को समाप्त करता हूं !

स्त्रियों के लिये कठिन शब्दों के अर्थ ।

शब्द	अर्थ
अ—अनुमान	अन्दाज़, विचार
असम्भव	नामुमकिन, जो हो नहीं सके
अतएव	इसलिये
अवश्य	ज़रूर
अपेक्षा	निसबत, मुकाबिला
अवयव	हिस्से, शरीर के जुदे २ भाग
औंस	अंगरेज़ी तोल (२½ तोले के बराबर)
अनुकूलता	सुभीता
अतिरिक्त	सिवाय
अन्यत्र	किसी दूसरी जगह
अर्धसरल	अनुपायल
आविष्कार	खोज, ईजाद
अन्तर्गत	शामिल में
अनन्य	पूर्ण, बहुत, हर तरह से
अनुरोध	सिफ़ारिश, भलावण
अभिप्राय	मतलब, राय
अरिष्ट	तकलीफ़, झगड़ा, बखेड़ा
ओजस्विता	तेज
अगत्या	लाचार, मजबूर
अतिक्रमण	सीमा से बढ़ जाना
अवलोकन	देखना
आन्तरिक	अन्दरूनी, भीतरी
अल्पज्ञ	कम समझ
अन्तरित	पोशीदा, छिपा हुआ, आंखों से ओट
अस्तित्व	मौजूद होना
अनुरूप	जैसा का तैसा, ठीक वैसा ही

अपहरण	छीनना
अधिकृत	आधीन किया हुआ
आक्रमण	हमला
आधिपत्य	हुकूमत, दबाव
अतुल	बहुत
आघात	चोट पहुँचाना, सताना
आकृतियां	सूरतें, शकलें.
आकर्षित	खिंचना
अवलम्बन	स्वीकार करना, मान लेना।
अगाधता	गहराई
अनायास	आपो आप, ख़ुदबख़ुद, बेमिहनत
अपेक्षित	मोहताज
अंकित	नक़्श किया हुआ, जमा हुआ
आकाशकुसुम	आकाश के फल, कोई वस्तु नहीं
असद्	बुरा, ख़राब
असमंजस	झंझट
आभाविहीन	तेजरहित
आह्लादकारक	ख़ुशी दिलानेवाला
अनुपम	जिस की उपमा न हो
आकांक्षा	इच्छा, परवाह
आधेय	स्वीकार, जिसे बुद्धि ग्रहण करले
अनुरक्त	लीन हो जाना
अतुलनीय	जिस की बराबरी न हो
आलिंगन	मिलना, हृदय से लगाना
अलौकिक	ईश्वरीय, जो इस लोक की न हो, अर्थात् हद से ज्यादा
आतुर	तय्यार, घबराया हुआ
अश्लील	बुरे, ख़राब
अनभिज्ञ	अनजान, नावाक़िफ़
आशय	मतलब

अर्वाचीन	हाल का, वर्तमान, मौजूद
अमोघ	नायाब, सफल, अव्यर्थ
अनुयायी	मददगार, साथी
अवहेलना	बेपरवाही
अध्ययन	पढ़ना
आत्मनिग्रह	आत्म को शुद्ध करना
अखूट	जो खतम न हो
ई—ईर्षा	डाह, हसद
उ—उद्धृत	एक जगह से किसी विषय को लेकर दूसरी जगह लिखना
उल्लेख	जिकर, वर्णन
उपर्युक्त	ऊपर कही हुई
उत्तेजित	जोश देना, भड़काना,
उत्तीर्ण	परीक्षा में पास होना
उत्कृष्ट	ऊंचे दर्जे का
उत्कंठा	इच्छा, ख्वाहिश
उग्र	डरावना, भयानक
उन्नति	तरक्की
ऊब	नफ़रत
उद्विग्नता	घबराहट
उपहार	भेट, नजर, तोहफ़ा
उपेक्षा	बेपरवाही
उत्तरोत्तर	धीरे धीरे
उपार्जित	इकट्ठा किया हुआ
उत्पादक	पैदा करने वाला
ए—एकत्रित	इकट्ठा
एकाग्र	यकसू, शान्त
क—क्रम	तरीक़ा, रीति
क्रमश:	तरतीबवार
कोमल	नाजुक

बद्धकटि	कमर कस कर, तय्यार होकर
कुण्ठित	भोथा
कृत्रिम	बनावटी
किंचित	थोड़ा
कृतकार्यता	सफलता, कामयाबी
कौतूहल	तमाशा, खेल
केन्द्र	मध्य, बीच
क्षपण	बिताना
कष्टसाध्य	कठिन, जो आसानी से न हो सके
क्षोभित	दुःखी, रंजीदा
कौशल	चतुराई
कुटिल	लुच्चा, प्रपंची
क्षय	टुकड़ा
कलुषित	कलंकित, बदनाम
कीट	कीड़ा
कलह कंकास	झगड़ा, बखेड़ा
ग—ग्रेन	रत्ती की तरह अंग्रेजी तौल है
गर्भस्थ	गर्भ में पड़ा हुआ
गुप्त	छिपा हुआ
गौरव	बड़ाई
गद्‌गद	खुश
गौण	फ़िजूल, गैर जरूरी, अनावश्यकीय
गहन	गहरा, अदक
घ—घनिष्ट	गहरा, मज़बूत
घात	मारना, चोट पहुंचाना, सताना
घन	भारी, वज़नी
च—चेष्टा	कोशिश, प्रयत्न
चूड़ामणि	सिर का एक जेवर, ऊंचे दर्जे का
चरितार्थ	ठीक वैसा ही
चकित	अचरज में

ज—ज्वलंत	तेजवाला
जिज्ञासा	जानने की इच्छा
त—तिलाञ्जली	तिल की अञ्जलि देना अर्थात् परित्याग करना, छोड़ना
त्वरित	जल्दी, फौरन
तत्काल	उसी वक़्त
तीव्र	तेज़, तीखा
तिमिर	अंधेरा
तृषा	प्यास
त्रुटि	कमी
द—दूषण	ख़राबी, बुराई, ऐब
दुस्तर	मुश्किल
दासत्व	गुलामी
दयार्द्र	दयावाला, जिस में दया का भाव उमड़ रहा हो
द्रव	पतला
देदीप्यमान	चमकता हुआ
ध—धुरीण	पूरा
न—निश्चय	पक्का
निरीक्षण	देखना, जांचना
निर्णय	तै करना
न्यूनता	कमी
निवृत्त	निबट जाना, छूट जाना, फारिग़ होना
निस्तार	छुटकारा
निस्तब्धता	सुनसान, शान्ति
निरंकुश	स्वच्छन्द, बेपरवाह, आज़ाद
नारकीय	नरक की, बहुत ख़राब
नश्वर	नाश होने वाला
नैसर्गिक	क़ुदरती
नभोमण्डल	आकाश

निकृष्ट	ख़राब, नीचे दर्जे का
निर्मित	बनाया हुआ
प—प्रत्यक्ष	ज़ाहिरा, सामने
प्रमाणित	साबित, निश्चित
परिवर्तन	रद्दोबदल, उलटफेर
प्रयोग	तजरबा
पदार्थ	वस्तु, चीज़
प्राय:	अक्सर, बहुत करके
प्रत्येक	हरएक
पूर्वानुसार	पहले की तरह
परस्पर	आपस में
पोषण	आहार, ख़ुराक
पुष्ट	मज़बूत
पोषणतत्व	वह वस्तु जो आहार के तौर पर मिलती हो
प्रसव	पैदा होना, उत्पन्न होना
प्राचीन	पुराना
प्रकृति	क़ुदरत
प्रभाव	असर
पाशवी	जानवरों की सी
परिपक्व	पका हुआ
प्रतिपादन	साबित करना, मज़बूत करना
प्रदान	देना
प्रवास	सफ़र
परम्परागत	हमेशा से, मुद्दत से आते हुए
पूर्वापर	आगे पीछे
पृथक्करण	जुदा २ करना
प्रेषित	भेजा हुआ, प्रेरणा किया हुआ
पतित	नापाक, गिरा हुआ

प्रसंग	समय, मौक़ा
प्रधान	असली, मुख्य
पुनीत	पवित्र, पाक
प्रतिद्वन्द्वी	एक दूसरे से उलटे, मुख़ालिफ़
प्रतिभाशालिनी	समझदार, बुद्धिमती
परावृत्त	तिरछा करना
परामर्श	सलाह, राय
पारंगत	प्रवीण, होशियार
प्रतिभा	बुद्धि
पार्श्ववर्ती	पास रहनेवाला
पुलकित	ख़ुश होना
प्रादुर्भाव	प्रगट होना
पर्णकुटी	फूस की झोंपड़ी
परोक्ष	छिपा हुआ, आंखों से ओट
परिष्कृत	विकास पाया हुआ, परिपूर्ण, साफ़
प्रस्तुत	मौजूदा
परिवर्तन	बदलना
प्रवाही	बहता हुआ
प्रतिरोध	रुकावट
प्रविष्ट	घुसना, प्रवेश करना
पार्थिव	पृथ्वी से बना हुआ, स्थूल
ब—बुद्धिग्राह्य	जो समझ में आ जाय
बाधा	रुकावट, तकलीफ़
बलिष्ट	ताक़तवर, बलवान
बटुशृंग	बड़ के तंतु, अथवा जटा
बद्धपरिकर	तय्यार, कमरकसता
भ—भानरहित	बेहोश
भ्रांतिमूलक	शंका पैदा करनेवाला
भस्मीभूत	भिस्मार हो जाना, जलजला कर ख़ाक हो जाना

भव्य	बहुत अच्छा
म—मिलना	मिलना, शामिल होना
मनोरंजन	दिलबहलाव
मात्रा	मिक़दार
मनन	बार २ विचार करना
मृतप्राय	मुर्दे के समान
मग्न	मह्व होना, लीन होना
मनोवृत्तियां	मन की आदतें, अथवा झुकाव
मनोरम	दिल को खुश करनेवाली
ममता	मेरेपन का भाव
मुदित	खुश, प्रसन्न
मुग्ध	मोहित, लुभा जाना
मनोहरता	मन को हरने वाली
मृगजलतृष्णा	मरुभूमि अथवा रेगिस्तान में सूर्य की किरणों के पड़ने से दूर से वह समुद्र की समान लहरें मारता नजर आता है. हिरन उसे पानी समझ कर उस की ओर दौड़ता है। किन्तु ज्यों ज्यों वह दौड़ता जाता है उस को वह पानी आगे और आगे बराबर नजर आता जाता है। अन्त में थक कर और निराश होकर वह गिर पड़ता है और प्यास के क्लेश से पीड़ित हो पानी न मिलने के कारण प्राण दे देता है। इसी अवस्था का नाम मृग-जल-तृष्णा है।
मुक्तकंठ	खुले तौर पर, जी खोल कर, उत्तम रूप से
य—यथार्थता	सचाई
योजना	तरकीब

यथालभ्य	जितना मिल सके
र—रहस्य	भेद
रमणीय	प्रिय
रोमांचित	रोंगटे खड़े करनेवाला
रूढ़ी	रिवाज
ल—लचलचा	नाजुक, कोमल
लक्ष्यपूर्वक	ध्यान से
लावण्य	नज़ाकत
लोम हर्षण	महान् दुःखदाई
लोलुपता	दुर्व्यसनों में फंस जाने को लोलुपता कहते हैं
व—वृद्धि	बढ़ाव, बढ़ना
विशेष	ज्यादा, बहुत
विदितार्थ	जानने के लिये
विभक्त	बटना, तक़सीम होना
विकास पाना	बनना, निकलना, प्रकट होना, पुष्ट होना।
विक्षेप	गड़बड़, खराबी
वंशपरम्परागत	पुश्तैनी, मौरूसी, पीढ़ी दर पीढ़ी आनेवाली
विचित्र	तरह २ का, अजीब
वृत्ति	आदत, स्वभाव
विवेचन	बयान, वर्णन
वयस्क	जवान
बाह्य	बाहरी
विलीन	छिपजाना
विभिन्नता	नई तरह की
विवश	मजबूर
विरक्तता	नफ़रत, किसी बात से दिल का हट जाना

व्याख्या	खुलासा
विभूति	दैवीशक्ति
विवेकी	ज्ञानवाला, समझदार
विभूषित	सिंगारना, संवारना
वंचित	छुटा हुआ, बचा हुआ
विक्षेप	गड़बड़, कमी
वैमनस्य	अनबन
व्यसन	आदत
विनोदी	प्रसन्न रहने वाला, हंसमुख
व्यायाम	कसरत
वक्रीभवन	(Refrect) प्रकाश की किरणों का किसी वस्तु विशेष के द्वारा तिरछा हो कर निकलना
व्यक्त	जाहिर करना, खोलना
वर्द्धिंगत	बढ़ता हुआ
व्यग्र	घबराया हुआ
विदुषी	विद्वान स्त्री, समझदार योग्य और लिखी पढ़ी औरत
विशारद	दक्ष, प्रवीण, होशियार
श—शंका	शक, वहम
शृंखला	जंजीर
शैली	रीति, तरीका
शेष	बाकी बचा हुआ
शिरोमणि	सब से ऊंचे दर्जे का
श्रेय	अच्छा, उत्तम
शुष्क	सूखा हुआ, एक रोग विशेष
शिथिलता	ढीलापन, सुस्ती, कमजोरी
स—संक्षेप	थोड़ा, मुख्तसर
सविस्तार	पूरा २, मुफस्सिल

सिद्धांत	जो बात सब तरह निश्चित हो जाने पर ठै पा जावे उस को सिद्धांत कहते हैं
सावधानी	होशियारी, एहतयात, संभाल, निगरानी
स्थिति	हालत
स्पंज	एक खास वस्तु है जो पानी में रखने से पानी को सुखा लेती है और दबाने से फिर पानी छोड़ देती है
सर्वसाधारण	आम लोग
स्वास्थ्य	तन्दुरुस्ती, निरोगिता
संगठन	शामिल होना, मिलना जुड़ना, बनना
सुगमता	आसानी
सुवर्चला	एक जड़ी है
सुविधा	आसानी
समाधान	पूर्ति, पूरा करना
समावेश	ठीक आ जाना, समाजाना
स्खलित	छूट जाना, गिरना
सरलतापूर्वक	आसानी से
सुदृढ़	मज़बूत
सशक्त	बलवान, ताक़तवर
सार्थकता	फायदेमंदी
संस्कृत	पूर्ण रूप से बना हुआ, संस्कार किया हुआ
सारगर्भिता	जिस में कुछ सचाई हो, जिस में कुछ सार हो
स्वच्छन्द	बेपरवाह
स्पष्टता	साफ़ तौर पर

सहिष्णुता — बरदाश्त

स्वेद — पसीना

सुश्रूषा — सारसंभाल

सञ्चालन — चलाना, हरकत देना

सौरभ — सुगन्ध

संजीवनी — जिलाने वाली

सुशील — नेक

सच्चरित्रा — अच्छी आदतवाली, जिस के चरित्र अच्छे हों, पाक, नेक

समर्थन — ताईद करना, मज़बूत करना, पुष्ट करना

सूत्रपात — मकान की नींव क़ायम के समय जो डोरी डाल कर नींव क़ायम की जाती है, उस को सूत्रपात कहते हैं

स्तम्भित — सकते की हालत में, अचरज की हालत में

स्पर्शास्पर्श — छुवाछूत

ह—हस्तक्षेप — हाथ डालना, किसी काम में रुका-वट पैदा करना

हृदयंगम — खूब याद कर लेना, हृदय में जमा लेना

ह्रास — घटना

हरण — छीनना

हृदयहारिणी — मनोहर, दिलपसन्द

क्ष—क्षीणकाय — कमज़ोर,दुबला

क्षितिज — वह रेखा जहां आकाश और पृथ्वी मिली हुई सी नज़र आती है ॥

—०❁०—

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	११	सबों को	सब को
६	१०	करते रहे हैं	करते आरहे हैं
„	१६	मौन्सेन्स	मॉन सेन्स
११	६	यह	ये
२७	१०	जिस का	जिस की
३४	नोट	Psycology.	Physiolog\.
३५	२	कीटों	कीट
५२	२१	किया	किया है
५५	४	इतना	इतनी
५६	७	किया है	किया
६२	नोट	दूसरे नोट में केवल "पंडित महादेव झा" इतना ही है शेष भाग पहिले नोट का है।	
७५	५	इस	इन
„	१६।१६	म्रान	म्रेन
८८	२०	ओ रक्त	ओ रस
१०२	११	$\frac{३}{३}$	$\frac{२}{२}$
१०८	८	बन्धन	बन्धन भी
१०६	१४	$\frac{३/१}{५}$	$\frac{२/५}{२}$
११६	११	धारी	धारिणी
११७	१	इस का	उस का
१२१	१८	बड़े	बड़ी
„	२५	वह	यह
१३६	२७	उपरोक्त	उपर्युक्त
१४२	१३	आए—	—आये
१४४	२७	क़्याल	क़याल
१५१	१२	१४	१५
„	१५	१५	१६
१५५	२१	नभमंडल	नभोमंडल
१६०	४	के	की
१६४	२१।२७	बाइब्ल	बाइबिल
१६५	१०	अधम—	—अधम
१७५	१३	है नहीं	नहीं है
१८१	१४	का	ही
२००	१७	लगा	लगे
„	२१	घटने	घटते
२०८	२	के	की
„	२८	पूरा	पूरी करनी
२२५	१७	रस	दूध
२२६	१४	होसी	ऐसी
		शब्दार्थ	
२३७	६	आत्म को	आत्मा को